

तेषामाहिककृत्ये धर्मशास्त्रानुसूलमेव कर्मणां सन्निवेशास्त्वतो हि जा-  
गरूकता धर्मशास्त्रस्यासीत् । साम्प्रतं तु कलिमहिम्ना, सुदूरमपास्ता सा  
द्विजानान्दीनेकी क्रिया, तत एव दुर्देवाद्विजा धर्मशास्त्रपरिशीलने मन्दो-  
त्साहाः समभवन् ।

मा चैवं धर्मशास्त्रार्थेहर्त्तने भवेद्विजाश्च मूयोऽपि धर्मशास्त्राध्ययनाध्या-  
पनादिना स्ववर्णाग्रमाचारं पालयन्तूपदिशन्तु च, तदधिकारिण इति  
धियातिभ्रमल्पमूलस्तो वशिष्टाष्टादशस्मृतिप्रत्ययेन विवेतुमुद्युक्तोऽहं  
सविनयं निवेदयामि सर्व एव धार्मिका द्विजादयोऽमूल्यमेनं ग्रन्थं समुपलभ्य  
विशीर्णप्रायं धर्मं गोपायन्तु समुद्धरन्तु च सुकृतप्रसू तपस्थनीमिमां  
भारतभुवमिति ।

श्रीकृष्णदासात्मजः

खेमराजो मुम्बईस्थः

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम् यन्त्रालयाधिपतिः ।

॥ श्रीः ॥

# अष्टादशस्मृतयः ।

ताश्च

- [ १ अभिस्मृतिः, २ विष्णुस्मृतिः, ३ हारीतस्मृतिः, ४ औशनसी स्मृतिः,  
५ आश्विनसस्मृतिः, ६ यमस्मृतिः, ७ आपस्तम्बरस्मृतिः, ८ संवत्सस्मृतिः,  
९ कौत्यायनस्मृतिः, १० बृहस्पतिस्मृतिः, ११ पाराशरस्मृतिः,  
१२ व्यासस्मृतिः, १३ शङ्खस्मृतिः, १४ लिखितस्मृतिः  
१५ दक्षस्मृतिः, १६ गौतमस्मृतिः, १७ शातातपस्मृतिः,  
१८ वसिष्ठस्मृतिरिति ]

सोऽयं ग्रन्थः

स्वमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-पन्थागारे

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

चैत्र संवत् १९६५, शके १८३०.

# अथाष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।



## अत्रिस्मृतिः १.

विषयाः पृष्ठाङ्काः

लोकहिताय ऋषीणां धर्मवि-  
पयकप्रश्नं श्रुत्वा अत्रिम-  
हर्षिप्रणीतस्य स्मृतिनाम-  
कधर्मशास्त्रस्य- प्रारंभः,  
स्मृतिश्रवणफलञ्च  
स्वकर्मानुष्ठानतो लोकप्रिय-  
त्वं वर्णचतुष्टयस्य कर्म-  
वृत्तिरुत्थनञ्च  
वर्णचतुष्टयस्य पातित्यकार-  
कक्रियाकथनम्  
राज्ञः परमहितकरक्रियानि-  
रूपणम्, मलशुद्धिनिरूप-  
णम्, ब्राह्मणलक्षण-  
कथनञ्च  
शौचादिलक्षणम्, उक्तलक्षण-  
लक्षितस्य द्विजस्य पुनर्ज-  
न्माभावः, ब्राह्मणैकक-

विषयाः पृष्ठाङ्काः

सर्वेष्टापूर्तिफलञ्च ५  
इष्टापूर्तवर्णनम्, यमादिनिरु-  
पणञ्च ६  
पुत्रप्रशंसनम्, आहारशुद्धि-  
कथनञ्च ७  
१ प्रमादात्संध्योर्लङ्घने प्रायश्चि-  
त्तम् उच्छिष्टाद्यन्नभोजने  
प्रायश्चित्तम् ८  
२ शवदूषितगृहशुद्धिनिरूपणम् ९  
सूतकनिर्णयः १०  
३ परिवेदनदोषाभावनिरूपणम् १२  
महामातकनाशनातिकृच्छ्रा-  
दिकथनम् १३  
स्त्रीशूद्राणां पतनकरकर्म-  
कथनम् १५  
भोजने निषिद्धपात्राणि १७  
पट् भिक्षुकाः, रजकादीना-  
मन्नभक्षणे प्रायश्चित्तम् १८

# (२) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः                           | पृष्ठांकाः | विषयाः                           | पृष्ठांकाः |
|----------------------------------|------------|----------------------------------|------------|
| दूषितान्नभक्षणे प्रायश्चित्तम्   | १९         | अभक्ष्यान्नभक्षणे प्रायश्चित्तम् | ३२         |
| म्लेच्छादिसंपर्के प्रायश्चित्तम् | २०         | अमंगलपदार्थसेवनादिनिषे-          |            |
| स्त्रीणां सदा वृषणाभावः          | २१         | धः                               | ३३         |
| मद्यसंपर्कदूषितस्य जलादेः        |            | मौनस्थानानि, मौनफलकथ-            |            |
| शोधनम्                           | २२         | नञ्च                             | ३४         |
| ब्रह्मदण्डहतानां आत्मघाति-       |            | नानाविधिदानफलानि                 | ३५         |
| नश्च अशौचादिविचारः               | २३         | दानयोग्यब्राह्मणकथम्             | ३६         |
| गोहनने प्रायश्चित्तम्            | २४         | श्राद्धशालाः, श्राद्धदान-        |            |
| पयसः शुद्धिकरणम्                 | २५         | प्रशंसनं तत्फलं च                | ३८         |
| स्पृष्टास्पृष्टदोषविचारः         | २६         | दशविधा ब्राह्मणाः                | ३९         |
| ब्राह्मणस्य शूद्रोदकपाने प्राय-  |            | पूजनानर्हद्विजनिरूपणम्           | ४१         |
| श्चित्तम्                        | २७         | अत्रिस्मृत्युक्तधर्मनिर्णयश्च-   |            |
| पठितान्नचाण्डालीगमनादिप्रा-      |            | णकलम्                            | ४२         |
| यश्चित्तम्                       | २८         |                                  |            |
| पशुवेश्यादिगमने प्रायश्चि-       |            | <b>विष्णुस्मृतिः २.</b>          |            |
| त्तम्                            | २९         | <b>अध्यायः १.</b>                |            |
| रजस्वलानां परस्परस्पर्शादौ       |            | क्षपीणां विष्णवे धर्मविप-        |            |
| प्रायश्चित्तम्                   | ३०         | यकः प्रश्नः                      | ४३         |
| शतब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम्, वि- |            | विष्णुप्रणीतधर्मेषु गर्भाधाना-   |            |
| हालाद्युच्छिष्टान्नभोजने -       |            | दिसंस्काराः                      | ४४         |
| खरादियान्तगमे च प्राय-           |            |                                  |            |
| श्चित्तम्                        | ३१         | उपनयनानंतरं ब्रह्मचरिनियमाः      | ४५         |

| विषयाः  | पृष्ठांकाः | विषयाः   | पृष्ठांकाः |
|---|------------|--|------------|
| अध्यायः २.                                    |            | अध्यायः ५.   |            |
| गृहस्थधर्माणां संक्षेपतो निर्णयः ४६           |            | वानप्रस्थधर्माः ७१   |            |
| अध्यायः ३.                                    |            | अध्यायः ६.   |            |
| वानप्रस्थधर्मनिरूपणम् ४८                      |            | चतुर्थश्रमधर्मप्रणयनम् ७२.   |            |
| अध्यायः ४.                                    |            | अध्यायः ७.   |            |
| यतिधर्मनिरूपणम् ५०                            |            | संक्षेपेण योगशास्त्रसारकथ-<br>नम् ७५   |            |
| अध्यायः ५.                                    |            | औशनसीस्मृतिः ४.  |            |
| सामान्यतो वर्णचतुष्टयस्य<br>धर्मकथनम्         |            | वर्णचतुष्टयतः प्रतिलोमानु-<br>लोमविधिनोत्पन्नानां वृत्ति-<br>धर्माणां संक्षेपेण कथनम् ७८ |            |
| हारीतस्मृतिः ३.                               |            | आंगिरसस्मृतिः ५.   |            |
| अध्यायः १.                                    |            | वर्णानामानुपूर्व्येण प्रायश्चि-<br>त्ताविधेः कथा ८४                                      |            |
| हारीतस्य मुनिभिः सह सं-<br>वादे द्विजाचारः ५६ |            | यमस्मृतिः ६.   |            |
| अध्यायः २.                                    |            | महापातकोपपातकादीनां वर्ण-<br>क्रमेण संक्षेपतः प्राय-<br>श्चित्तविधिकथनम् ९२              |            |
| क्षत्रियादीनामाचारकथनम् ५९                    |            |  |            |
| अध्यायः ३.                                    |            |  |            |
| उपनीतस्य गुहकुलेषु वसतो<br>चटोराचारः ६१       |            |  |            |
| अध्यायः ४.                                    |            |  |            |
| विस्तरेण गृहिणः सदाचार-<br>निरूपणम् ६३        |            |  |            |

( ४ ) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः.                        | पृष्ठांकाः. | विषयाः                               | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------|-------------|--------------------------------------|------------|
| <b>आपस्तंबस्मृतिः ७.</b>       |             | <b>अध्यायः ६.</b>                    |            |
| <b>अध्यायः १.</b>              |             | नीलीवस्त्रसंबंधेन प्रायश्चित्तम् ११२ |            |
| आपस्तंबक्राधिप्राते प्रमादाद-  |             | <b>अध्यायः ७.</b>                    |            |
| कामतो धालगवादीनां              |             | रजस्वलाशुद्धिनिरूपणम् ११३            |            |
| विपत्तिदाने कथं निष्कृ-        |             | <b>अध्यायः ८.</b>                    |            |
| तिरिति मुनिकृतप्रश्नः १०३      |             | कांस्यादिपात्रशुद्धिः शूद्राज-       |            |
| <b>अध्यायः २.</b>              |             | सेवनतः शुद्धिकथनम् ११६               |            |
| जलशोधनप्रकारः १०६              |             | <b>अध्यायः ९.</b>                    |            |
| <b>अध्यायः ३.</b>              |             | भुंजानस्य गुदस्रवणे प्राय-           |            |
| अज्ञानतोऽस्यजातिगृहनिवासे      |             | श्चित्तम्, अलेह्यापेयाभक्ष्य-        |            |
| गृहपतेः प्रायश्चित्तम्, वा-    |             | रेतोमूत्रादीनां भक्षणे               |            |
| लघृद्धादीनां पापनिवार-         |             | प्रायश्चित्तम् ११८                   |            |
| णाय प्रायश्चित्तव्यवस्था-      |             | <b>अध्यायः १०.</b>                   |            |
| निरूपणम् १०८                   |             | क्षमाशीलस्य क्रोधरहितस्या-           |            |
| <b>अध्यायः ४.</b>              |             | वश्यं मोक्षः १२३                     |            |
| चंडालकूपभांडेषु जलपाने         |             | <b>संवर्तस्मृतिः ८.</b>              |            |
| प्रतिवर्णं प्रायश्चित्तम् १०९  |             | ब्रह्मचारिणोऽवश्यं कर्तव्य-          |            |
| <b>अध्यायः ५.</b>              |             | कथनम् १२५                            |            |
| चंडालस्पर्शे उच्छिष्टप्राशनादौ |             | गृहधार्मिणः कर्तव्यवर्गप्रणय-        |            |
| च प्रायश्चित्तम् १११           |             | नम् १२८                              |            |

| विषयाः..   | पृष्ठाङ्काः.. | विषयाः  | पृष्ठाङ्काः |
|--|---------------|---|-------------|
| तृतीयचतुर्थाश्रमयोः संक्षेपतो-<br>धर्मकथनम्  | १३५           | षष्ठः खण्डः<br>अश्रयाधानकालनिर्णयः                              | १५७         |
| ब्रह्मप्रस्य प्रायश्चित्तनिरूप-<br>णम्   | १३६           | सप्तमः खण्डः<br>अरणिद्वयविचारः                                  | १५८         |
| सुरापानादिमहापातकोपपा-<br>तकानां शुद्धिः   | १३७           | अष्टमः खण्डः<br>अरणितोऽग्नेर्निष्कासनप्रका-<br>रः, सुवप्रमाणम्, | १६०         |
| <b>कात्यायनस्मृतिः ९</b>   |               | समित्प्रमाणकथनञ्च   | १६०         |
| प्रथमः खण्डः<br>यज्ञोपवीतनिर्माणप्रकारः, वृ-<br>द्धौ पूज्यानां देवतानां<br>नामानि, वसोर्धारावृद्धि-<br>श्राद्धसंबन्धविचारः | १४९           | नवमः खण्डः<br>होमकालकथनम्, असमिद्धा-<br>ग्नौ होमे दोषकथनञ्च     | १६२         |
| द्वितीयः खण्डः<br>वृद्धिश्राद्धे विशेषकथनम्  | १५१           | दशमः खण्डः<br>प्रातःस्नानसंबन्धेन जलादीनां<br>विचारः            | १६४         |
| तृतीयः खण्डः<br>वृद्धिश्राद्धविधानकथनम्  | १५३           | एकादशः खण्डः<br>संध्योपासनविधिनिरूपणम्                          | १६६         |
| चतुर्थः खण्डः<br>पिष्ठदानादिविधिकथनम्  | १५४           | द्वादशः खण्डः<br>पितृतर्पणविधिः                                 | १६८         |
| पंचमः खण्डः<br>वृद्धिश्राद्धकरणेन क्रियमाण-<br>संस्कारसांगता   | १५५           | त्रयोदशः खण्डः<br>पञ्चमहायज्ञविधिकथनम्                          | १६९         |

( ६ ) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः  | पृष्ठांकाः | विषयाः   | पृष्ठांकाः |
|---|------------|--|------------|
| चतुर्दशः खण्डः<br>पृथिव्यादिभ्योऽन्नप्रदानम्,<br>अग्निप्रार्थनादिकथ्य   | १७०        | एकविंशः खण्डः<br>गृहपतिमरणे तदाहव्यदस्था-<br>दिकथनम्   | १८६        |
| पंचदशः खण्डः<br>ब्रह्मणे दक्षिणादानमानम्<br>आज्यस्थात्यादिमानं च  | १७२        | द्वाविंशः खण्डः<br>शवस्पृशां श्मशानात्पुनः परा-<br>वर्तनम्   | १८८        |
| षोडशः खण्डः<br>अन्वाहार्याप्रहायण्यादिषु पि-<br>तृयज्ञादिकथनम्  | १७६        | त्रयोविंशः खण्डः<br>आहिताग्नेः परदेशमरणे व्य-<br>वस्थाकथनम्, आहिताग्निस्त्री-<br>मरणे दाहादिकथनञ्च   | १८९        |
| सप्तदशः खण्डः<br>पितृयज्ञविधिनिरूपणम्   | १७७        | चतुर्विंशः खण्डः<br>सूतके कर्मणां त्यागः, पोद-<br>शश्राद्धविधिश्च  | १९१        |
| अष्टादशः खण्डः<br>दर्शपौर्णमासादिषु होमादि-<br>विचारः   | १८०        | पचविंशः खण्डः<br>ब्रह्महंदादियुक्तानां बहिःसं-<br>स्कारांभावे कर्तव्यविधिः<br>ब्रह्मचारिव्रतकर्तव्यताती-<br>तानां संस्काराणां प्राय-<br>श्चित्तपुरःसरं पुनःसं-<br>स्कारकथनम् | १९२        |
| एकोनविंशः खण्डः<br>पतिप्रवासेऽग्निपरिचरणे स्त्री-<br>णामधिकारस्तासां मह-<br>त्ववर्णनप्रसंगेन अग्निसे-<br>विनः प्रशंसनम् | १८२        |  |            |
| विंशः खण्डः<br>पुनराधानाग्निसमारोपणादि-<br>विचारः   | १८४        |  |            |



विषयाः पृष्ठांकाः

विषयाः पृष्ठांकाः

षड्विंशः खण्डः  
वृषोत्सर्जनादौ समशनीयच-  
रोर्निर्वापादिकथनम् १९४

सताविंशः खण्डः  
अन्वाहार्यत्रिधिकथनम् १९६

अष्टाविंशः खण्डः  
उपाकृत्य उदगयने अध्यय-  
नादिविचारः १९८

एकोनविंशः खण्डः  
दर्मकूर्चतः पशोः स्तोतसां  
क्षालनादिविचारः

बृहस्पतिस्मृतिः १०.

बृहस्पतिदेवेन्द्रसंवादे भूदा-  
नस्यातिप्रशंसनम् २०३

पुत्रकर्तव्येषु मध्ये गयागमन-  
स्य नीलवृषोत्सर्जनस्य च  
पितृसंतोषकरत्वकथनम् २०५

स्वदत्तपरदत्तायाभूमिहरणादा-  
भूतसंप्लवं नरके निवासः २०७

ब्रह्मस्वहरणेन सर्वस्वविनाशः २०८

पात्रेषु गोहिरण्यवस्त्रान्नमही-  
तिलवितरणात्सर्वपातकं-  
विनाशः, वापीकूपतडा-  
गोद्यानोपवनपुनःसंस्म-  
रणे मुक्तिलाभः, अन्न-  
दानप्रशंसनञ्च २०९

ब्रह्मपातकविचारः, फलमूला-  
शनादिब्रतफलकथनञ्च २१०

पाराशरस्मृतिः ११.

अध्यायः १.

व्यासेन सह मुनीनां बदरि-  
काश्रमे पराशरसमीपग-  
मनम्, पराशरं प्रति-  
व्यासस्य कलौ चातुर्व-  
र्ण्यसंपादनीयधर्मविषय-  
कः प्रश्नः षट्कर्मकारि-  
णो देवातिथिपूजकस्य  
सदा सौख्यलाभः, अति-  
थिसत्कारकथनम्, सामा-  
न्यतो वर्णचतुष्टयस्य क-  
र्मकथनम् २१२

# ( ८ ) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

| विषयः  | पृष्ठांकाः | विषयः   | पृष्ठांकाः |
|--|------------|---|------------|
| अध्यायः २.<br>कलावावश्यकसाधारण वर्ण-<br>चतुष्टयगृहस्थाचारकथ-<br>नम्  | २२०        | अध्यायः ६.<br>संक्षेपेण प्राणिहत्यानिष्कृति-<br>निरूपणम्  | २३३        |
| अध्यायः ३.<br>जननमरणाशौचशुद्धिकथनं<br>वर्णचतुष्टयस्य   | २२२        | अध्यायः ७.<br>दारवादिपात्रशुद्धिः, वृषली-<br>पितृत्वे दोषमुक्त्वा प्राय-<br>श्चित्तकथनम्, रजस्वला<br>स्पर्शादिषु प्रायश्चित्तकथ-<br>नम्           | २४१        |
| अध्यायः ४.<br>वध्वधनेन स्त्रीपुरुषयोर्मरणे<br>षट्कालं नरके निवासः,<br>गवादिहृतानां द्विजशवानां<br>दाहे तप्तकृच्छ्रम् वप्तकृच्छ्र-<br>लक्षणम् परिवेदनादिदो-<br>षस्त्र्यह्नुद्विविचारश्च | २२७        | अध्यायः ८.<br>वधनयोक्तेषु गवामकामतो<br>मृत्यौ प्रायश्चित्तम्  | २४६        |
| अध्यायः ५.<br>वृक्षश्चानादिदृष्टानां शुद्धि-<br>कथनम्, चण्डालादिहृत-<br>ज्जाक्षणदेहस्पर्शे प्रायश्चित्त-<br>म्, आङ्गितामर्देशांतरम-<br>रणे व्यवस्था                                    | २३१        | अध्यायः ९.<br>संरक्षणार्थं गवां रोचवन्धना-<br>दिभिर्तोशे न दोषः, अन्य-<br>प्रकारेण गोवधे प्रायश्चि-<br>त्तम्, प्रायश्चिताकरणे नर-<br>कप्राप्तिश्च | २५१        |
|  |            | अध्यायः १०.<br>अग्न्यागमने चातुर्वर्ण्येषु<br>हिता निष्कृतिः  | २५७        |

विषयाः पृष्ठांकाः

अध्यायः ११.

अमेध्यरेतोगोमांसादि भक्ष-  
णे प्रायश्चित्तम्, शूद्राद्यश-  
भोजने प्रायश्चित्तम् २६२

अध्यायः १२.

विष्णुत्रादिभक्षणे प्राय-  
श्चित्तम्, ब्रह्महत्यादिप्राय-  
श्चित्तम् २६६

व्यासस्मृतिः १२.

अध्यायः १.

वेदोक्तकर्मप्रचारभूमिकथ-  
नम्, षोडशसंस्कार संज्ञा-  
कालकथनम्, ब्रह्मचारि-  
धर्मनिरूपणञ्च २७७

अध्यायः २.

द्वितीयाश्रमव्रतो द्विजस्याचा-  
रवर्णनम्, स्त्रीधर्मनिरूप-  
णम्, पतिव्रतास्त्रीपरि-  
त्यागे दोषकथनञ्च २८१

अध्यायः ३.

गृहस्थस्य नित्यनैमित्तिकका-  
र्म्यकर्मनिरूपणम् २८७

विषयाः पृष्ठांकाः

अध्यायः ४.

गृहस्थाश्रमप्रशंसनम्, वर्णांतां  
दानधर्मनिरूपणञ्च २९४

शंखस्मृतिः १३.

अध्यायः १.

वर्णचतुष्टयस्य कर्मनिरूपणम् ३०३

अध्यायः २.

संस्कारकालनिर्णयः ३०४

अध्यायः ३.

पित्रोपनीतस्य द्विजस्य वेद-  
स्वीकरणव्रतनियमकथनम् ३०५

अध्यायः ४.

अष्टविधविवाहकथनम्, वर्ण-  
चतुष्टयस्य स्त्रीस्वीकरणम् ३०७

अध्यायः ५.

पंचसूतानिवृत्तये पंचमहाय-  
ज्ञकथनम्, अतिथिपूजना-  
ग्निहोत्राभ्यां गृहधर्मिणः  
साफल्यताकथनञ्च ३०९

( १० ) अष्टादशस्मृतिविषयातुक्रमणिका -

| विषयाः   | पृष्ठाङ्काः | विषयाः  | पृष्ठाङ्काः |
|--|-------------|---|-------------|
| अध्यायः ६.   |             | अध्यायः १२.   |             |
| द्विजस्य वयसस्तृतीयभागे<br>वनाश्रयणं तद्धर्मकथनञ्च ३११   |             | गायत्रीमंत्रजपफलकथनम् ३२२   |             |
| अध्यायः ७.   |             | अध्यायः १३.   |             |
| ब्रह्मप्राप्ते चतुर्थश्रमस्वी-<br>कारोत्तरं सदाचारनिर्ण-<br>यः, अष्टांगयोगसाधनक-<br>थनम्, ध्यानयोगनिरूप-<br>णञ्च ३१२ |             | तर्पणविधिनिरूपणम् ३२४   |             |
| अध्यायः ८.   |             | अध्यायः १४.   |             |
| नित्यनैमित्तिकादिषड्विधस्ता-<br>ननिरूपणम् ३१५  |             | दैवे कर्मणि ब्राह्मणपरीक्षणं<br>पित्र्यकर्मण्यवश्यं परीक्ष-<br>णम्, पंक्तिदूषकब्राह्मण-<br>कथनपूर्वकं पंक्तिरावनेत्व-<br>कथनम्, श्राद्धकालदेशा-<br>दिकथनञ्च ३२६ |             |
| अध्यायः ९.   |             | अध्यायः १५.   |             |
| विधिपूर्वकं क्रियास्नाननिरू-<br>पणम् ३१७   |             | सर्विद्वानां जननमरणाशौच-<br>विचारः ३२९  |             |
| अध्यायः १०.  |             | अध्यायः १६.   |             |
| शुभकरोचमनक्रियाविधिक-<br>थनम् ३१९  |             | पात्रशौचकर्मनिरूपणम्, मू-<br>त्रपुरीषकरणोत्तरं शुद्धि-<br>कथनञ्च ३३२  |             |
| अध्यायः ११.  |             | अध्यायः १७.   |             |
| इतराद्विषयिषुपर्यगोसूक्तज-<br>पफलकथनम् ३२७   |             | ब्रह्ममगोघ्नसुरापापीनां शु-<br>द्धयर्थं प्रायश्चित्ताविधिः ३३०  |             |

| विषयाः  | पृष्ठांकाः | विषयाः  | पृष्ठांकाः |
|---|------------|---|------------|
| अध्यायः १८.   |            | अध्यायः ३.  |            |
| अघमर्पणप्राजापत्यादिविवर-<br>णम् ३४२  |            | सुधेषदानकर्मात्रिकर्मादिवि-<br>चारनिरूपणम् ३६१                                    |            |
| लिखितस्मृतिः १४.  |            | अध्यायः ४.  |            |
| द्विजातीनां सामान्यधर्मेषु<br>इष्टापूर्तकथनम्, श्राद्धका-<br>लदेशविचारः, सामा-<br>न्यतो द्विजाचारकथनम्, प्रा-<br>श्चित्तविधिकथनञ्च ३४४  |            | अनुकूलकलत्रस्य गार्हस्थं<br>सुखकरमिति स्त्रीवि-<br>षयकविचारः ३६५                  |            |
| दक्षस्मृतिः १५.   |            | अध्यायः ५.  |            |
| अध्यायः १.  |            | शौचाशौचविषये संक्षेपेण<br>विचारः ३६७  |            |
| द्विजपुत्रस्याष्टवर्षपर्यन्तं भ-<br>क्ष्याभक्ष्यादिषु दोषाभा-<br>वकथनम्, तदूर्ध्वं आश्रम-<br>राहित्ये दोषकथनम्, आ-<br>भमलक्षणवचनञ्च ३५३ |            | अध्यायः ६.  |            |
| अध्यायः २.  |            | जन्ममृत्युनिमित्तकाशौचनि-<br>र्णयः ३६९  |            |
| दिने दिने प्रातरुत्थाय<br>द्विजस्यावश्यकर्तव्या-<br>नां कथनम् ३५५   |            | अध्यायः ७.  |            |
|   |            | पङ्गयोगस्य संक्षेपतो विव-<br>रणम् ३७१   |            |
|   |            | गौतमस्मृतिः १६.   |            |
|   |            | अध्यायः १.  |            |
|   |            | वर्णत्रयस्थोपनयनकालमौजी<br>दंडादिविचारः, गुरोः सदा-<br>शास्त्रप्रहणनियमकथनञ्च ३७८ |            |

( १२ ) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

| विषयः   | पृष्ठांकाः | विषयः   | पृष्ठांकाः |
|---|------------|---|------------|
| अध्यायः २.  |            | अध्यायः ८.  |            |
| उपनयनात्पूर्वं शौचाचारनि-<br>यमाभावकथनम्, उपन-<br>यनोत्तरं प्रतिपालनीयनि-<br>यमकथनञ्च | ३८०        | गर्भाधानादिचत्वारिंशत्सं-<br>स्कारयुक्तस्य द्विजस्य<br>कृतापराधस्यापि न वध-<br>बंधादिदंडाधिकारः, तस्यै-<br>व ब्रह्मणः सालोक्यादि-<br>लाभश्च | ३८७        |
| अध्यायः ३.  |            | अध्यायः ९.  |            |
| नैष्ठिक ब्रह्मचारिणो नियम-<br>कथनम्   | ३८२        | दारपरिमहोत्तरं द्विजस्याव-<br>श्यपालनीयव्रतकथनम्  | ३८८        |
| अध्यायः ४.  |            | अध्यायः १०.   |            |
| अनुलोमप्रतिलोमोत्पन्नवर्ण-<br>चतुष्टयजातिनिरूपणम्                                     | ३८३        | वर्णचतुष्टयस्योपजीविका क-<br>थनम्   | ३९१        |
| अध्यायः ५.  |            | अध्यायः ११.   |            |
| दारपरिमहोत्तरं कर्तव्यधर्म-<br>कथनम्  | ३८४        | राज्ञः सदा शक्तिमतः सदा-<br>चारनिरूपणम्   | ३९२        |
| अध्यायः ६.  |            | अध्यायः १२.   |            |
| अभिधादनविषये विचारः   | ३८५        | शूद्रस्य दंडादिविचारः   | ३९४        |
| अध्यायः ७.  |            | अध्यायः १३.   |            |
| आपरकल्पो ब्राह्मणस्य निरु-<br>प्यते   | ३८६        | साक्षिप्रसंगेन सत्यासत्यकथ-<br>नविचारः  | ३९६        |

| विषयाः   | पृष्ठांकाः | विषयाः                              | पृष्ठांकाः |
|--|------------|-------------------------------------|------------|
| अध्यायः १४.  |            | अध्यायः २१.                         |            |
| वर्णचतुष्टयस्याशौचविचारः   | ३९७        | पंक्तिवाह्यद्विजादिकथनम्            | ४०५        |
| अध्यायः १५.  |            | अध्यायः २२.                         |            |
| श्राद्धविचारः  | ३९८        | पतितनिरूपणम्                        | ४०६        |
| अध्यायः १६.  |            | अध्यायः २३.                         |            |
| अध्ययनान्ध्यायविचारः   | ३९९        | ब्राह्मणहनने प्रायश्चित्तविचारः     | ४०७        |
| अध्यायः १७.  |            | अध्यायः २४.                         |            |
| ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहान्नभोज-<br>नादिविचारः                                | ४०१        | सुरापानादिप्रायश्चित्तनिरू-<br>पणम् | ४०८        |
| अध्यायः १८.  |            | अध्यायः २५.                         |            |
| स्त्रीणां सदाचारविचारः   | ४०२        | रहस्यप्रायश्चित्तनिरूपणम्           | ४१०        |
| अध्यायः १९.  |            | अध्यायः २६.                         |            |
| निषिद्धाचरणप्रायश्चित्तवि-<br>चारः   | ४०३        | अवकीर्णिनो विचारः                   | ४११        |
| अध्यायः २०.  |            | अध्यायः २७.                         |            |
| चतुष्पष्टियातनास्थानेषु दु-<br>खान्यनुभूयान्नोत्पन्नानां<br>चिह्नादिविचारः | ४०४        | कुच्छ्रव्याख्यानम्                  | "          |
|  |            | अध्यायः २८.                         |            |
|  |            | चांद्रायणविधिनिरूपणम्               | ४१३        |
|  |            | अध्यायः २९.                         |            |
|  |            | ऋक्विभिर्माननिरूपणम्                | ४१४        |

( १४ ) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमिका ।

विषयाः पृष्ठांकाः

शातातपस्मृतिः १७.

अध्यायः १.

पातकान्नरकादिषु यातना  
उपभुज्य भूमाशुतनानां  
देहचिह्ननिरूपणम् ४१७

अध्यायः २.

महाहा नरकादियातना उप-  
भुज्य कुप्री भवति तस्य  
प्रायश्चित्तम्, तथैव गवा-  
दिहनेष्वपि प्रायश्चित्तानि ४२०

अध्यायः ३.

सुरापादिसमापक्षपाति-  
पर्यन्तं प्रायश्चित्तम् ४२६

अध्यायः ४.

कुलमादिनानाविधद्रव्यचोर-  
पर्यन्तं प्रायश्चित्तम् ४२८

अध्यायः ५.

मातृगाम्यदिनिषिद्धस्त्रीगा-  
मिनां प्रायश्चित्तम् ४३२

विषयाः पृष्ठांकाः

अध्यायः ६.

अश्वसुररभृग्यादिहतानां  
गतिहीनानां संततिनाश-  
कत्वात् तदुद्धाराय प्राय-  
श्चित्तविधिनिरूपणम् ४३६

वसिष्ठस्मृतिः १८.

✓ अध्यायः १.

पुरुषनिःश्रेयसार्थं धर्मजि-  
ज्ञासा, धर्माचरणे भार्या-  
वर्तप्रदेशस्य महत्त्वकथ-  
नम्, ब्राह्मणप्राशस्त्यक-  
थनञ्च ४४२.

अध्यायः २.

वर्णत्रयस्य द्विजत्वकथनम्,  
अध्ययनावश्यकत्वकथने  
जीविकाविचारकथनञ्च ४४६

अध्यायः ३.

वेदमनधीयानस्य द्विजस्य  
शूद्रवत् स्थितिः, आततायी



| विषयः  | पृष्ठांकाः | विषयः   | पृष्ठांकाः |
|--|------------|---|------------|
| ब्राह्मणश्चेत्तद्धनने न दोषः,<br>धर्मकथने अधिकारिणः,<br>आचमनप्रकारः, भूम्या-<br>दीनां शुद्धनिरूपणञ्च ४४७ |            | अध्यायः ८.<br>विवाहयोग्यस्त्रीकथनम्, वि-<br>वाहानंतरं पालनीयधर्मा-<br>णां संक्षेपेण निरूपणम् ४५८                                |            |
| अध्यायः ४.   |            | अध्यायः ९.<br>वानप्रस्थधर्माणां संक्षेपेण व-<br>र्णनम् ४६०  |            |
| 'संस्कारविशेषतश्च' तुर्वर्ण्यक-<br>रणम्, देवतातिथिपूर्णा-<br>यां पशुवधे न दोषः,<br>अशौचविचारश्च ४५१      |            | अध्यायः १०.<br>यतिनियमनिरूपणम् ४६०  |            |
| अध्यायः ५.   |            | अध्यायः ११.<br>पट्कर्मणो द्विजस्यापि विभो-<br>जनविचारः श्राद्धविचारः<br>द्विजानामुपनयनकालदंडाजि-<br>नवस्त्रभिक्षादिविचारश्च ४६२ |            |
| स्त्रीणां स्वातंत्र्याभावकथ-<br>नम्, रजस्वलास्त्रीणां नि-<br>यमाः ४५३                                    |            | अध्यायः १२.<br>क्ष्मातकव्रतानां निरूपणम् ४६६  |            |
| अध्यायः ६.   |            | अध्यायः १३.<br>स्वाध्यायोपाकर्मनिरूपणम् ४६८   |            |
| आचारप्रशंसनम्, सामान्य-<br>तो ब्राह्मणाचारकथनञ्च ४५४   |            | अध्यायः १४.<br>भोज्यभोज्यविषये विचारः ४७०   |            |
| अध्यायः ७.   |            |   |            |
| सामान्यतो ब्रह्मचर्यविधि-<br>निरूपणम् ४५८  |            |   |            |

( १६ ) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

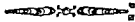
| विषयाः                         | पृष्ठांकाः | विषयाः                         | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------|------------|--------------------------------|------------|
| अध्यायः १५.                    |            | स्य धर्मोपदेशानहत्वाद्         |            |
| पुत्रदानप्रतिमद्विचारः         | ४७२        | विचारश्च                       | ४८०        |
| अध्यायः १६.                    |            | अध्यायः १९.                    |            |
| राजव्यवहारसाक्षिप्रभृति-       |            | संक्षेपेण राज्ञो धर्मदिरूपणम्  | ४८१        |
| विचारः                         | ४७४        | अध्यायः २०.                    |            |
| अध्यायः १७.                    |            | संक्षेपतो ब्रह्मणादीनां प्राय- |            |
| पुत्रजननातिवृत्तणमोचनं         |            | श्चित्तिरूपणम्                 | ४८३        |
| तत्संघेन द्वादशपुत्रकथ-        |            | अध्यायः २१.                    |            |
| नम्, दायप्रहीद्विचारश्च        | ४७६        | वर्णत्रयस्य ब्राह्मणागमने      |            |
| अध्यायः १८.                    |            | उभयोः प्रायश्चित्तिविधि-       |            |
| प्रातिलोभ्येनोत्पन्नानां चंडा- |            | कथनम्                          | ४८६        |
| लादीनां विचारः, शुद्र-         |            |                                |            |

इत्यष्टादशस्मृत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

# अष्टादशस्मृतयः ।

श्रीयोगिजनवल्लभाय नमः ।



अथ अत्रिस्मृतिः १.

हुताग्निहोत्रमासीनमात्रिं वेदविदां वरम् ॥  
सर्वशास्त्रविधिज्ञं तमृषिभिश्च नमस्कृतम् ॥ १ ॥  
नमस्कृत्य च ते सर्व इदं वचनमब्रुवन् ॥  
हितार्थं सर्वलोकानां भगवन्कथयस्व नः ॥ २ ॥  
अत्रिरुवाच ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा यन्मे पृच्छथ संशयम् ॥  
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥  
सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान्देवान्प्रणम्य च ॥  
जप्त्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रानुसारतः ॥ ४ ॥  
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ॥  
चतुर्णामपि वर्णानामत्रिः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ५ ॥  
ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ॥

(२)

अष्टादशस्मृतयः ।

सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते श्रुत्वेदं शास्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥

तस्मादिदं वेदविद्विरध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥

शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सदृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥ ७ ॥

अकुलीने ह्यसदृत्ते जडे शूद्रे शठे द्विजे ॥

एतेष्वेव न दातव्यमिदं शास्त्रं द्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥

एकमध्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ॥

पृथिव्यां नास्ति तद्व्यं यद्वत्त्वा ह्यनृणी भवेत् ॥ ९ ॥

एकाक्षरमदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते ॥

शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डोलष्वभिजायते ॥ १० ॥

वेदं गृहीत्वा यः कश्चिच्छास्त्रं चैवावमन्यते ॥

स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ११ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोपि मानवाः ॥

प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्युपस्थिताः ॥ १२ ॥

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥

क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥

शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥

दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ॥

शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥

तदेतत्कर्माभिहितं संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥  
 बहुमानमिह प्राप्य प्रयांति परमां गतिम् ॥ १६ ॥  
 ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेण्ववस्थिताः ॥  
 तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥  
 आत्मीयं संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ॥  
 परधर्मो भवेत्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥  
 बन्धो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥  
 यतो राष्ट्रस्य हन्तासौ यथा वद्वेश्व वै जलम् ॥ १९ ॥  
 प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ॥  
 याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविद्रुपतनं स्मृतम् ॥ २० ॥  
 सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥  
 ज्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ २१ ॥  
 अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥  
 तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभक्त ददंडवत् ॥ २२ ॥  
 विद्वद्भोज्यमविद्रांसो येषु राष्ट्रेषु भुंजते ॥  
 तेऽप्यनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥  
 ब्राह्मणान्वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ॥  
 तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्रैतान्पूजयेन्मृतपः ॥ २४ ॥  
 त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आश्रमाश्च त्रयोमयः ॥

एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥ २५ ॥

उभे संध्ये समाधाय मौनं कुर्वति ते द्विजाः ॥

दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके मंहीयते ॥ २६ ॥

य एवं कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणम् ॥

यशःस्वर्गेनृपत्वं च पुनः कोशं च सोऽर्जयेत् ॥ २७ ॥

दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पञ्चा न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः ॥

अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पंचैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥ २८ ॥

यत्प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवंतीह पार्थिवाः ॥

नतु क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवंति द्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥

अलामे देवखातानां ह्रदेषु सरसीषु च ॥

उद्धृत्य चतुरः पिंडान्पारक्ये स्नानमाचरेत् ॥ ३० ॥

वसाशुक्रमसृद्धं मज्जा मूत्रं विद् कर्णविष्णखाः ॥

श्लेष्मास्थि दूषिका स्वेदोद्वादशैते नृणां मलाः ॥ ३१ ॥

षण्णां पण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥

मृद्धारिभिश्च पृष्ठेषामुत्तरेषां तु चारिणा ॥ ३२ ॥

शौचमंगलानायासा अनसूयाऽस्पृहादमः ॥

लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥ ३३ ॥

१ यस्य राज्ये राष्ट्रेषु इति शेषः । २ स राजा इति शेषः । ३ परकीये  
जलस्थाने ।

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ॥  
 आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ ३४ ॥  
 प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ॥  
 एतद्धि भंगलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ३५ ॥  
 शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा ॥  
 अत्यंतं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥ ३६ ॥  
 न गुणान्गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यान्गुणानपि ॥  
 न हसेच्चान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥  
 यथोत्पन्नेन कर्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु ॥  
 न स्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥  
 बाह्य आध्यात्मिके वापि दुःख उत्पादिते परैः ॥  
 न कुप्यति न चाहन्ति दम इत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥  
 अहन्यहनि दातव्यमदीनेनांतरात्मना ॥  
 स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥  
 परस्मिन्बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ॥  
 आत्मवर्द्धतितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥ ४१ ॥  
 यश्चेतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोपि भवेद्विजः ॥  
 स गच्छति परं स्थानं जायतेनेह वै पुनः ॥ ४२ ॥  
 इष्टापूर्तं च कर्तव्यं ब्राह्मणेनेव यत्रतः ॥  
 इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तं मोक्षो विधीयते ॥ ४३ ॥

अभिहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥  
 आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ४४ ॥  
 वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥  
 अन्नप्रदानमारामः पूतमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥  
 इष्टाष्टं द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने ॥  
 अधिकारी भवेच्छूद्रः पूते धर्मे न वैदिके ॥ ४६ ॥  
 यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥  
 यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ ४७ ॥  
 आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥  
 प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मीर्दवं च यमा दश ॥ ४८ ॥  
 शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ॥  
 व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥ ४९ ॥  
 प्रतिनिधिं कुशमयं तीर्थधारिषु मज्जति ॥  
 यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत सः ॥ ५० ॥  
 मातरं पितरं वापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ॥  
 यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशफलं भवेत् ॥ ५१ ॥  
 अपुत्रेणैव कर्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ॥  
 पिंडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥  
 पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेजीवतो मुखम् ॥



ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वं च गच्छति ॥ ५३ ॥  
 जातमात्रेण पुत्रेण पितृणामनृणी पिता ॥  
 तदाहि शुद्धिमामोति नरकात्त्रायते हि सः ॥ ५४ ॥  
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥  
 यजेत चाश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ५५ ॥  
 कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः ॥  
 गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ५६ ॥  
 फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥  
 गयशीर्षं पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥ ५७ ॥  
 महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ॥  
 अक्षयाल्लभन्ते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५८ ॥  
 शंकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोज्यविवर्जिते ॥  
 आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५९ ॥  
 अक्षारलवणं रौक्षं पिवेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥  
 त्रिरात्रं शंखपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥ ६० ॥  
 मद्यभांडे द्विजः कश्चिदज्ञानापिबते जलम् ॥  
 प्रायाश्चित्तं कथं तस्य मुच्यते केन कर्मणां ॥ ६१ ॥  
 पालाशविल्वपत्राणि कुशान्पद्मान्युदुंबरम् ॥  
 क्वाथयित्वा पिवेदापस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६२ ॥

सायं प्रातस्तु यः संध्यां प्रमादादिक्रमेत्सकृत् ॥  
 गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ ६३ ॥  
 रोगाक्रान्तोऽथवाऽऽप्यासात् स्थितः स्नानजपाद्गृहिः ॥  
 ब्रह्मकूर्चं चरेद्भक्त्या दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ ६४ ॥  
 गवां शृंगोदके स्नात्वा महानद्युपसंगमे ॥  
 समुद्रदर्शने चापि व्यालदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ६५ ॥  
 वृकश्चानशृगालैस्तु यदि दष्टस्तु ब्राह्मणः ॥  
 हिरण्योदकसंमिश्रं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ६६ ॥  
 ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥  
 उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ६७ ॥  
 संघतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥  
 सघृतं यावकं प्राश्य घृतशेषं समापयेत् ॥ ६८ ॥  
 मोहात्ममादात्संलोभाद्भक्तभंगं तु कारयेत् ॥  
 त्रिरात्रेणैव शुद्ध्येत पुनरेव व्रती भवेत् ॥ ६९ ॥  
 ब्राह्मणानां यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥  
 दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ७० ॥  
 क्षत्रियान्नं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥  
 त्रिरात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ॥ ७१ ॥

अभोज्यान्नं तु भुक्त्वा त्रं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव वा ॥  
 जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पित्रेत् ॥ ७२ ॥  
 असंस्पृश्येन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥  
 तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्पण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ७३ ॥  
 अज्ञानात्प्राश्य विष्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा ॥  
 पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ७४ ॥  
 वपनं मेखला दंडं भैक्ष्यचर्यं व्रतानि च ॥  
 निवर्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्माणि ॥ ७५ ॥  
 गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ॥  
 प्रत्याज्यं मृन्मयं भांडं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ ७६ ॥  
 गृहात्रिष्कम्प तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ॥  
 गोमयेनोपलिप्याथ छांगेनाव्रापयेत्पुनः ॥ ७७ ॥  
 बाह्यैर्मंत्रैस्तु पृतं तु हिरण्यकुशवारिभिः ॥  
 तेनैवाभ्युक्ष्य तद्देशं शुध्यते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥  
 राजन्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः ॥  
 पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ ७९ ॥  
 शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ॥  
 तदुच्छिष्टं तु संप्राश्य यत्रेन कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ८० ॥  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि सुतकस्य विनिर्णयम् ॥

प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ ८१ ॥  
 एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योमिवेदसमन्वितः ॥  
 त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥ ८२ ॥  
 व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ॥  
 राज्ञां तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छंति ब्राह्मणाः ८३ ॥  
 ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ॥  
 वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ८४ ॥  
 सपिंडानां तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः ॥  
 पिंडांश्चोदकदानं च शावशौचं तथानुगम् ॥ ८५ ॥  
 चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षडहः पंचमे तथा ॥  
 षष्ठे चैव त्रिरात्रं स्यात्सप्तमे त्र्यहमेव वा ॥ ८६ ॥  
 मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ॥  
 स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भर्तारि यौनिकम् ॥ ८७ ॥  
 शवस्पृष्टं तृतीये तु सचैलं स्नानमाचरेत् ॥  
 चतुर्थे सप्तभिर्दिनैः स्यादेष शावविधिः स्मृतः ॥ ८८ ॥  
 एकत्र संस्कृतानां तु मातृणामेकभोजिनाम् ॥  
 स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक्पृथक् ८९ ॥  
 उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नं मृतसूतके ॥  
 पाचकान्नं नवभ्रातृं भुक्त्वा चाद्रायणं चरेत् ॥ ९० ॥  
 सूतकान्नमधर्माय यस्तु प्राश्नाति मानवः ॥

त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ॥ ९१ ॥  
 महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ॥  
 होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्काग्नेन फलेन वा ॥ ९२ ॥  
 बालस्त्वन्तर्दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥  
 सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ ९३ ॥  
 कृतचूडे प्रकुर्वीत उदकं पिंडमेव च ॥  
 स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेव च ॥ ९४ ॥  
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव मंत्रे पूर्वकृते तथा ॥  
 यज्ञे विवाहकाले च सद्यः शौचं विधीयते ॥ ९५ ॥  
 विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥  
 पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् ॥ ९६ ॥  
 मृतसञ्जनोर्द्धं तु सूतकादौ विधीयते ॥  
 स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाश्चेन्न संस्पृशेत् ॥ ९७ ॥  
 पंचमेहनि विज्ञेयं संस्पर्श क्षत्रियस्य तु ॥  
 सप्तमेहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥ ९८ ॥  
 दशमेऽहनि शूद्रस्य कर्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ॥  
 मासेनैवात्मशुद्धिः स्यात्सूतके मृतके तथा ॥ ९९ ॥  
 व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥  
 क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ १०० ॥  
 व्यसनासक्तचित्तस्य परार्थीनस्य नित्यशः ॥

- श्राद्धयोगविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् १०१ ॥  
 द्वेकृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ॥  
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रं मातुः स्यात्पितुः सांतपनंकृतम् १०२ ॥  
 कुब्जवामनपंढ्रेषु गद्रेषु जडेषु च ॥  
 जात्यंधैः चधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ १०३ ॥  
 क्लीबे देशांतरस्ये च पतिते व्रजितेपि वा ॥  
 योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ १०४ ॥  
 पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित् ॥  
 अमिहोत्राधिकार्यस्ति न दोषः परिवेदने ॥ १०५ ॥  
 भार्यामरणपक्षे वा देशांतरगतेपि वा ॥  
 अधिकारी भवेत्पुत्रस्तथा पातकसंयुगे ॥ १०६ ॥  
 ज्येष्ठो भ्राता यदा नष्टो नित्यं रोगसमन्वितः ॥  
 अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंसस्य वचनं यथा ॥ १०७ ॥  
 नाम्नयः परिविदंति न वेदा न तपोसि च ॥  
 न च श्राद्धं कनिष्ठो वै विना चैवाभ्यनुज्ञया ॥ १०८ ॥  
 तस्माद्धर्मं सदा कुर्याच्छ्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ॥  
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥ १०९ ॥  
 एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्यासयेत् ॥  
 ! अमावास्यां न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ॥ ११० ॥  
 एकैकं प्रासमश्रीयाद्ग्रहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥

ज्यहं परं च नाश्रीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥  
 इत्येतत्कथितं पूर्वमहापातकनाशनम् ॥ १११ ॥  
 वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ॥  
 न स्पृशंतीह पापानि महापातकजान्यपि ॥ ११२ ॥  
 वायुभक्षो दिवा तिष्ठेद्रात्रिं नीत्वाप्सु सूर्यदृक् ॥  
 जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मवधादते ॥ ११३ ॥  
 पद्मोदुंबरविल्वाश्च कुशाश्चत्थपलाशकाः ॥  
 एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते ॥ ११४ ॥  
 पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद्घृतम् ॥  
 जग्ध्वा परेह्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ११५ ॥  
 पृथक्सांतपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥  
 सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनं स्मृतम् ॥ ११६ ॥  
 ज्यहं सायं ज्यहं प्रातरुपहं भुंक्ते त्वयाचितम् ॥  
 ज्यहं परं च नाश्रीयात्प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ११७ ॥  
 सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः ॥  
 अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥ ११८ ॥  
 कुक्कुटांडप्रमाणं स्याद्यावद्वास्य विशेषमुखे ॥  
 एतद्भासं विजानीयाच्छुद्धयर्थं कायशोधनम् ॥ ११९ ॥  
 ज्यहमुष्णं पिबेदापरुहमुष्णं पिबेत्पयः ॥  
 ज्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रये ॥ १२० ॥

षट्पलानि पिवेदापस्त्रिपलं तु पयः पिवेत् ॥  
 पलमेकं तु वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ १२१ ॥  
 ज्यहं तु दधिना भुंक्ते ज्यहं भुंक्ते च सर्पिषा ॥  
 क्षीरेण तु ज्यहं भुंक्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ १२२ ॥  
 त्रिपलं दधि क्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा ॥  
 एतदेव व्रतं पुण्यं वैदिकंकृच्छ्रमुच्यते ॥ १२३ ॥  
 एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥  
 उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रं प्रकीर्तितम् ॥ १२४ ॥  
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकाविंशतिम् ॥  
 द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ १२५ ॥  
 पिण्याकश्चामतक्रांशुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥  
 एकैकमुपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥ १२६ ॥  
 एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥  
 तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पंचदशाहिकः ॥ १२७ ॥  
 कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिवेत् ॥  
 एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ १२८ ॥  
 निशायां भोजनं चैव तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु ॥  
 अनादिष्टेषु पापेषु चांद्रायणमथोदितम् ॥ १२९ ॥  
 अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्विगुणदक्षिणैः ॥  
 यत्फलं समवामेति तथा कृच्छ्रैस्तपोधनाः ॥ १३० ॥



वेदाभ्यासरतः क्षांतो नित्यं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥  
 शौचमृद्धार्यभिरतो गृहस्थोपि हि मुच्यते ॥ १३१ ॥  
 उक्तमेताद्विजातीनां महर्षे श्रूयतामिति ॥  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥ १३२ ॥  
 जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥  
 देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि पट् ॥ १३३ ॥  
 जीवद्भर्तारि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥  
 आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३४ ॥  
 तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥  
 शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥ १३५ ॥  
 जीवद्भर्तारि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥  
 श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३६ ॥  
 सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः ॥  
 पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥ १३७ ॥  
 जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥  
 विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च ॥ १३८ ॥  
 वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत् ॥  
 तदासौ वेदविप्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥  
 एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्विजोत्तमः ॥  
 स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामपुतापुतैः ॥ १४० ॥

पावका इव दीप्यन्ते जपहोमैर्द्विजोत्तमाः ॥  
 प्रतिग्रहेण नश्यन्ति वारिणा इव पावकः ॥ १४१ ॥  
 तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥  
 नाशयन्ति हि विद्वांसो वायुर्मेघानिवांवरं ॥ १४२ ॥  
 भुक्तमात्रो यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ॥  
 लक्ष्मीर्बलं यशस्तेज आयुश्चैव प्रहीयते ॥ १४३ ॥  
 यस्तु भोजनशालायामासनस्थ उपस्पृशेत् ॥  
 तच्चान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चाद्रायणं चरेत् १४४ ॥  
 पात्रोपरि स्थिते पात्रे यस्तु स्थाप्य उपस्पृशेत् ॥  
 तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चाद्रायणं चरेत् १४५ ॥  
 अश्रद्धया च यदन्नं विप्रेभ्यो दैविके कृतौ ॥  
 न देवास्तृप्तिमायांति दातुर्भवति निष्फलम् ॥ १४६ ॥  
 हस्तं प्रक्षालयित्वा यः पिबेद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ॥  
 तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥ १४७ ॥  
 नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातुः परो गुरुः ॥  
 नास्ति दानात्परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥ १४८ ॥  
 अपात्रेष्वपि यदन्नं दहत्यासप्तमं कुलम् ॥  
 हव्यं देवा न गृह्णांति फव्यं च पितरस्तथा ॥ १४९ ॥  
 आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ॥  
 श्वानविष्टासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ १५० ॥

पेत्तलेन तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ॥  
 न दद्यादामहस्तेन आयसेन कदा च न ॥ १५१ ॥  
 मृन्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत्पितॄन् ॥  
 अन्नदाता च भोक्ता च व्रजेतां नरकं च तौ ॥ १५२ ॥  
 अभावे मृन्मये दद्यादनुजातस्तु तैर्द्विजैः ॥  
 तेषां वचः प्रमाणं स्याद्यदन्नं चातिरिक्तकम् ॥ १५३ ॥  
 सौवर्णापसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥  
 भिक्षादातुर्न धर्मोस्ति भिक्षुर्भुक्ते तु किल्बिषम् ॥ १५४ ॥  
 न च कांस्येषु भुञ्जीयादापद्यपि कदाचन ॥  
 मलाशाः सर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥ १५५ ॥  
 कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ॥  
 कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्बिषं तयोः ॥ १५६ ॥

अत्राप्युदाहरन्ति ।

सौवर्णापसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥  
 भुञ्जन्भिक्षुर्न दुष्येत दुष्येच्चैव परिग्रहे ॥ १५७ ॥  
 यतिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात्पुनर्जलम् ॥  
 तद्भक्षं मेरुणा तुल्यं तञ्जलं सागरोपमम् ॥ १५८ ॥  
 चरेन्माधुकीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥  
 एकाग्रं नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिसंमो यदि ॥ १५९ ॥

अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धं भैक्षं गृहे वसन् ॥  
 दशरात्रं पिबेद्वज्रमापस्तु व्यहमेव च ॥ १६० ॥  
 गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् ॥  
 एतद्वज्रमिति प्रोक्तं भगवानत्रिरव्रवीत् ॥ १६१ ॥  
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥  
 अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ १६२ ॥  
 षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गुर्विणीमेव वै स्त्रियम् ॥  
 आदंतजननादूर्ध्वमेवं धर्मो न हीयते ॥ १६३ ॥  
 ब्रह्महा प्रथमं चैव द्वितीयं गुरुतल्पगः ॥  
 तृतीयं तु सुरापेयं चतुर्थं स्तेयमेव च ॥ १६४ ॥  
 पापानां चैव संसर्गं पंचमं पातकं महत् ॥ १६५ ॥  
 एषामेव विशुद्ध्यर्थं चरेत्कृच्छ्राण्यनुक्रमात् ॥  
 त्रीणि वर्षाण्यकामश्चेद्ब्रह्महत्या पृथक्पृथक् ॥ १६६ ॥  
 अर्द्धं तु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ॥  
 पद्मभागो द्वादशश्चैव विदुश्चर्यास्तथा भवेत् ॥ १६७ ॥  
 त्रीन्मासान्नक्तमश्नीयाद्भूमौ शपनमेव च ॥  
 स्त्रीघातो शुद्ध्यतेऽप्येवं चरेत्कृच्छ्राब्दमेव वा ॥ १६८ ॥  
 रजकः शैलुपश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ॥  
 एतेषां यस्तु भुंक्ते धै द्विजश्चाद्रायणं चरेत् ॥ १६९ ॥

अर्धस्त्रिज यवादि ।

सर्वात्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ॥  
 पराकेण विशुद्धिः स्याद्भगवानत्रिरवतीत् ॥ १७० ॥  
 चांडालभांडे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः ॥  
 गोमूत्रयावकाहारः सतपद्द्विद्वयहान्यपि ॥ १७१ ॥  
 संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्नमंत्यजैर्वाप्युदक्यया ॥  
 अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽश्रीयात्प्राजापत्यार्धमाचरेत् ॥ १७२ ॥  
 चांडालान्नं यदा भुंक्ते चातुर्वर्णस्य निष्कृतिः ॥  
 चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं चरेत् ॥ १७३ ॥  
 पट्टात्रमाचरेद्दैश्यः पंचगव्यं तथैव च ॥  
 त्रिरात्रमाचरच्छूद्रो दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ १७४ ॥  
 ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चांडालो मूलसंस्पृशः ॥  
 फलान्यात्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७५ ॥  
 ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥  
 नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १७६ ॥  
 एकं वृक्षं समारूढश्चांडालो ब्राह्मणस्तथा ॥  
 फलान्यात्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७७ ॥  
 ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७८ ॥  
 एकशाखासमारूढश्चांडालो ब्राह्मणो यदा ॥  
 फलान्यात्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७९ ॥

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥  
 स्त्रियो म्लेच्छस्य संपर्काच्छुद्धिः सातपने तथा ॥ १८० ॥  
 तप्तकृच्छ्रं पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाभिधीयते ॥ १८१ ॥  
 स वर्तेत यथा भार्या गत्वा म्लेच्छस्य संगताम् ॥  
 सचैलं स्नानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ॥ १८२ ॥  
 संगृहीतामपत्यार्थमन्यैरपि तथा पुनः ॥ १८३ ॥  
 चंडालम्लेच्छश्चपचकपालव्रतधारिणः ॥  
 'अकामतः स्त्रियो गत्वा पाराकेण विशुद्ध्यते ॥ १८४ ॥  
 'कामतस्तु प्रसुता वा तत्समो नात्र संशयः ॥  
 स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥ १८५ ॥  
 तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तो विष्णुमंत्रं कुरुते द्विजः ॥  
 तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चंडालं स्पृशते द्विजः ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १८६ ॥  
 केशकीटनखस्त्रायुः अस्थिकण्टकमेव च ॥  
 स्पृष्ट्वा नद्युदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥  
 मत्स्यास्थि जङ्गकास्थीनि नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥  
 हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ॥ १८८ ॥  
 गोकुले कंदुशालायां तैलचक्रेभुयंत्रयोः ॥  
 अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥ १८९ ॥

१ स्वर्णतप्तमिति, बहुत्र पाठः । २ मद्यस्वेदनशालायां ( मही ) इति  
 भृषिष्ठापामित्यर्थः ।

/ न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेदकर्मणा ॥  
 नापो मूत्रपुरीवाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ॥ १९० ॥  
 / पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः ॥  
 भुञ्जते मानवाः पश्चात्त वा दुष्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९१ ॥  
 असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषेच्यते ॥  
 अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ १९२ ॥  
 विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥  
 तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥ १९३ ॥  
 स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥  
 बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथापि वा ॥ १९४ ॥  
 न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ॥  
 ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति ॥ १९५ ॥  
 रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥  
 कैवर्तमेदभिह्लाश्च ससैते अंत्यजाः स्मृताः ॥ १९६ ॥  
 एतान्गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥  
 कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादेव तद्वयम् ॥ १९७ ॥  
 सकृद्भुक्ता तु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्माभिः ॥  
 प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रसवणेन तु ॥ १९८ ॥  
 बलोद्धृता स्वयं वापि परमेरितया यदि ॥  
 सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ १९९ ॥

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्वजो भवेत् ॥  
 न तेन तद्वतं तासां विनश्यति कदाचन ॥ २०० ॥  
 मद्यसंस्पृष्टकुंभेषु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥  
 कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत पुनः संस्कारमर्हति ॥ २०१ ॥  
 अंत्यजस्थासु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥  
 उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ॥ २०२ ॥  
 चंडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥  
 कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत आपस्तंबोऽथर्वान्मुनिः ॥ २०३ ॥  
 श्लेष्मोपानहविष्मूत्रस्त्रारजोमद्यमेवं च ॥  
 एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ॥ २०४ ॥  
 एकं द्वयहं त्र्यहं चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥  
 प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २०५ ॥  
 सद्यो वांते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥  
 पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनत्रयम् ॥  
 शिरःकंठोरुपादे च मुरया यस्तु लिप्यते ॥ २०६ ॥  
 दशपदत्रितयैकाहं चरेद्देवमनुकमात् ॥

अत्राप्युदाहरंति ।

प्रमादान्मद्यपसुरां सकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः ॥  
 गोमूत्रयावकाहारी दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २०७ ॥  
 मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥



न देवा भुञ्जते तस्य न पिबन्ति हविर्जलम् ॥ २०८ ॥  
 चितिभ्रष्टा तु या नारी ऋतुभ्रष्टा च व्याधितः ॥  
 प्राजापत्येन शुद्धयेत ब्राह्मणानां तु भोजनात् ॥ २०९ ॥  
 ये च प्रव्रजिता विप्राः प्रव्रज्यामिजलावहाः ॥  
 अनाशकान्निवर्तते चिकीर्षति गृहस्थितिम् ॥ २१० ॥  
 धारयेन्नीणि कृच्छ्राणि चांद्रायणमथापि वा ॥  
 जातिकर्मादिकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ॥ २११ ॥  
 न शौचं नोदकं नाशु नापवादानुकंपने ॥  
 ब्रह्मदंडहतानां तु न कार्यं कटधारणम् ॥ २१२ ॥  
 स्नेहं कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ॥  
 गोमूत्रयावकाहारः कृच्छ्रमेकं लिशोधनम् ॥ २१३ ॥  
 वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ॥  
 आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनांशुभिः ॥ २१४ ॥  
 तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः ॥  
 तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥ २१५ ॥  
 यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥  
 मंगलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःक्षयः ॥ २१६ ॥  
 अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥  
 नदीपर्वतसंरोधे मृते पादेनमाचरेत् ॥ २१७ ॥  
 अष्टागवं धर्महलं पद्मवं व्यावहारिकम् ॥

चतुर्गवं नृशंसानां दिग्वं गववध्यकृत् ॥ २१८ ॥  
 दिग्वं चाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥  
 पङ्गवं तु त्रिपादोक्तं पूर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतम् ॥ २१९ ॥  
 काष्ठलोष्टशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सातपनं चरेत् ॥  
 प्राजापत्यं चरेन्मृत्सां अतिकृच्छ्रं तु आयसः ॥ २२० ॥  
 प्रायश्चित्तेन तर्क्षीर्णं कुर्याद्वाह्यभोजनम् ॥  
 अनहुत्सहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ २२१ ॥  
 शरभोष्टृहयात्रागान् सिंहशार्दूलगर्दभान् ॥  
 हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ २२२ ॥  
 मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्च पतत्रिणः ॥  
 हत्वा व्यहं पिबेक्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥ २२३ ॥  
 चंडालस्य च संस्पृष्टं विण्मूत्रोच्छिष्टमेव वा ॥  
 त्रिरात्रेण विशुद्धं हि भुक्तोच्छिष्टं समाचरेत् ॥ २२४ ॥  
 वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥  
 उद्धरेत्पद्मशतं पूर्णं पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २२५ ॥  
 अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरस्थानादिदूषिते ॥  
 उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ २२६ ॥  
 गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यंत्राकरे कारुकशिलिहस्ते ॥  
 स्त्रीबालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि ॥ २२७ ॥

१ मूचिकया मूत्रोलोकेनेत्यर्थः । तृतीयाधे प्रथमेममार्णी ।

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेवानिवेशे भवनस्य दाहे ॥  
 अवास्ययज्ञेषु महोत्सवेषु तेष्वेव दोषा न विकल्पनीयाः ॥ २२८ ॥  
 प्रपास्वरण्ये घटकस्य कूपे द्रोण्यां जलं कौशविनिर्गतं च ॥  
 श्वपाकचंडालपरिग्रहे तु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः ॥ २२९ ॥  
 रेतोविष्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत् ॥  
 त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात्कुंभे सांतपनं तथा ॥ २३० ॥  
 क्लिन्नभिन्नशवं यत्स्यादज्ञानाच्च तथोदकम् ॥  
 प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३१ ॥  
 उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च ॥  
 प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३२ ॥  
 वर्णवाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः ॥  
 पंचरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २३३ ॥  
 शुचि भोवत्तिकृत्तीयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥  
 चर्मभांडस्थधाराभिस्तथा यंत्रोद्धृतं जलम् ॥ २३४ ॥  
 चंडालेन तु संस्पृष्टे स्नानमेव विधीयते ॥  
 उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३५ ॥  
 आकराद्गतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥  
 आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुरालयम् ॥ २३६ ॥  
 भृष्टाभृष्टा यवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ॥  
 खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यद्रूपतरं शुचि ॥ २३७ ॥

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ॥  
 गोकुले कंदुशालायां तैलयंत्रेषुयंत्रयोः ॥ २३८ ॥  
 अदुष्टाः सततं धारा वातोद्धृताश्च रेणवः ॥ २३९ ॥  
 चहूनामेकलघानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् ॥  
 अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां च यंचन ॥ २४० ॥  
 एकपंच्युपविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक् ॥  
 यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः ॥ २४१ ॥  
 यस्य पट्टे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ॥  
 त्रिरात्रं तस्य दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिनः ॥ २४२ ॥  
 आदित्येस्तमिते रात्रावस्पृश्यं स्पृशते यदि ॥  
 भगवन्केन शुद्धिः स्यात्तता ब्रूहि तपोधन ॥ २४३ ॥  
 आदित्येस्तमिते रात्रौ स्पर्शहीनं दिवा जलम् ॥  
 तेनेव सर्वशुद्धिः स्याच्छुचस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥ २४४ ॥  
 देशं कालं च यः शक्तिं पापं चावेक्षयेत्ततः ॥  
 प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यस्यचोक्ता न निष्कृतिः ॥ २४५ ॥  
 देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ॥  
 उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ २४६ ॥  
 आरनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधि सक्तवः ॥  
 स्नेहपक्वं च तक्रं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥ २४७ ॥  
 आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाद्य फलपंभयाः ॥

अंत्यभांडस्थितास्त्वेते निष्कांताः शुद्धिमाप्नुयुः २४८ ॥  
 अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ॥  
 अहोरात्रोपितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २४९ ॥  
 आहितामिस्तु यो विप्रो महापातकवान्भवेत् ॥  
 अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥ २५० ॥  
 यो गृहीत्वा विवाहार्थं गृहस्थ इति मन्यते ॥  
 अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ २५१ ॥  
 वृथापाकस्य भुंजानः प्रायश्चित्तं चरेद्विजः ॥  
 प्राणान्नशु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति २५२ ॥  
 वैदिके लौकिके वापि द्रुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ॥  
 वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥ २५३ ॥  
 कनीयान्गुणवांश्चैव श्रेष्ठश्चेत्त्रिगुणो भवेत् ॥  
 पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्यार्थं धारयेद्बुधः ॥ २५४ ॥  
 ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णात्यग्निं यवीयकः ॥  
 नित्यं नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥ २५५ ॥  
 महापातके संस्पृष्टः स्नानमेव विधीयते ॥  
 संस्पृष्टस्य यदा भुंक्ते स्नानमेव विधीयते ॥ २५६ ॥  
 पतितैः सह संसर्गं मासार्द्धं मासमेव च ॥  
 गोमूत्रपावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २५७ ॥  
 कृच्छ्रार्द्धं पतितस्यैव सकृद्भुक्ता द्विजोत्तमः ॥

अविज्ञानाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्रं सांपन्नं चरेत् २५८ ॥  
 पतितानां यदा भुक्तं भुक्तं चंडालवेदमनि ॥  
 मासार्द्धं तु पिबेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २५९ ॥  
 गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ॥  
 अग्निना न च संस्कारः शंसस्य वचनं यथा ॥ २६० ॥  
 यश्चंडालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥  
 त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयेत् प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥ २६१ ॥  
 पतिताञ्चान्नमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि ॥  
 कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ॥ २६२ ॥  
 अंत्यहस्तात्तु विक्षिप्तं काष्ठलोष्टवृणानि च ॥  
 न स्पृशेत्तु तथोच्छिष्टमहोरात्रं समाचरेत् ॥ २६३ ॥  
 चंडालं पतितं म्लेच्छं मद्यभांडं रजस्वलाम् ॥  
 द्विजः स्पृष्ट्वा न भुंजीत भुंजानो यदि संस्पृशेत् २६४ ॥  
 अतः परं न भुंजीत त्यक्त्वान्नं स्नानमाचरेत् ॥  
 ब्राह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥  
 सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ॥ २६५ ॥  
 भुंजानः संस्पृशेद्यस्तु वापसं कुष्ठं तथा ॥  
 त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादथोच्छिष्टरूपहेन तु ॥ २६६ ॥  
 आरुढो नैष्टिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ॥  
 चांद्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६७ ॥

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥  
 गवां गमने मनुभोक्तं व्रतं चांद्रायणं चरेत् ॥ २६८ ॥  
 अमानुषीषु गोवर्जमुदकयायामयोनिषु ॥  
 रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् २६९ ॥  
 उदक्यां स्रुतिकां चापि अंत्यजां स्पृशते यदि ॥  
 त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्याद्विधिरेष पुरातनः ॥ २७० ॥  
 संसर्गे यदि गच्छेच्चैदुदक्यया तथात्यजैः ॥  
 प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्व स्नानं समाचरेत् ॥ २७१ ॥  
 एकरात्रं चरेन्मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ॥  
 दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥ २७२ ॥  
 स्मृत्यंतरम् ।

अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ॥  
 पूयंते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥ २७३ ॥  
 भोजने तु प्रसक्तानां प्राजापत्यं विधीयते ॥  
 दंतकाष्ठे त्वहोरात्रयेष शौचविधिः स्मृतः ॥ २७४ ॥  
 रजस्वला यदा स्पृष्टा स्नानचंडालवायसैः ॥  
 निराहारा भवेत्तावत्त्रात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥ २७५ ॥  
 रजस्वला यदा स्पृष्टा उप्रजंबुकशंबरैः ॥  
 पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २७६ ॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या ॥  
 एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २७७ ॥  
 स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या क्षत्रिणी च या ॥  
 त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्द्यासस्य वचनं यथा ॥ २७८ ॥  
 स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसंभवा ॥  
 चतुरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २७९ ॥  
 स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा ॥  
 षड्गत्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मणी कामकारतः ॥ २८० ॥  
 अकामतश्चरेदूर्ध्वं ब्राह्मणी सर्वतः स्पृशेत् ॥  
 चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥ २८१ ॥  
 उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ॥  
 भोजने मूत्रचारे च शंसस्य वचनं यथा ॥ २८२ ॥  
 स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शं जपहोमौ तु क्षत्रिये ॥  
 वैश्ये नक्तं च कुर्वीत शूद्रे चैव उपोषणम् ॥ २८३ ॥  
 चर्मके रजके वैश्ये धीवरे नटके तथा ॥  
 एतान्स्पृष्टा द्विजो मोहादाचामेत्प्रयतोऽपिसन् ॥ २८४ ॥  
 एतैः स्पृष्टा द्विजो नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ॥  
 उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रं स्याद्दूतं माश्य विशुद्धयति ॥ २८५ ॥  
 यस्तुच्छायां श्वाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति ॥  
 तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं माश्य विशुद्धयति ॥ २८६ ॥



अभिशस्तो द्विजोरण्ये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥

मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणमथापि वा ॥ २८७ ॥

वृथा मिथ्योपयोगेन भूणहत्याव्रतं चरेत् ॥

अव्भक्षो द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्ध्यति ॥ २८८ ॥

शठं च ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

निर्गुणं च गुणी हत्वा पराकं व्रतमाचरेत् ॥ २८९ ॥

उपपातकसंयुक्तो मानवो म्रियते यदि ॥

तस्य संस्कारकर्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ २९० ॥

प्रभुं जानोऽतिसस्त्रेहं कदाचित्स्पृश्यते द्विजः ॥

त्रिरात्रमाचरेन्नक्तैर्निःस्नेहमथ वा चरेत् ॥ २९१ ॥

विडालकाकाद्युच्छिष्टं जग्ध्वाश्वनकुलस्य च ॥

केशकीटावपन्नं च पिबेद्वाक्षीं सुवर्चलाम् ॥ २९२ ॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ॥

स्नात्वा विप्रो जितप्राणः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २९३ ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

त्रिः पठेद्वा यतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ २९४ ॥

शकृद्विगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ॥

क्षीरमष्टगुणं देयं पंचगव्यं तथा दधि ॥ २९५ ॥

पंचगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिबेत् ॥

उभौ तौ तुल्यदोषौ च वसतो नरके चिरम् ॥ २९६ ॥

तेनावगुण्डितं तेषु गंगांभःप्लुत एव सः ॥

. मार्जनीरेणुकेशां तु हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ३१६ ॥

मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या चल्मीके ऊपरस्थले ॥

अंतर्जले इमशानान्ते वृक्षमूले सुरालये ॥ ३१७ ॥

वृषभैश्च तथोत्त्वाते श्रेयस्कामैः सदा बुधैः ॥

शुचौ देशे तु संग्राह्या शर्कराश्मविर्वर्जिता ॥ ३१८ ॥

पुरीषे मयुने होमे प्रसावे दंतधावने ॥

स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समाचरेत् ॥ ३१९ ॥

यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुंक्ते मौनेन सर्वदा ॥

युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२० ॥

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥

प्रौढपादो न कुर्यात् स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ ३२१ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात्पातयित्वा द्विजोत्तमम् ॥

नाशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं भवेत् ॥ ३२२ ॥

ग्रहणोद्वाहसंक्रांतौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा ॥

दानं नेमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि प्रशस्यते ॥ ३२३ ॥

क्षौमजं वाथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा ॥

यज्ञोपवीतं यो दद्याद्दत्तदानफलं लभेत् ॥ ३२४ ॥

कांस्यस्य भाजनं दद्याद्घृतपूर्णं सुशोभनम् ॥

तथा भक्त्या विधानेन अमिष्टोमफलं लभेत् ॥ ३२५ ॥

आर्द्धकाले तु यो दद्याच्छोभने च उपानहौ ॥  
 स गच्छन्नन्यमार्गेऽपि अश्वदानफलं लभेत् ॥ ३२६ ॥  
 तैलपात्रं तु यो दद्यात्संपूर्णं तु समाहितः ॥  
 स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ३२७ ॥  
 दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ॥  
 पानप्रदस्त्वरण्ये तु स्वर्गे लोके महीयते ॥ ३२८ ॥  
 यावदर्धप्रसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ॥  
 पृथिवी तेन दत्ता स्यादीदृशीं गां ददाति यः ॥ ३२९ ॥  
 तेनाग्नयो हुताः सम्यक्पितरस्तेन तर्पिताः ॥  
 देवाश्च पूजिताः सर्वे यो ददाति गवाद्विकम् ॥ ३३० ॥  
 जन्मप्रभ्रति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ॥  
 तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥ ३३१ ॥  
 कृष्णाजिनं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥  
 उद्धरेन्नरकस्थानात्कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥ ३३२ ॥  
 आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥  
 शूलपाणिस्तु भगवानभिनन्दति भूमिदम् ॥ ३३३ ॥  
 दालुकानां कृता राशिर्यावत्सप्तार्धमण्डलम् ॥  
 गते वर्षशते चैव पलमेकं विशीर्यति ॥ ३३४ ॥  
 क्षयं च दृश्यते तस्य कन्यादाने न चैव हि ॥

आतुरे प्राणदातां च त्रीणि दानफलानि च ॥ ३३५ ॥  
 सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोधिकम् ॥ ३३६ ॥  
 पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न केतवे ॥  
 सकामः स्वर्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ३३७ ॥  
 ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे ॥  
 मातृपितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामिनि ॥ ३३८ ॥  
 शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥  
 तस्यैव दीयते दानं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ३३९ ॥  
 संपूज्य विदुषो विप्रानन्येभ्योऽपि प्रदीयते ॥  
 तत्कार्यं नैव कर्तव्यं न दृष्टं न श्रुतं मया ॥ ३४० ॥  
 अतःपरं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजाः ॥  
 पितॄणामक्षयं दानं दत्तं येषां तु निष्फलम् ॥ ३४१ ॥  
 न हीनांगो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः ॥  
 नित्यं चानृतवादी च तांस्तु श्राद्धे न भोजयेत् ३४२ ॥  
 हिंसारतं च कपटमुपगुह्य श्रुतं च यः ॥  
 किंकरं कपिलं काणं श्वित्रिणं रोगिणं तथा ॥ ३४३ ॥  
 दुश्चर्माणं शीर्णकेशं पांडुरोगं जटाधरम् ॥  
 भारवाहिनं रौद्रं च द्विभार्यं वृषलोपतिम् ॥ ३४४ ॥  
 भेदकारी भवेच्चैव बहुषीडाकरोपि वा ॥

हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥ ३४५ ॥  
 बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी कृरबुद्धिमान् ॥  
 एतेषां नैव दातव्यः कदाचित्तु प्रतिग्रहः ॥ ३४६ ॥  
 अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ॥  
 अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपार्वन एव सः ॥ ३४७ ॥  
 श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ॥  
 काणः स्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तितः ३४८ ॥  
 न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः ॥  
 तस्य श्राद्धं न दातव्यं त्वंधकस्यात्रिब्रवीत् ॥ ३४९ ॥  
 तस्माद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ॥  
 न चैकैनेव वेदेन भगवानात्रिब्रवीत् ॥ ३५० ॥  
 योगस्यैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रं च प्रपश्यति ॥  
 लौकिकज्ञैश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैषोऽधरोत्तरम् ॥ ३५१ ॥  
 वेदैश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमाञ्छास्त्रवेदवित् ॥  
 अतिनं च कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ॥  
 तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितृणामक्षयं भवेत् ॥ ३५२ ॥  
 यावतो प्रसते आसान्पितृणां दीप्ततेजसाम् ॥  
 पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ३५३ ॥  
 नरकस्था विमुच्यते ध्रुवं यांति त्रिविष्टपम् ॥  
 तस्माद्विप्रं परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ॥ ३५४ ॥

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः ॥  
 इन्दुक्षये मासिमासि प्रायश्चिती भवेत्तु सः ॥ ३५५ ॥  
 सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ॥  
 धनं पुत्राः कुलं तस्य पित्रिनिःश्वासपीडया ॥ ३५६ ॥  
 कन्यागते सवितरि पितरो यांति सत्सुतान् ॥  
 शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥ ३५७ ॥  
 ततो वृश्चिकसंप्राप्तौ निराशाः पितरो गताः ॥  
 पुनः स्वभवनं यांति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ३५८ ॥  
 पुत्रं वा भ्रातरं वापि दोहित्रं पौत्रकं तथा ॥  
 पितृकार्ये प्रसक्ता ये ते यांति परमां गतिम् ॥ ३५९ ॥  
 यथा निर्मथनादग्निः सर्वकाष्ठेषु तिष्ठति ॥  
 तथा संदृश्यते धर्मः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६० ॥  
 यः प्राप्नोति तदा सर्व कन्यागते च गंगया ॥  
 सर्वशास्त्रार्थगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ ३६१ ॥  
 सर्वयज्ञफलं विद्याच्छ्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६२ ॥  
 महापातकसंयुक्तो यो युक्तश्चोपपातकैः ॥  
 घनैर्मुक्तो यथा भान् राहुमुक्तश्च चंद्रमाः ॥ ३६३ ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः संतप्य च विलंघयेत् ॥  
 सर्वसौख्यमयं प्राप्तः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६४ ॥  
 सर्वेषामेव दानानां श्राद्धदानं विशिष्यते ॥

मेरुतुल्यं कृतं पापं श्राद्धदानं विशोधनम् ॥ ३६५ ॥  
 श्राद्धं कृत्वा तु मर्त्यो वै स्वर्गलोके मंहीयते ॥  
 अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ ३६६ ॥  
 वैश्यस्य चान्नमेवाज्यं शूद्रान्नं रुधिरं भवेत् ॥  
 एतत्सर्वं मया ख्यातं श्राद्धकाले समुत्थिते ॥ ३६७ ॥  
 वैश्वदेवे च होमे च देवताभ्यर्चने जपेत् ॥  
 अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ ३६८ ॥  
 व्यवहारानुपूर्व्येण धर्मेण बलिभिर्जितम् ॥  
 क्षत्रियान्नं पयस्तेन घृत्तान्नं यज्ञपालने ॥ ३६९ ॥  
 देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निपादकः ॥  
 पशुर्ल्लेच्छोऽपि चंडालो विप्रो दशविधाः स्मृताः ३७० ॥  
 संख्या सान्नं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ॥  
 अतिथिं वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ३७१ ॥  
 शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ॥  
 निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ ३७२ ॥  
 वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत् ॥  
 सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ३७३ ॥  
 अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ॥  
 आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥ ३७४ ॥

कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ॥  
 वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ३७५ ॥  
 लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुंभं क्षीरसर्पिषः ॥  
 विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ३७६ ॥  
 चोरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ॥  
 मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ३७७ ॥  
 ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥  
 तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३७८ ॥  
 वापोकूपतडागानामारामस्य सरःसु च ॥  
 निःशंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ३७९ ॥  
 क्रियाहीनश्च भूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ॥  
 निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चंडाल उच्यते ॥ ३८० ॥  
 वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेणहीनाश्च पुराणपाठाः ॥  
 पुराणहीना कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥ ३८१ ॥  
 ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणेः कीराः पौराणपाठकाः ॥  
 श्राद्धयज्ञे महादाने वरणीयाः कदा च न ॥ ३८२ ॥  
 श्राद्धे च पितरो धारं दानं चैव तु निष्फलम् ॥  
 यज्ञे च फलहानिः स्पातस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥ ३८३ ॥  
 आधिकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः ॥



चितुर्विप्रा न पूज्यंते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८४ ॥  
 मागधो माथुरश्चैव कापटः कीटकानजौ ॥  
 पंच विप्रा न पूज्यंते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८५ ॥  
 क्रयक्रीता च या कन्या पर्त्ता सा न विधीयते ॥  
 तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिंडं न विद्यते ॥ ३८६ ॥  
 अष्टशल्यागतो नीरं पाणिना पिबते द्विजः ॥  
 सुरापानेन तत्तुल्यं तुल्यं गौमांसभक्षणम् ॥ ३८७ ॥  
 ऊर्ध्वजंघेषु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥  
 तावच्चंडालरूपेण यावद्गंगां न मज्जति ॥ ३८८ ॥  
 दीपशय्यासनच्छायां कार्पासं दंतधावनम् ॥  
 अजासुररजःस्पर्शः शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ३८९ ॥  
 गृहादशगुणं कूर्पं कूपादशगुणं तटम् ॥  
 तटादशगुणं नद्यां गङ्गासंख्या न विद्यते ॥ ३९० ॥  
 खवद्यद्वाह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा ॥  
 वापीं कूपे तु वैश्यस्य शौद्रं भांडोदकं तथा ॥ ३९१ ॥  
 तीर्थस्नानं महादानं यच्चान्यत्तिलतर्पणम् ॥  
 अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपाततः ॥ ३९२ ॥  
 गंगा गया त्वमावास्या वृद्धिश्चाद्धे क्षयेऽहनि ॥  
 मया पिंडप्रदानं स्यादन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ३९३ ॥  
 घृतं वा यदिवा तैलं पयो वा यदि वा दधि ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव तथा परे ॥  
 एतेषां धर्मसारं यद्वक्ष्यमाणं निबोधत ॥ ८ ॥  
 ऋतावृतो तु संयोगाद्ब्राह्मणो जायते स्वयम् ॥  
 तस्माद्ब्राह्मणसंस्कारं गर्भादौ तु प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥  
 सीमंतोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते ॥  
 गर्भस्यैव तु संस्कारो गर्भेगर्भे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥  
 जातकर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम् ॥  
 बहिर्निष्क्रमणं चैव तस्य कुर्याच्छिशोः शुभम् ॥ ११ ॥  
 षष्ठे मासे च संप्राप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् ॥  
 तृतीयेऽब्दे च संप्राप्ते केशकर्म समाचरेत् ॥ १२ ॥  
 गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥  
 द्विजत्वे त्वथ संप्राप्ते सावित्र्यामधिकारभाक् ॥ १३ ॥  
 गर्भादेकादशे सैके कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ॥  
 कारयेद्विजकर्माणि ब्राह्मणेन यथाक्रमम् ॥ १४ ॥  
 शूद्रश्चतुर्थो चर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ॥  
 उत्तरतस्य तु संस्कारो द्विजे स्वात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥  
 यो यस्य विहितो दंडो मेखलाजिनधारणम् ॥  
 सूत्रं वस्त्रं च गृहीयाद्ब्रह्मचर्येण यन्त्रितः ॥ १६ ॥  
 ब्राह्मे मुहूर्त उत्याय चोपस्पृश्य पयस्तथा ॥  
 त्रिरायम्य ततः प्राणांस्तिष्ठेन्मौनी समाहितः ॥ १७ ॥

अब्देवतैः पवित्रस्तु कृत्वात्मपरिमार्जनम् ॥  
 सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदा सूर्योदयनापुरा ॥ १८ ॥  
 अभिकार्यं ततः कुर्यात्प्रातरेव व्रतं चरेत् ॥  
 गुरवे तु ततः कुर्यात्पादयोरभिवादनम् ॥ १९ ॥  
 समित्कुशांश्चोदकुंभमाहृत्य गुरवे व्रती ॥  
 प्राञ्जलिः सम्पगासीन उपस्थाय यतः सदा ॥ २० ॥  
 ययं ग्रंथमधीयीत तस्यतस्य व्रतं चरेत् ॥  
 सावित्र्युपक्रमात्सर्वमावेदग्रहणोत्तरम् ॥ २१ ॥  
 द्विजातिषु चरेद्भैक्ष्यं भिक्षाकाले समागते ॥  
 निवेद्य गुरवेदनीयात्संमतो गुरुणा व्रती ॥ २२ ॥  
 सायंसन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥  
 द्विकालभोजनार्थं च तथैव पुनराहरेत् ॥ २३ ॥  
 वेदस्वीकरणे हृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हितः ॥  
 निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकस्त उदाहृतः ॥ २४ ॥  
 अनेन विधिना सम्पक्कृत्वा वेदमधीत्य च ॥  
 गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगेहादुपागतः ॥ २५ ॥  
 अनेनैव विधानेन कुर्याद्दारपरिग्रहम् ॥  
 कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २६ ॥  
 परिणीय तु पण्मासान्वत्सरं वा न संविशेत् ॥  
 औदुम्बरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहेगृहे ॥ २७ ॥

ऋतुकाले तु संप्राप्ते पुत्रार्थी संविशेत्तदा ॥  
 जाते पुत्रे तथा कुर्यादग्न्याधेयं गृहे वसन् ॥ २८ ॥  
 पुत्रे जातेऽनृतौ गच्छन्संप्रदुष्येत्सदा गृही ॥  
 चतुर्यं ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठन्न विस्मृतः ॥ २९ ॥  
 इति वैष्णवधर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

### द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्ममुत्तमम् ॥  
 प्राजापत्यपदस्थानं सम्यक्कृत्यं निबोधत ॥ १ ॥  
 सर्वः कल्ये समुत्थाय कृतशीचः समाहितः ॥  
 स्नात्वा संध्यामुपासीत सर्वकालमर्तद्रितः ॥ २ ॥  
 अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्वात्रौ यदुरितं कृतम् ॥  
 प्रातःस्नानेन तत्सर्वं शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥  
 प्रविक्ष्यायामिहोत्रं तु हुत्वाग्निं विधिवत्ततः ॥  
 शुची देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥ ४ ॥  
 स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु मंत्रवत् ॥  
 देवानृषीन्पितॄंश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ५ ॥  
 मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुञ्जीत वाग्यतः ॥  
 भुक्तोपविष्टो विश्रांतो ब्रह्म किञ्चिद्विचारयेत् ॥ ६ ॥  
 इतिहासं प्रयुञ्जीत त्रिकालसमये गृही ॥

काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा बहिः ॥ ७ ॥  
 आसीनः पश्चिमां संध्यां गायत्रीं शक्तितो जपेत् ॥  
 हुत्वा चाथामिहोत्रं तु कृत्वा चामिपरिक्रियाम् ॥ ८ ॥  
 बलिं च विधिवद्वत्वा भुञ्जीत विधिपूर्वकम् ॥  
 दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वात्रनेद्यदि ॥ ९ ॥  
 तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ॥  
 कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥  
 संनिवेदयाथं विप्रं तु संविशेत्तदनुज्ञया ॥  
 यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ॥ ११ ॥  
 योगिनं पूजयेन्नित्यमन्यथा किल्बिषो भवेत् ॥  
 पुरे वा यदि वा ग्रामे योगी सन्निहितो भवेत् ॥ १२ ॥  
 पूज्या नित्यं भवन्त्येव सर्वे चैव निवासिनः ॥  
 तस्मात्संपूजयेन्नित्यं योगिनं गृहभागतम् ॥ १३ ॥  
 तस्मिन्प्रयुक्ता पूजा या साक्षयापोषकलपते ॥  
 गृहमेधिनां यत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥  
 बाह्ये मुहूर्त उत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ॥  
 चतुःप्रकारं भिद्यन्ते गृहिणो धर्मसाधकाः ॥ १५ ॥  
 वृत्तिभेदेन सततं ज्यायांस्तेषां परः परः ॥  
 कुसूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ॥ १६ ॥  
 व्यहृहिको वापि भवेत्सद्यःप्रक्षालकोपि वा ॥

श्रौतं स्मार्तं च यत्किञ्चिद्विधानं धर्मसाधनम् ॥ १७ ॥  
 गृहे तद्वसता कार्यमन्यथा दोषभाग्भवेत् ॥  
 एवं विमो गृहस्थस्तु शांतः शुक्लवरः शुचिः ॥ १८ ॥  
 प्रजापतेः परं स्थानं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥ १९ ॥  
 इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदा चरेत् ॥  
 चीरवल्कलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ॥ १ ॥  
 गत्वा च विजनं स्थानं पंचयज्ञान्नं हापयेत् ॥  
 अग्निहोत्रं च जुहुयादन्ननीवारकादिभिः ॥ २ ॥  
 श्रवणेनाग्निमाधाय ब्रह्मचारी वने स्थितः ॥  
 पंचयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ३ ॥  
 संचितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्भजे ॥  
 त्यजेदाश्वयुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ॥ ४ ॥  
 आकाशशायी वर्षासु हेमन्ते च जलाशयः ॥  
 ग्रीष्मे पंचामिमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन् ॥ ५ ॥  
 कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥  
 अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छुचिस्ततः ॥ ६ ॥  
 त्रिसंध्यं स्नानमातिष्ठेत्सहिष्णुर्भूतजान्गुणान् ॥

भजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचीरी वनं गतः ॥ ७ ॥  
 प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्परेषां किञ्चिदात्मवान् ॥  
 दाताच्चैव भवेन्नित्यं श्रद्धधानः प्रियंवदः ॥ ८ ॥  
 रात्रौ स्थण्डिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिनं क्षिपेत् ॥  
 वीरासनेन तिष्ठेद्वा केशमात्मन्यर्चितयन् ॥ ९ ॥  
 केशरोमनखश्मशून्न छिद्यान्नापि कर्त्तयेत् ॥  
 त्यजञ्छरीरसौहार्दं वनवासरतः शुचिः ॥ १० ॥  
 चतुःप्रकारं भिद्यन्ते मुनयः शंसितव्रताः ॥  
 अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषां परः परः ॥ ११ ॥  
 वार्षिकं वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् ॥  
 वनस्थधर्ममातिष्ठन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥  
 भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् ॥  
 आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥ १३ ॥  
 षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पंचयज्ञक्रियापरः ॥  
 काले चतुर्थे भुञ्जानो देहं त्यजति धर्मतः ॥ १४ ॥  
 त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः ॥  
 निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च पष्ठेन्नभोजनः ॥ १५ ॥  
 दिनार्थमन्नमादाय पंचयज्ञक्रियारतः ॥  
 सद्यःप्रक्षालको नाम चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥  
 एवमेते हि वै भान्या मुनयः शंसितव्रताः ॥ १७ ॥  
 इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ४.

यथोत्तमानि स्थानानि प्राप्नुवंति दृढव्रताः ॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यातिस्तथा ॥ १ ॥  
 विरक्तः सर्वकामेषु पारिव्राज्यं समाश्रयेत् ॥  
 आत्मन्यमीन्समारोप्य दत्त्वा चाभयदक्षिणाम् ॥ २ ॥  
 चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् ॥  
 आचार्येण समादिष्टं लिंगं यत्नात्समाश्रयेत् ॥ ३ ॥  
 शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्माश्च शि क्षयेत् ॥  
 अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफलगुता ॥ ४ ॥  
 दया च सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् ॥  
 ग्रामांते वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥ ५ ॥  
 पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्र संविशेत् ॥  
 वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितः ॥ ६ ॥  
 ग्रामे वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥  
 कौपीनाच्छादनं घासः कंथां शीतापहारिणीम् ॥ ७ ॥  
 पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥  
 संभाषणं सह स्त्रीभिरालम्बप्रेक्षणे तथा ॥ ८ ॥  
 नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्जयेत् ॥  
 वानप्रस्थगृहस्थान्यां प्रीतिं यत्रेन वर्जयेत् ॥ ९ ॥



एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वां सर्वपरिग्रहम् ॥  
 याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम् ॥ १० ॥  
 साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥  
 चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकवहूदकौ ॥ ११ ॥  
 हंसः परमहंसश्च पञ्चाद्यो यः स उत्तमः ॥  
 एकदंडो भवेद्वापि त्रिदंडी वापि वा भवेत् ॥ १२ ॥  
 त्यक्त्वा सर्वसुखास्वादं पुत्रैश्चर्यसुखं त्यजेत् ॥  
 अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥ १३ ॥  
 नान्यस्य गेहे भुंजीत भुंजानो दोषभाग्भवंत् ॥  
 कामं क्रोधं च लोभं च तथेर्ष्यासत्यमेव च ॥ १४ ॥  
 कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ॥  
 भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥ १५ ॥  
 कुटीचक इति ज्ञेयः परिग्राह्य त्यक्तवांधवः ॥  
 त्रिदंडं कुंडिकां चैव भिक्षाधारं तथैव च ॥ १६ ॥  
 सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव वहूदकः ॥  
 प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जवेत् ॥ १७ ॥  
 विश्वरूपं हृदि ध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥  
 ईषत्कृतकवापस्य लिंगमाश्रित्य तिष्ठतः ॥ १८ ॥  
 अन्नार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ॥  
 त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोऽभिधीयते ॥  
 कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥  
 अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकांक्षन्ब्रह्मणः पदम् ॥  
 यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् ॥ २१ ॥  
 अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥  
 आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथावरन् ॥ २२ ॥  
 वियुक्तः सर्वसंगेभ्यो योगी नित्यं चरेन्महीम् ॥  
 आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥  
 चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥  
 त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥  
 जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुरिदं त्यजेत् ॥  
 कौपीनाच्छादनार्थं च वासोऽधश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥  
 कुर्यात्परमहंसस्तु दडमेकं च धारयेत् ॥  
 आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥  
 अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षुः समाहितः ॥  
 प्राप्तपूजो न संतुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥ २७ ॥  
 त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् ॥  
 देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्विजातिषु ॥ २८ ॥  
 पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥  
 अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृत्वान्मनुः ॥ २९ ॥

सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलाबुमयानि च ॥  
 कांस्यपात्रे न भुंजीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥  
 मलाशाः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥  
 कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥  
 कांस्यभोजी यतिः सर्व तपोः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ३२ ॥  
 उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ॥  
 आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ३३ ॥  
 निन्द्यश्च सर्व देवानां पितॄणां च तथोच्यते ॥  
 त्रिदंडं लिंगमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ॥ ३४ ॥  
 न तेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमात्रोपजीविनाम् ॥  
 त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥  
 आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३६ ॥  
 इति विष्णवे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकांक्षिणाम् ॥  
 वक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्त्वतस्तन्निबोधत ॥ १ ॥  
 तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संप्रामेष्वाविर्वातिता ॥  
 दानमीश्वरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोऽभिधीयते ॥  
 कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥  
 अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकाक्षन्ब्रह्मणः पदम् ॥  
 यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् ॥ ॥ २१ ॥  
 अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥  
 आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥ २२ ॥  
 वियुक्तः सर्वसंगेभ्यो योगी नित्यं चरेन्महीम् ॥  
 आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥  
 चतुर्थोऽयं महानेपां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥  
 त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥  
 जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुरिदं त्यजेत् ॥  
 कौपीनाच्छादनार्थं च वासोऽथश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥  
 कुर्यात्परमहंसस्तु दडमेकं च धारयेत् ॥  
 आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥  
 अव्यक्तलिङ्गो ऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षुः समाहितः ॥  
 प्राप्तपूजो न संतुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥ २७ ॥  
 त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् ॥  
 देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्विजातिषु ॥ २८ ॥  
 पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥  
 अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृत्वान्मनुः ॥ २९ ॥

सर्वेपामेव भिक्षूणां दार्वलाद्युभयानि च ॥  
 कांस्यपात्रे न भुञ्जीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥  
 मलाशाः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥  
 कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥  
 कांस्यभोजी यतिः सर्व तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ३२ ॥  
 उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ॥  
 आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ३३ ॥  
 निन्द्यश्च सर्व देवानां पितॄणां च तथोच्यते ॥  
 त्रिदंडं लिंगमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ॥ ३४ ॥  
 न तेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमात्रोपजीविनाम् ॥  
 त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥  
 आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३६ ॥  
 इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकांक्षिणाम् ॥  
 वक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्त्वतस्तन्निबोधत ॥ १ ॥  
 तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता ॥  
 दानमीश्वरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षयेन्नुपतिः प्रजाः ॥ ३ ॥  
 ग्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः ॥  
 दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम् ॥ ४ ॥  
 ब्राह्मणानां च संतुष्टिमाचरेत्सततं तथा ॥  
 तेषु तुष्टेषु नियतं राज्यं कोशश्च वर्धते ॥ ५ ॥  
 वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम् ॥  
 ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥  
 खल्यज्ञं कृषीणां च गोयज्ञं चैव यत्नतः ॥  
 कुर्याद्वैश्यश्च सततं गवां च शरणं तथा ॥ ७ ॥  
 ब्राह्मणक्षत्रवैश्याश्च चरेन्नित्यममत्सरः ॥  
 कुर्वस्तु शूद्रः शुश्रूषां लोकाञ्जयति धर्मतः ॥ ८ ॥  
 पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ॥  
 तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥ ९ ॥  
 शूद्रोऽपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा ॥  
 श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः ॥ १० ॥  
 प्राणानर्थास्तथा दारान्ब्राह्मणार्थं निवेदयेत् ॥  
 स शूद्रजातिर्भोज्यः स्यादभोज्यः शेष उच्यते ॥ ११ ॥  
 कुर्याच्छूद्रस्तु शुश्रूषां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमात् ॥  
 कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ॥ १२ ॥

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥

पारिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ॥ १३ ॥

आश्रमाणामयं प्रोक्तो मया धर्मः सनातनः ॥

यदत्राविदितं किञ्चित्तदन्येभ्यो गमिष्यथ ॥ १४ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विष्णुस्मृतिः समाप्ता ॥ २ ॥



श्रीः ॥

## हारीतस्मृतिः ३.



## प्रथमोऽध्यायः १.

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ॥  
 इति पूर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवःस्वर्दिजोत्तम ॥ १ ॥  
 वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ॥  
 येन संतुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥ २ ॥  
 अत्राहं कथयिष्यामि पुरातनमुत्तमम् ॥  
 ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ ३ ॥  
 हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ॥  
 प्रणिपत्याऽब्रुवन्सर्वे मुनयो धर्मकाक्षिणः ॥ ४ ॥  
 भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्म प्रवर्तक ॥  
 वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ॥ ५ ॥  
 समासाद्योगशास्त्रं च विष्णुभक्तिकरं परम् ॥  
 एतच्चान्यच्च भगवन्ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥ ६ ॥  
 हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ॥  
 शृण्वन्तु मुनयः सर्वे धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ७ ॥



वर्णानामाश्रमाणां च योगशास्त्रं च सत्तमाः ॥  
 सन्धार्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबंधनात् ॥ ८ ॥  
 पुरा देवो जगत्सृष्टा परमात्मा जलोपरि ॥  
 सुष्वाप भोगिपर्यंके शयने तु श्रिया सह ॥ ९ ॥  
 तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममभूत्किल ॥  
 पद्ममध्येऽभवद्ब्रह्मा वेदवेदांगभूषणः ॥ १० ॥  
 स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनःपुनः ॥  
 सोऽपि सृष्ट्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ११ ॥  
 यज्ञासिद्धयर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ॥  
 असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यान्ध्यूरुदेशतः ॥ १२ ॥  
 शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः ॥  
 यथा प्रोवाच भगवान्पद्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥  
 तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ॥  
 धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥ १४ ॥  
 ब्राह्मण्यां ब्राह्मणैर्नैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ॥  
 तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १५ ॥  
 कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्तते ॥  
 तस्मिन्देशे वसेद्धर्माः सिद्ध्यन्ति द्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥  
 पदकर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥  
 तेरेव सततं यस्तु वर्तयेत्सुखमेवते ॥ १७ ॥

अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा ॥  
 दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति प्रोच्यते ॥ १८ ॥  
 आध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् ॥  
 शुश्रूषाकरणं चेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥ १९ ॥  
 एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्विजः ॥  
 तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥ २० ॥  
 योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ॥  
 विदितात्मप्रतिगृह्णीयाद्दृष्टे धर्मप्रसिद्धये ॥ २१ ॥  
 वेदश्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुची देशे समाहितः ॥  
 धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥ २२ ॥  
 वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशि ॥  
 स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥ २३ ॥  
 दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्विजः ॥ २४ ॥  
 श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ॥  
 काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥ २५ ॥  
 गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतंद्रितः ॥  
 सायंप्रातरूपासीत विवाहाग्निं द्विजोत्तमः ॥ २६ ॥  
 सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिनेदिने ॥  
 अतिथीनागताञ्छुक्त्या पूजयेदविचारतः ॥ २७ ॥

अन्यानभ्यागतान्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो गृही ॥

॥ स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ २८ ॥

कृतहोमस्तु भुञ्जीत सायंप्रातरुदारधीः ॥

सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्म्मं वर्त्तयेन्मतिम् ॥ २९ ॥

स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ॥

सत्यां हितां वदेद्वाचं परलोकहितैषिणीम् ॥ ३० ॥

एष धर्म्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ॥

धर्म्ममेव हि यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ३१ ॥

इत्येष धर्म्मः कथितो मयायं पृष्टो भवद्भिस्त्वखिलायहारी ॥

वदामि राज्ञामपि चैव धर्म्मान्पृथक्पृथक्बोधत विप्रवर्याः ३२

इति हारीते धर्म्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामियथावदनुपूर्वशः ॥

येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ १ ॥

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्म्मेण पालयन् ॥

कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान्यथाविधि ॥ २ ॥

दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धर्म्मबुद्धिसमन्वितः ॥

स्वभार्यानिरतो नित्यं पद्मभागार्हः सदा नृपः ॥ ३ ॥

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ॥

देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४ ॥

धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ॥

उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥ ५ ॥

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ॥

दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ ६ ॥

दंभमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ॥

॥ स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥

धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ॥

अप्रभुत्वं च वर्तेत धर्मे चादेहपातनात् ॥ ८ ॥

यज्ञाध्ययनदानानि कुर्व्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥

पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्जुनापरः ॥ ९ ॥

एतद्वैश्यस्य धर्मोऽयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ॥

एतदाचरते यो हि स स्वर्गो नात्र संशयः ॥ १० ॥

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥

दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥ ११ ॥

अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥

पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥ १२ ॥

शूद्राणामधिकं कुर्यादर्चनं न्यायवर्तिनाम् ॥

धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥ १३ ॥

स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम् ॥

इत्थं कुर्यात्सदा शूद्रो मनोवाङ्मायकर्मभिः ॥ १४ ॥

स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥ १५ ॥

वर्णेषु धर्म्मा विविधा मयोक्ता यथा तथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा ॥

शृणुध्वमत्राश्रमधर्म्ममाद्यं मयोच्यमानंक्रमशो मुनीन्द्राः १६ ॥

इति हारीते धर्म्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च ॥

गुरोः कुले प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्यमधः शय्या तथा बह्वेरुपासना ॥

उदकुम्भान्गुरोर्दद्याद्गोम्रासं चैधनानि च ॥ २ ॥

कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि ॥

विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥ ३ ॥

यः कश्चिकुरुते धर्म्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान् ॥

न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥ ४ ॥

तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥

शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरुसन्निधौ ॥ ५ ॥

अजिने दंडकाष्ठं च भस्त्रलाञ्छोपवीतकम् ॥

धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ६ ॥  
 सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः ॥  
 आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्यादंतपावनम् ॥ ७ ॥  
 छत्रं चोपानहं चैव गंधमाल्यादि वर्जयेत् ॥  
 नृत्यं गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥  
 हस्त्यश्वारोहणं चैव संत्यजेत्संयतेन्द्रियः ॥  
 संध्योपास्तिं प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥ ९ ॥  
 अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः ॥  
 तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तिः ॥ १० ॥  
 एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥  
 एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ११ ॥  
 अधीत्य च गुरोर्वेदान्वेदौ वा वेदमेव वा ॥  
 गुरवे दक्षिणां दद्यात्संयमी ग्राममावसेत् ॥ १२ ॥  
 यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ॥  
 संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥ १३ ॥  
 तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्यं यावदायुषम् ॥  
 तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ॥ १४ ॥  
 न विवाहो न संन्यासो नैष्टिकस्य विधीयते ॥  
 इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतंद्रितः ॥ १५ ॥  
 नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १६ ॥

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यांगुरुसेवने रतः ॥  
संप्राप्यविद्यामतिदुर्लभांशिवाफलश्चतस्याः सुलभं तु विदति १७  
इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥  
असमानर्पिगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥ १ ॥  
सर्वावयवसंपूर्णां सुवृत्तामुद्गहेन्नरः ॥  
ब्राह्मेण विधिना कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥ २ ॥  
तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्मतः ॥  
औपासनं च विधिवदाहृत्य द्विजपुंगवाः ॥ ३ ॥  
सायं प्रातश्च जुहुयात्सर्वकालमतन्द्रितः ॥  
स्नानं कार्यं ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४ ॥  
उपःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ॥  
मुखे पर्युपिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥ ५ ॥  
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम् ॥  
करंजं खादिरं चापि कदंबं कुरवं तथा ॥ ६ ॥  
सप्तपर्णं पृश्निपर्णी जंबू निंबं तथैव च ॥  
अपामार्गं च चिल्वं चार्कं चोदुंबरमेव च ॥ ७ ॥  
एते प्रशस्ताः कथिता दंतधावनकर्म्मणि ॥

मृतोयेने स्वकं देहं लिपेत्प्रक्षाल्यत्यन्तः ॥ २७ ॥

॥ जानादिकं च सम्प्राप्य कुर्यादाचमनं ॥ २८ ॥

॥ सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ घ्रायतो नियमेन हि ॥ २८ ॥

॥ हरिं संस्मृत्य मनसा र्मजयेच्चोरुमज्जले ॥ २९ ॥

ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समं व्रतः ॥ २९ ॥

॥ शोक्षयेद्रूपैर्मन्त्रैः प्रावमानीभिरेवाच ॥ ३० ॥

कुशाप्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥ ३० ॥

॥ स्योत्ताप्योति मुद्रात्रे दिवं विष्णुरिति दिजाः ॥ ३१ ॥

ततो ज्ञारार्यणं देवं संस्मरेत्यतिर्मज्जनमू ॥ ३१ ॥

॥ ३२ ॥

॥ ३३ ॥ तर्पयित्वा जिलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥

जलतीरं समास्यित्तत्र हुक्केन्वाधत्तसो ॥ ३३ ॥

॥ ३४ ॥ परिधायोत्तरोयं च कुर्यात्केशान् धूनेयत् ॥ ३४ ॥

न रक्तमुल्बणं वासो न नालिखि प्रशस्यते ॥ ३४ ॥

सलात्कं गन्धहीनं च वर्जयेद्देवैर्बुधैः ॥ ३५ ॥

ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृतोयेन विधक्ष्णः ॥ ३५ ॥

॥ दक्षिणं तु क्रां कृत्वा गोकर्णकृतिवत्पुनः ॥ ३६ ॥

त्रिःपिबेदीक्षितं तोयमात्मं द्विः परिमार्जयेत् ॥ ३६ ॥

पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥ ३७ ॥



॥ अंगुष्ठात्तामिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशतः ॥ ३७ ॥  
 तथैव । पंचभिर्मूर्ध्नि स्पृशेदेवं सिर्माहितः ॥ ३८ ॥  
 अनेन विधिना चम्य ब्राह्मणः शुद्धं मार्तसं गीगरे ८ ॥  
 कुर्वति दुर्भंगाणि स्तूदद्भुस्रः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥  
 प्राणायामत्रयं धीमान्यथान्यायमतं दितः ॥ ३९ ॥  
 जपयज्ञं ततः कुर्याद्वायत्रीं वेदमातुरमुत्तमः ॥ ४० ॥  
 त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्मै तत्त्वं निबोधितं ॥ ४१ ॥  
 वाचिकश्च मन्त्रपांशुश्च जमानसश्च त्रिधा कृतिः ॥ ४२ ॥  
 त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरजः ॥ ४३ ॥  
 यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदांशरैः त्रिधा गच्छ  
 मन्त्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु त्रिधा कृतिः ॥ ४४ ॥  
 शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् ॥ ४५ ॥  
 किञ्चिच्छब्दवृणोन्मन्त्रं स्यात्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥  
 ॥ ४८ ॥  
 ॥ ४९ ॥

। जपितान्नोपसर्पति दूरादेव प्रयाति ते ॥ ५० ॥  
 छंदस्त्यागादिनीयित्वापि जपेन्मन्त्रमुत्तमं दितः ॥ ५१ ॥

जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ॥ ४७ ॥

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥

गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥ ४८ ॥

अथ पुष्पांजलिं कृत्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ॥

उदुत्यं च जपेत्सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् ॥ ४९ ॥

प्रदक्षिणमुपावृत्त्य नमस्कुर्याद्विवाकरम् ॥

तत्तत्तीर्थेन देवादीनाद्रिः संतर्पयेद्विजः ॥ ५० ॥

स्नानवस्त्रं तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ॥

तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥

प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छूद्रासमान्वितः ॥ ५२ ॥

ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥

उत्थाय मूर्द्धपर्य्यंतं हंसःशुचिषादित्यूचा ॥ ५३ ॥

ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ॥

विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकर्म विधानतः ॥

गोदोहमात्रमाकाक्षेदतिथिं प्रति वै गृही ॥ ५५ ॥

अदृष्टपूर्वमज्ञातमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् ॥

स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चांशुना ॥ ५६ ॥

स्वागतेनाग्रयस्तुष्टा भवंति गृहमेधिनः ॥

आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराद् ॥ ५७ ॥  
 पादशौचेन पितरः प्रीतिमायांति दुर्लभाम् ॥  
 अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥ ५८ ॥  
 तस्मादतिथये कार्य्यं पूजनं गृहमेधिना ॥  
 भक्त्या च शक्तितो नित्यं पूजयेद्विष्णुमन्वहम् ॥ ५९ ॥  
 भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्परिव्राड् ब्रह्मचारिणे ॥  
 अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यंजनसमन्विताम् ॥ ६० ॥  
 अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते ॥  
 उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ६१ ॥  
 वैश्वदेवात्कृतान्दोषाञ्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥  
 न हि भिक्षुकृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ६२ ॥  
 तस्मात्प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात्समाहितः ॥  
 विष्णुरेव यतिच्छाय इति निश्चित्य भावयेत् ॥ ६३ ॥  
 सुवासिनीं कुमारीं च भोजयित्वा नरानपि ॥  
 बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुंजीत वा गृही ॥ ६४ ॥  
 प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ॥  
 अन्नमादौ नमस्कृत्य ग्रहष्टेनाक्षिरात्मना ॥ ६५ ॥  
 पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यान्मंत्रेण च पृथक्पृथक् ॥  
 ततः स्वादुकरान्नं च भुंजीत सुसमाहिताः ॥ ६६ ॥  
 आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ॥



एवं हि त्रिमासं कथितो भया वः समासतः शाश्वतं वैर्मराशिः ॥

गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्मं कुर्वन्मयत्नादरिमेतियुक्तम् ॥ ७७ ॥

॥ इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ अत्रार्थात् ॥ ७७ ॥

पञ्चमाऽध्यायः ५

॥ ७८ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानप्रस्थस्य सत्तमाः ॥

धर्माश्रम महाभागाः कथ्यमानं निबोधत ॥ १ ॥

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दिष्टा पालितमात्मनः ॥

भार्या पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्व्रतम् ॥ २ ॥

॥ ७९ ॥

॥ ८० ॥

॥ ८१ ॥

॥ ८२ ॥

॥ ८३ ॥

॥ ८४ ॥

कष्टे च कष्टेऽप्यवतः तस्य न शीतं न शीतं ॥ ६ ॥

धर्मं च धर्ममप्यवतः तस्य न शीतं न शीतं ॥ ७ ॥

धर्मं च धर्ममप्यवतः तस्य न शीतं न शीतं ॥ ८ ॥

॥ एवं च कुर्वता येन कृतं दुर्दिप्याकमम् ॥ ८५ ॥

अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥ ८ ॥

आदेहपातं वनगो मौनेमास्थाय तापसः ॥

स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥

तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतांतरात्मा ॥

विमुक्तपापोविमलःप्रशांतः स यातिदिव्यंपुरुषं पुराणम् ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ॥

श्रद्धया तमनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बंधनात् ॥ १ ॥

एवं वनाश्रमे तिष्ठन्पातयंश्चैव किल्बिषम् ॥

चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासविधिना द्विजः ॥ २ ॥

दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ॥

दत्त्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥ ३ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥

अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रव्रजेत्पुनः ॥ ४ ॥

ततःप्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत् ॥

बंधूनामभयं दद्यात्सर्वभूताभयं तथा ॥ ५ ॥

त्रिदंडं वैष्णवं सम्यक् संततं समपर्वकम् ॥

वेष्टितं कृष्णगोवाल रज्जुमच्चतुरंगुलम् ॥ ६ ॥

शौचार्थमासनार्थं च मुनिभिः समुदाहृतम् ॥  
 कौपीनाच्छादनं वासः कथां शीतनिवारिणीम् ॥ ७ ॥  
 पादुके चापि गृहीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥  
 एतानि तस्य लिंगानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥ ८ ॥  
 संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥  
 स्नात्वाचम्य च विधिवद्ब्रह्मपूतेन वारिणा ॥ ९ ॥  
 तर्पयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्भास्करं नमेत् ॥  
 आत्मानं प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ १० ॥  
 गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥  
 स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥ ११ ॥  
 सायंकाले तु विमाणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ॥  
 सम्यग्याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥ १२ ॥  
 पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोषयेत् ॥  
 यावतात्रेन वृत्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ॥ १३ ॥  
 ततो निवृत्त्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ॥  
 चतुर्भिरंगुलैश्छाद्यं आसमात्रं समाहितः ॥ १४ ॥  
 सर्वव्यंजनसंयुक्तं पृथक्पात्रे नियोजयेत् ॥  
 सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्त्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥ १५ ॥  
 भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥

वदन्काश्वपुष्पेण कुम्भीतैन्दुकपात्रके ॥ १६ ॥

॥ ७ ॥ शोविदारकंदेषु न भुञ्जीयात्कदाचन ॥ १७ ॥

मल्लाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥ १७ ॥

॥ ८ ॥ कांस्यभांडेषु यत्पाको गृहस्थस्य तथैव च ॥

कांस्ये भोजयतः सर्व किल्बिषं प्राप्नुयात्तयोः ॥ १८ ॥

॥ ९ ॥ भुक्त्वा पोत्रे यतिनित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥

न दुप्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा-इव ॥ १९ ॥

॥ १० ॥ अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेच्च भास्करम् ॥

जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥ २० ॥

॥ ११ ॥ कृतसंध्यस्ततो रानि नयेद्देवगृहादिषु ॥

न तं गृहं निवसेद्भगवन्मन्त्रान्वाच्यम् ॥ २१ ॥

॥ . . . . . वशी ॥

. . . . . नेवर्तते ॥ २२ ॥

॥ . . . . . चरे ॥

॥ ॥ छनैः शैत्यस्तु बहिर्मुखाक्षः ॥

॥ १२ ॥ संमुच्य संसारसमस्तबंधनात् ॥

॥ सुप्ताति विष्णोरमृतात्मनः प्रदम् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीरामायणे अष्टादशस्कन्धे अष्टादशस्मृतयः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु वात्रेन संयुतम् ॥  
 उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा स्वे पक्षिणां गतिः ॥ १० ॥  
 तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥  
 विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥ ११ ॥  
 देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ॥  
 न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥ १२ ॥  
 मया च कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ॥  
 संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥ १३ ॥  
 श्रुत्वेवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥  
 प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वस्वमाश्रमम् ॥ १४ ॥  
 धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ॥  
 अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ १५ ॥  
 ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म कथितं बाहुजस्य च ॥  
 ऊरुजस्यापि यत्कर्म कथितं पादुजस्य च ॥ १६ ॥  
 अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥  
 यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ॥ १७ ॥  
 तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥  
 राजेन्द्र वर्णाश्रत्वारश्चत्वारश्चापि चाश्रमाः ॥ १८ ॥  
 स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते याति परमां गतिम् ॥  
 स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रसीदति ॥ १९ ॥

न तुप्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥

अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमर्तदितः ॥ २० ॥

सहस्रानकिदेवेशं नरसिंहं च सालयम् ॥ २१ ॥

उत्पन्नधैराग्यबलेन योगी

ध्यायेत्परं ब्रह्म सदाक्रियावान् ॥

सत्यं सुखं रूपमनंतमाद्यं

विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति हारीतस्मृतिः समाप्ता ३.





प्रशंसोवृत्तिको जीवेद्वैश्ये प्रथमं करस्तथा ॥ १० ॥  
 ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गा जातश्चण्डाल उच्यते ॥ ११ ॥  
 सोसर्माभरणं तस्य कोणार्थसमंथापि वीगा ॥  
 वधो कंठे सिमावद्ध्यां झलरीं कक्षतोपि विगा ॥  
 मलापकर्षणं ग्रामे पूर्वाह्णे परिशुद्धिकम् ॥ १२ ॥  
 नापराह्णे प्रविष्टोपि बहिर्ग्रामाच्च नैकते ॥ १३ ॥  
 पिडीभूता भवत्यत्र नो चेदध्या विशेषतः ॥  
 चण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥ १४ ॥  
 श्वमांससक्षणं तेषां श्वाने एव च तद्वर्त्मगा ॥  
 नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगवद्भिति स्मृतः ॥ १५ ॥  
 तंतुवाया भवत्येव वसुकांस्योपजीविनः ॥  
 शीलिकाः क्रेचिदैत्रव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥ १६ ॥  
 आयोगवेन विप्रयां जातास्ताम्रोपजीविनः ॥  
 तस्यैव नृपकन्यायां जातिः सुनिका उच्यते ॥ १७ ॥  
 सुनिकस्या नृपायां तु जाता उद्वधकाः स्मृताः ॥  
 निर्णेजयेषुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवत्यतः ॥ १८ ॥  
 नृपायां वैश्यतश्चौर्यां पुलिंदः परिकीर्तितः ॥ १९ ॥  
 पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्पुस्तोन्दुष्टसखकान्गी ॥  
 नृपायां शूद्रसंसर्गा जातः पुल्कंस उच्यते ॥ २० ॥  
 सुरावृत्तिं समीरुह्य मधुविक्रयकर्मणो ॥ २१ ॥

कृतकानां सुराणां च विक्रेता पाचको भवेत् ॥  
 पुल्कसाद्वैश्यकन्यायां जातो रजक उच्यते ॥ १८ ॥  
 नृपायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो रंजक उच्यते ॥  
 वैश्यायां रंजकाज्जातो नर्तको गायको भवेत् ॥ १९ ॥  
 वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहिकः स्मृतः ॥  
 अजानां पालनं कुर्यान्महिषीणां गवामपि ॥ २० ॥  
 दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत् ॥  
 वैदेहिकास्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥  
 नृपायोमेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः ॥  
 वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याज्जातश्चक्री च उच्यते ॥ २२ ॥  
 तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन्पुनः ॥  
 विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायां तु समंत्रकम् ॥ २३ ॥  
 जातः सुवर्ण इत्युक्तः सानुलोमद्विजः स्मृतः ॥  
 अथ वर्णक्रियां कुर्वन्नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् ॥ २४ ॥  
 अश्वं रथं हस्तिनं च बाह्येद्वा नृपाज्ञया ॥  
 सैनापत्यं च भैषज्यं कुर्याज्जीवेत्तु वृद्धिषु ॥ २५ ॥  
 नृपायां विप्रतश्चौर्यात्संजातो यो भिषकस्मृतः ॥  
 अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपाल्येत्तु वैद्यकम् ॥ २६ ॥  
 आयुर्वेदमथाष्टांगं तंत्रोक्तं धर्ममाचरेत् ॥  
 ज्योतिषं गणितं वापि कायिकीं वृद्धिमाचरेत् ॥ २७ ॥

नृपायां विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृतः ॥  
 नृपायां नृपसंसर्गात्प्रमादाद्ब्रूजातकः ॥ २८ ॥  
 सोऽपि क्षत्रिय एव स्यादभिषेके च वर्जितः ॥  
 अभिषेकं विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकः ॥ २९ ॥  
 सर्वं तु राजवृत्तस्य शस्यते पदवन्दनम् ॥  
 पुनर्भूकरणे राज्ञां नृपकालीन एव च ॥ ३० ॥  
 वैश्यायां विधिना विप्राज्जातो ह्यंवष्ट उच्यते ॥  
 कृष्याजीवी भवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥ ३१ ॥  
 ध्वजिनीजीविका वापि अंवष्टाः शस्त्रजीविनः ॥  
 वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुम्भकारः स उच्यते ॥ ३२ ॥  
 कुलालवृत्त्या जीवेत नापिता वा भवन्त्यतः ॥  
 सूतके प्रेतके वापि दीक्षाकालेऽथ वापनम् ॥ ३३ ॥  
 नाभेरूर्ध्वं तु वपनं तस्मान्नापित उच्यते ॥  
 कायस्थ इति जीवेत्तु विचरेच्च इतस्ततः ॥ ३४ ॥  
 काकालौल्यं यमात्कौर्यं स्थपतेरथ कृतनम् ॥  
 आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थ इति कीर्तितः ॥ ३५ ॥  
 शूद्रायां विधिना विप्राज्जातः पारशवो मतः ॥  
 भद्रकादीन्समाश्रित्य जीवेयुःपूतकाः स्मृताः ॥ ३६ ॥  
 शिवाद्यागमाविद्याद्यैस्तथा मंडलवृत्तिभिः ॥

तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥ ३७ ॥

वने दुष्टमृगान्धत्वा जीवनं मांसविक्रयः ॥

नृपाज्जातोय वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः ॥

वैश्यवृत्त्या तु जीवेत क्षत्रधर्म्मं न चारयेत् ॥ ३८ ॥

तस्यां तस्यैव चौर्येण मणिकारः प्रजायते ॥

मणीनां राजतां कुर्यान्मुक्तानां वेधनक्रियाम् ॥ ३९ ॥

प्रवालानां च सूत्रित्वं शाखानां बलयक्रियाम् ॥

शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ॥ ४० ॥

नृपस्य दंडधारः स्यादंडं दंडेषु संचरेत् ॥

तस्यैव चावसंघृत्वा जातः शुंडिक उच्यते ॥ ४१ ॥

जातदुष्टान्समारोप्य शुंडाकर्मणि योजयेत् ॥

शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचिकः स्मृतः ॥ ४२ ॥

सूचिकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते ॥

शिल्पकर्माणि चान्यानि प्राप्तादलक्षणं तथा ॥ ४३ ॥

नृपायामेव तस्यैव जातो यो मत्स्यबंधकः ॥

शूद्रायां वैश्यतश्चौर्ष्यात्कटकार इति स्मृतः ॥ ४४ ॥

वशिष्टशापात्रेतायां केचित्पारश्वारस्तथा ॥

वैखानसेन केचित्तु केचिद्भागवतने च ॥ ४५ ॥

वैदशास्त्रावलंबास्ते भविष्यंति कलौ युगे ॥

कटकारास्ततः पश्चाद्बारायणगणाः स्मृताः ॥ ४६ ॥

शाखा वैखानसेनोक्तास्तंत्रमार्गविधिक्रियाः ॥  
 निषेकाद्याः श्मशानांताःक्रियाःपूजांगसूचिकाः ॥४७॥  
 पञ्चरात्रेण वा प्राप्तं प्रोक्तं धर्मं समाचरेत् ॥  
 शूद्रोदेव तु शूद्रायां जातः शूद्र इति स्मृतः ॥ ४८ ॥  
 द्विजशुश्रूषणपरः पाक- यज्ञपरान्वितः ॥  
 सच्चद्रुद्रं तं विजानीयादसञ्चद्रुद्रस्ततोऽन्यथा ॥ ४९ ॥  
 चौर्यात्काकवचो ज्ञेयश्चाश्वानां तृणवाहकः ॥ ५० ॥  
 एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं जातिवृत्तिविभागशः ॥  
 जात्यंतराणि दृश्यन्ते संकल्पादित एव तु ॥ ५१ ॥  
 इत्यौशनसं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ४ ॥  
 औशनसी स्मृतिः समाप्ता ४.





॥ श्रीः ॥

## आंगिरसस्मृतिः ५.

गृहाश्रमेषु धर्मेषु वर्णानामनुपूर्वशः ॥  
 प्रायश्चित्तविधिं दृष्ट्वा अंगिरा मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥  
 अंत्यानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः ॥  
 चांद्रं कृच्छ्रं तदर्थं तु ब्रह्मक्षत्रविशां विदुः ॥ २ ॥  
 रजकश्चर्मकश्चैव नटो वुरुड एव च ॥  
 कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चांत्यजाः स्मृताः ॥ ३ ॥  
 अंत्यजानां गृहे तोयं भांडे पर्युषितं च यत् ॥  
 यद्विजेन यदा पीतं तदैव हि समाचरेत् ॥ ४ ॥  
 चण्डालकूपे भांडेषु त्वज्ञानात्पिबते यदि ॥  
 प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णं वर्णं विधीयते ॥ ५ ॥  
 चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥  
 तदर्थं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥  
 अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणस्त्वंत्यजातिषु ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥  
 विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥  
 आचोत एव शुद्ध्येत अंगिरा मुनिरब्रवीत् ॥ ८ ॥

क्षत्रियेण यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥  
 स्नानं जप्यं तु कुर्वीत दिनस्याद्धेन शुद्ध्यति ॥ ९ ॥  
 वैश्येन तु यदा स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥  
 उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥  
 अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टः स्नानं येन विधीयते ॥  
 तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ११ ॥  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीशौचस्य वै विधिम् ॥  
 स्त्रीणां क्रीडार्यसंभोगे शयनीये न दुष्यति ॥ १२ ॥  
 पालनं विक्रयश्चैव तदस्या उपजीवनम् ॥  
 पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १३ ॥  
 स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥  
 स्पृष्ट्वा तस्य महापापं नीलीवस्त्रस्य धारणम् ॥ १४ ॥  
 नीली रक्तं यदा वस्त्रमज्ञानेन तु धारयेत् ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १५ ॥  
 नीलीदारु यदा भिद्याद्ब्राह्मणो वै प्रमादतः ॥  
 शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ १६ ॥  
 नीलीवृक्षेण पक्वं तु अन्नमश्नाति चेद्विजः ॥  
 आहारवमनं कृत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥  
 भक्षेत्प्रमादतो नीलीं द्विजातिस्त्वसमाहितः ॥  
 त्रिषु वर्णेषु सामान्यं चांद्रायणमिति स्थितम् ॥ १८ ॥

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपदीयते ॥  
 नोपतिष्ठति दातारं भोक्ताभुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ १९ ॥  
 नीलीरक्तेन वस्त्रेण यत्पाके श्रपितं भवेत् ॥  
 तेन भुक्तेन विप्राणां दिनमेकमभोजनम् ॥ २० ॥  
 मृते भर्तारि या नारी नीलीवस्त्रं प्रधारयेत् ॥  
 भर्ता तु नरकं याति सा नारी तदनन्तरम् ॥ २१ ॥  
 नील्या चोपहृते क्षेत्रे सस्यं यत्तु प्ररोहति ॥  
 अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्ता चाद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥  
 देवद्रोणे वृषोत्सर्गे यज्ञे दाने तथैव च ॥  
 अत्र स्नानं न कर्तव्यं दूषिता च वस्तुंधरा ॥ २३ ॥  
 वापिता यत्र नीली स्यात्तावद्धूरशुचिर्भवेत् ॥  
 यावद्वादशवर्षाणि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥ २४ ॥  
 भोजने चैव पाने च तथा चौपधमेपजैः ॥  
 एवं म्रियंते या गावः पादमेकं समा चरेत् ॥ २५ ॥  
 घंटाभरणदोषेण यत्र गोविनिपीड्यते ॥  
 चरेद्दूर्ध्वं व्रतं तेषां भूषणार्थं तु यत्कृतम् ॥ २६ ॥  
 दमने दामने रोधे अवघाते च वैकृते ॥  
 गवां प्रभवतां घातैः पादोनं व्रतमाचरेत् ॥ २७ ॥  
 अंगुष्ठपर्वमात्रस्तु बाहुमात्रप्रमाणतः ॥  
 सपल्लवश्च साग्रश्च दंड इत्यभिरीयते ॥ २८ ॥

दंडादुक्ताद्यदान्येन पुरुषाः प्रहरन्ति गाम् ॥  
 द्विगुणं गोव्रतं तेषां प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २९ ॥  
 शृंगभंगे त्वस्थिभंगे चर्मनिर्माचने तथा ॥  
 दशरात्रं चरेत्कृच्छ्रं यावत्स्वस्थो भवेत्तदा ॥ ३० ॥  
 गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं चोपजायते ॥  
 एतदेव हितं कृच्छ्रमित्यमंगिरसा स्मृतम् ॥ ३१ ॥  
 असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः ॥  
 यमुद्दिश्य चरेद्धर्म पापं तस्य न विद्यते ॥ ३२ ॥  
 अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनपोडशः ॥  
 प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥  
 मूर्च्छिते पतिते चापि गवि यष्टिप्रहारिते ॥  
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ३४ ॥  
 स्नात्वा रजस्वला चैव चतुर्येह्य विशुद्ध्यति ॥  
 कुर्याद्रजसि निर्वृत्तेऽनिर्वृत्ते न कथंचन ॥ ३५ ॥  
 रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥  
 अशुद्धास्ता न तेन स्युस्तासां वैश्वारिकं हि तत् ॥ ३६ ॥  
 साध्याचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते ॥  
 वृत्ते रजासि गम्यां स्त्री गृहकर्मणि चैद्रिये ॥ ३७ ॥  
 प्रथमेऽहनि चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥  
 तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्येऽहनि शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना शूद्रेण चैव हि ॥  
 उपोप्य रजर्नमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३९ ॥  
 द्रवितावशुची स्यातां दंपती शयनं गतौ ॥  
 शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ ४० ॥  
 गंडूषं पादशौचं च न कुर्यात्कांस्यभाजने ॥  
 भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥  
 रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥  
 भूमौ निःक्षिप्य पण्मासमत्यंतोपहतं शुचि ॥ ४२ ॥  
 गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥  
 भस्मना दशभिः शुद्ध्येत्काकेनोपहते तथा ॥ ४३ ॥  
 शौचं सौवर्णौप्याणां वायुनार्कंदुरश्मिभिः ॥  
 रजःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं च न शुद्ध्यति ॥ ४४ ॥  
 अद्भिर्मृदा च यन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥  
 शुष्कमन्नमाविप्रस्य भुक्त्वा सप्ताहमृच्छति ॥ ४५ ॥  
 अन्नं व्यंजनसंयुक्तमर्द्धमासेन शुद्ध्यति ॥  
 पयो दधि च मासेन पण्मासेन घृतं तथा ॥  
 तैलं संवत्सरेणैव फोष्टे जीर्यति वा न वा ॥ ४६ ॥  
 यो भुंक्ते हि च शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥  
 इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ॥ ४७ ॥  
 शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण च सहासनम् ॥

शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ४८ ॥

अप्रणामं गते शूद्रे स्वस्ति कुर्वति ये द्विजाः ॥

शूद्रोपि नरकं याति ब्राह्मणोपि तथैव च ॥ ४९ ॥

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ॥

पाक्षिकं वैश्य एवाहुः शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥

अमिहोत्री तु यो विप्रः शूद्रान्नं चैव भोजयेत् ॥

पंच तस्य प्रणश्यंति चात्मा वेदास्त्रयोऽन्यः ॥ ५१ ॥

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुतान् ॥

यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्लं प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

शूद्रेण स्पृष्टमुच्छिष्टं प्रमादादथ पाणिना ॥

तद्विजेभ्यो न दातव्यमापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ५३ ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु ॥

वैश्येष्वपि भुंजीत न शूद्रेपि कदाचन ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणान्ने दरिद्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ॥

वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्ने नरकं ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥

वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ॥

यो यस्यान्नं समभ्रातिस तस्याभ्राति किल्बिषम् ५७ ॥

सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥

पिबेत्पानीयमज्ञानाद्रंक्ते भक्तमथापि वा ॥ ५८ ॥  
 उत्तार्याचम्य उदकमवतीर्य उपस्पृशेत् ॥  
 एवं हि स मुधाचारो वरुणेनाभिर्भञ्जितः ॥ ५९ ॥  
 अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवव्राह्मणसन्निधौ ॥  
 आचरेज्जपकाले च पादुकानां विसर्जनम् ॥ ६० ॥  
 पादुकासनमारूढो गेहात्पञ्चगृहं व्रजेत् ॥  
 छेदयेत्तस्य पादौ तु धार्मिकः पृथिवीरतिः ॥ ६१ ॥  
 अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः ॥  
 एते वै पादुकैर्याति शेषान्दण्डेन ताडयेत् ॥ ६२ ॥  
 जन्मप्रभृतिसंस्कारे चूडांते भोजने नवे ॥  
 असापिडे न भोक्तव्यं चूडस्यांते विशेषतः ॥ ६३ ॥  
 याचकान्नं नवश्राद्धमपि सततकभोजनम् ॥  
 नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ६४ ॥  
 अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥  
 तस्य चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रगीयते ॥ ६५ ॥  
 पूर्वस्य श्रावितो यश्च गर्भो यश्चाप्यसंस्कृतः ॥ -  
 द्वितीयेगर्भसंस्कारस्तेन शुद्धिर्विधीयते ॥ ६६ ॥  
 राजाद्यैर्दशभिर्मासेषांवात्तिष्ठति गुर्विणी ॥  
 तावद्रक्षा विधातव्या पुनरन्यो विधीयते ॥ ६७ ॥  
 भर्तृशासनमुल्लंघ्य या च स्त्री विप्रवर्तते ॥

तस्याश्चैव न भोक्तव्यं विज्ञेया कामचारिणी ॥ ६८ ॥

अनपत्या तु या नारी नाश्नीयात्तद्गृहेपि वै ॥

अथ भुंक्ते तु यो मोहात्पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ६९ ॥

स्त्रिया धनं तु ये मोहादुपजीवन्ति मानवाः ॥

स्त्रिया यानानि वासांसि ते पापा यात्यधोगतिम् ७० ॥

राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥

सूतकेषु च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ ७१ ॥

इत्यांगिरःप्रणीतं धर्मशास्त्रं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

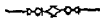
इत्याङ्गिरसस्मृतिः समाप्ता ॥ ५ ॥





॥ श्रीः ॥

## यमस्मृतिः ६.



श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः ॥  
 प्रात्रवीटपिभिः पृष्ठो मुनीनामग्रणीर्यमः ॥ १ ॥  
 यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि घण्डालं पातितं स्पृशेत् ॥  
 क्रोधादज्ञानतो घापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ २ ॥  
 पद्मात्रं वा त्रिरात्रं वा यथासंख्यं समाचरेत् ॥  
 स्नात्वा त्रिपवणं विप्रः पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥  
 भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ॥  
 उच्छिष्टपृष्ठे शुचित्वे च तस्य शौचं विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥  
 पूर्वं कृत्वा द्विजः शौचं पश्चादप्युपस्पृशेत् ॥  
 अहोरात्रो पितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ५ ॥  
 निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहेन कृत ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ६ ॥  
 यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्वाङ्गणः क्वचित् ॥  
 भूमौ निधाय तद्भासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥  
 भक्षयित्वा तु तद्भासमुपवासेन शुद्ध्यति ॥

अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ८ ॥  
 अशनतश्चेद्विरेकः स्यादस्वस्थस्त्रिशतं जपेत् ॥  
 स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्याः शोधनं परम् ॥ ९ ॥  
 चंडालैः श्वपचैः स्पृष्टो विष्णून्ने च कृते द्विजः ॥  
 त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः पडाचरेत् ॥ १० ॥  
 उदक्यां सूतिकां वापि संस्पृशेदंत्यजो यदि ॥  
 त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादिति शातातपोऽवधीत् ॥ ११ ॥  
 रजस्वला तु संस्पृष्टा श्रमातंगादिवायसैः ॥  
 निराहारा शुचित्तिष्ठेत्कालान्नेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥  
 रजस्वले यदा नार्यावन्योन्यं स्पृशतः क्वचित् ॥  
 शुद्ध्यतः पंचगव्येन ब्रह्मकूर्धेन चोपरि ॥ १३ ॥  
 उच्छिष्टेन च संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥  
 कृच्छ्रेण शुद्धिमाप्नोति शूद्रा दिनोपवासतः ॥ १४ ॥  
 अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टे स्नानं येन विधीयते ॥  
 तेनोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५ ॥  
 ऋतौ तु गर्भं शंकित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥  
 अनृतौ तु स्त्रिमं गत्वा शीघ्रं भूत्रपुरीषवत् ॥ १६ ॥  
 उभावप्यशुची स्यातां दंपती शयने गतौ ॥  
 शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ १७ ॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ॥  
 दंड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥ १८ ॥  
 त्यजंतोऽपतितान्वंधूदंढ्या उत्तमसाहसम् ॥  
 पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥ १९ ॥  
 आत्मानं धातयेद्यस्तु रज्ज्वाऽऽदिभिरुपक्रमैः ॥  
 मृतोऽमेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥ २० ॥  
 दंड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिकं दमम् ॥  
 प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥ २१ ॥  
 जलाद्युद्वंथनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्छ्रुताः ॥  
 विषप्रपतनं प्रायः शस्त्रपातहताश्च ये ॥ २२ ॥  
 न चैते प्रत्यवासिताः सर्वलोकवहिष्कृताः ॥  
 चांद्रायणेन शुद्ध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥ २३ ॥  
 उभयावासितः पापः श्यामाच्छ्रवणकाच्छ्रुतः ॥  
 चांद्रायणाभ्यां शुद्ध्येत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥ २४ ॥  
 श्वश्रृगालप्लवंगाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना ॥  
 दष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा संध्यासु रात्रिषु २५ ॥  
 अज्ञानाद्ब्राह्मणो भुक्त्वा चंडालान्नं कदाचन ॥  
 गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २६ ॥  
 गोब्राह्मणहननं दग्ध्वा मृतं चोदन्धनादिना ॥  
 पाशं छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद्विजः ॥ २७ ॥

- चंडालपुलकसानां च भुक्त्वा गत्वा च योषितम् ॥  
 कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २८ ॥  
 ( कापालिकात्रभोक्तृणां तन्नारीगामिनां तथा ॥  
 कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २९ ॥  
 ( अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे ॥  
 तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥  
 महापातककर्तारश्चत्वारोथ विशेषतः ॥  
 ओमिं प्रविश्य शुद्ध्यन्ति स्थित्वा वा महति क्रतौ ३१ ॥  
 रहस्यकरणेऽप्येवं मासमभ्यस्य पूरुषः ॥  
 अवमर्षणसूक्तं वा शुद्ध्येदंतर्जले स्थितः ॥ ३२ ॥  
 ( रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥  
 कैवर्त्तमेदभिलाश्च सत्तैते अन्यजाः स्मृताः ॥ ३३ ॥  
 ( भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वाऽपः प्रतिगृह्य च ॥  
 कृच्छ्राब्दमाचरेऽज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ ३४ ॥  
 ( मातरं गुरुपत्नीं च खमृदुहितरं सुपाम् ॥  
 गत्वैताः प्राविशेदमिं नान्या शुद्धिर्विधीयते ॥ ३५ ॥  
 ( राज्ञां प्रव्रजितां धार्त्रां तथा वर्णात्तमामपि ॥  
 कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ॥ ३६ ॥  
 ( अन्यासु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि ॥  
 परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रं साक्षिपनं चरेत् ॥ ३७ ॥

वैश्याभिगमने पापं व्यपोहन्ति द्विजातयः ॥  
 पीत्वा सकृत्सुततं च पंचरात्रं कुशोदकम् ॥ ३८ ॥  
 गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥  
 गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ॥ ३९ ॥  
 दंडादूर्ध्वप्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् ॥  
 द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४० ॥  
 अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः ॥  
 सार्द्धश्च सपलाशश्च गोदंडः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥  
 गवां निपातने चैव गभोंपि संपत्तेद्यदि ॥  
 एकैरुशश्चरेत्कृच्छ्रं यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ ४२ ॥  
 पादसुषन्नमात्रे तु द्वौ पादौ गात्रसंभवे ॥  
 पादोर्ध्वं कृच्छ्रमाचष्टे हत्वां गर्भमचेतनम् ॥ ४३ ॥  
 अंगप्रत्यंगसंपूर्णं गर्भं रेतःसमन्विते ॥  
 एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रमेवा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ४४ ॥  
 बंधने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजा ॥  
 संपद्यते चेन्मरणं निमित्ती नैव लिप्यते ॥ ४५ ॥  
 मूर्च्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतस्तथा ॥  
 उत्थाय पट्टपदं गच्छेत्सप्त पंच दशापि वा ॥ ४६ ॥  
 आसं वा यदि गृहीयात्तोयं वापि पिवेद्यदि ॥  
 पूर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४७ ॥

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥  
 प्रायश्चित्तं कथं तत्र शास्त्रे शास्त्रे निगद्यते ॥ ४८ ॥  
 काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥ ४९ ॥  
 तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ ५० ॥  
 औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेभ्यः च ॥  
 दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५१ ॥  
 तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे ॥  
 निःशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५२ ॥  
 वत्सानां कंठबंधे च क्रियया भेषजेन तु ॥  
 सायं संगोपनार्थं च न दोषो रोधबंधयोः ॥ ५३ ॥  
 पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥  
 त्रिपादे तु शिखावर्जं मूले सर्वं समाचरेत् ॥ ५४ ॥  
 सर्वान्केशान्समुद्धृत्यच्छेदयेदंगुलद्वयम् ॥  
 एवमेव तु नारीणां मुंडमुंडायनं स्मृतम् ॥ ५५ ॥  
 न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥  
 न च गोष्ठे निवासोस्ति न गच्छंतीमतव्रजेत् ॥ ५६ ॥  
 राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥  
 अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५७ ॥  
 केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥

द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणैव तु दक्षिणा ॥ ५७ ॥

द्विगुणं चेन्न दत्तं हि केशांश्च परिरक्षयेत् ॥

पापं न क्षीयते हंतुर्दाता च नरकं व्रजेत् ॥ ५८ ॥

अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ॥

तान्धर्मविघ्नकर्तृश्च राजा दंडेन पीडयेत् ॥ ५९ ॥

न चेत्तान्पीडयेद्वाजा कथांचिकाममोहितः ॥

तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ॥ ६० ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्वाह्यभोजनम् ॥

विंशतिं गा वृषं चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥

कृमिभिर्व्रणसंभूतैर्मक्षिकाभिश्च पातितैः ॥

कृच्छार्द्धं संमकुर्वीत शतपा दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ६२ ॥

प्रायश्चित्तं च कृत्वा वैभोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥

सुवर्णमापकं दद्यात्ततः शुद्धिर्विधीयते ॥ ६३ ॥

चंडालश्चपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ॥

न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ६४ ॥

अथ वसेद्यदा रात्रौ अज्ञानादविचक्षणः ॥

तदा तस्य तत्पापं शतधा परिवर्त्तते ॥ ६५ ॥

लङ्घच्छेति हि न शत्राण्युपरिष्टाच्च ये ग्रहाः ॥

संस्पृष्टे राशिमाभिस्तेषामुदके स्नानमाचरेत् ॥ ६६ ॥

कुड्यांतर्जलवल्मीकमूषिकोत्करवल्मसु ॥  
 श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः ॥ ६७ ॥  
 इष्टापूर्ते तु कर्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥  
 इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षं समश्नुते ॥ ६८ ॥  
 वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते ॥  
 आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥ ६९ ॥  
 बापीरूपतडागानि देवतायतनानि च ॥  
 पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ७० ॥  
 शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात्कृष्णाया गोः शकृत्तथा ॥  
 ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेताया दधि चोच्यते ॥ ७१ ॥  
 कंपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् ॥  
 सर्वतीर्थे नदीतोये कुशैर्द्रव्यं पृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥  
 आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन च ॥  
 प्रणवेन समालोडय प्रणवेन तु संपिबेत् ॥ ७३ ॥  
 पालाशे मध्यमे पर्णे भांडे ताम्रमये तथा ॥  
 पिबेत्पुष्करपर्णे वा ताम्रे वा मृन्मये शुभे ॥ ७४ ॥  
 सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ॥  
 द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्ध्यति ॥ ७५ ॥  
 जातेन शुद्ध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा ॥



गर्भे संस्त्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥  
 रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशुद्ध्यति ॥  
 रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ७७ ॥  
 स्वगोत्राद्भ्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ॥  
 स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिंडोदकक्रिया ॥ ७८ ॥  
 द्वे पितुः पिण्डदानं स्यात्पिंडे पिंडे द्विनामता ॥  
 षण्णां देयास्त्रयः पिंडा एवं दाता न मुह्यति ॥ ७९ ॥  
 स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुक्त्वा सदैवतम् ॥  
 पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥ ८० ॥  
 षष्ठैर्वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ॥  
 अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ ८१ ॥  
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् ॥  
 पार्षणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पंचविधं बुधैः ॥ ८२ ॥  
 ग्रहोपरागे संक्रांतौ पर्वोत्सवमहालयोः ॥  
 निर्वपेन्नीत्तरः पिंडानेकमेव मृतेहनि ॥ ८३ ॥  
 अनूठा न पृथक्कन्या पिंडे गोत्रे च सूतके ॥  
 पाणिग्रहणमंत्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्यते ततः ॥ ८४ ॥  
 येनयेन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ॥  
 तत्समं सूतकं याति तथा पिंडोदकेपि च ॥ ८५ ॥

विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेहनि रात्रिषु ॥  
 एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुः पिंडे गोत्रे च सुतके ॥ ८६ ॥  
 प्रथमेहि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ॥  
 अस्थिसंचयनं कार्यं बंधुभिर्हितबुद्धिभिः ॥ ८७ ॥  
 चतुर्थे पंचमे चैव सप्तमे नवमे तथा ॥  
 अस्थिसंचयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ८८ ॥  
 एकादशाहे भेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥  
 मुच्यते भेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥ ८९ ॥  
 नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेनानुचितयेत् ॥  
 आगच्छंतु मे पितरो गृह्णन्वेताञ्जलांजलीन् ॥ ९० ॥  
 हस्तौ कृत्वा तु संपुक्तौ पूरयित्वा जलेन च ॥  
 गोशृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥ ९१ ॥  
 आकाशे च क्षिपेद्धारि वारिस्थो दक्षिणामुखः ॥  
 पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक्तथैव च ॥ ९२ ॥  
 आपो देवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा ॥  
 तस्मादप्सु जलं देयं पितॄणां हितमिच्छता ॥ ९३ ॥  
 दिवा सूर्याशुभिस्तप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः ॥  
 संध्योरप्युभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥  
 स्वभावयुक्तमव्याप्तममेध्येन सदा शुचि ॥

भाण्डस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९५ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलीन् ॥

असंस्कृतप्रसीतानां स्थले दद्याज्जलांजलीन् ॥ ९६ ॥

श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ॥

उभाभ्यां तर्पणे दद्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

इति यमप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ६ ॥

इति यमस्मृतिः समाप्ता ६.



॥श्रीः॥

## आपस्तंबस्मृतिः ७.

प्रथमोऽध्यायः १.



आपस्तंबं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ॥  
दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १ ॥  
परेषां परिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम् ॥  
विविक्तदेश आसीनमात्मविद्यापरायणम् ॥ २ ॥  
अनन्यमनसं शांतं तत्त्वस्यं योगवित्तमम् ॥  
आपस्तंबमृषिं सर्वे समेत्य मुनयोब्रुवन् ॥ ३ ॥  
भगन्मानवाः सर्वे असन्मार्गे स्थिता यदा ॥  
चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥ ४ ॥  
यतोऽवश्यं गृहस्येन गवादिपरिपालनम् ॥  
कृषिकर्मादिवपनं द्विजामंत्रणमेव च ॥ ५ ॥  
वालानां रतन्यपानादि कार्यं च परिपालनम् ॥  
देयं चानायकेऽवश्यं विप्रादीनां च भेषजम् ॥ ६ ॥  
एवं कृते कथंचित्स्यात्प्रमादो यद्यकामतः ॥  
गवादीनां ततोऽस्माकं भगवन्ब्रूहि निष्कृतिम् ॥ ७ ॥

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा प्राणिपातादधोमुखः ॥  
 दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तंभः सुनिश्चितम् ॥ ८ ॥  
 बालानां स्तनपानादिकार्यं दोषो न विद्यते ॥  
 विपत्तावपि विप्राणामामंत्रणचिकित्सने ॥ ९ ॥  
 गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं तृणादिषु ॥  
 केचिदाहुर्न दोषोत्र स्नेहं लवणभेषजे ॥ १० ॥  
 औषधं लवणं चैव स्नेहं पुष्ट्यर्थभोजनम् ॥  
 प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥  
 अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वरूपं तु दापयेत् ॥  
 अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥ १२ ॥  
 अहार्निरशनं पादः पादश्चायाचितं ज्यहम् ॥  
 सायं ज्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा ज्यहम् ॥  
 प्रातः सायं दिनार्द्धं च पादोर्न सायवर्जितम् ॥ १३ ॥  
 प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ॥  
 अपाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च ॥ १४ ॥  
 पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥  
 योजने पादहीनं च चरेत्सर्वं निपातने ॥ १५ ॥  
 घंटाभरणदोषेण गोस्तु यत्र विपद्भवेत् ॥  
 चरेदर्द्धव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत् ॥ १६ ॥  
 दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ॥

स्तंभशृङ्खलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ॥ १७ ॥  
 पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा वलात् ॥  
 निपातयन्ति ये पापास्तेषां सर्वं विधीयते ॥ १८ ॥  
 प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियस्तथा ॥  
 कूञ्जार्द्धं तु चरेद्देश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ १९ ॥  
 द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ॥  
 द्वौ मासावेकवेलायां शेषकालं यथारुचि ॥ २० ॥  
 दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते ॥  
 सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २१ ॥  
 हलमष्टगवं धर्म्यं पद्मवं जीवितार्पिनाम् ॥  
 चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं हि जिघांसिनाम् ॥ २२ ॥  
 अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥  
 नदीपर्वतसंरोहे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २३ ॥  
 न नारिकेलवालाभ्यां न मुंजेन न चर्मणा ॥  
 एभिर्गास्तुः न वध्नीयाद्वद्धा परवशो भवेत् ॥ २४ ॥  
 कुशैः काशैश्च वध्नीयादृषभं दक्षिणामुखम् ॥  
 पादलमाहिदाहेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २५ ॥  
 व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेपि च ॥  
 भिषग्मिथ्योपचारैश्च द्विगुणं गोघ्नतं चरेत् ॥ २६ ॥  
 शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलस्य च कर्तने ॥

अक्लिन्नेन च भिन्नेन केवलं शवदूषिते ॥

नीत्वा कूपादहोरात्रं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥

क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् ॥

शुद्धिश्चांद्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमयापि वा ॥ १४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

अंत्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि ॥

तस्य ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वत्यनुग्रहम् ॥ १ ॥

चांद्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ॥

प्राजापत्यं तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥ २ ॥

यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत् ॥

तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शसंसर्गदूषणात् ॥

तेषामेकोपवासेन पंचगव्येन शोधनम् ॥ ४ ॥

बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वायुपीडिता ॥

तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ॥ ५ ॥

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ॥

प्रायश्चित्ताद्धर्महति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ६ ॥

न्यूनैकादशवर्षस्य पंचवर्षाधिकस्य च ॥

चरेद्गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ७ ॥  
 अथैतैः क्रियमाणेषु येषामार्तिः प्रदृश्यते ॥  
 शेषसंपादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ॥ ८ ॥  
 क्षुधाव्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते ॥  
 येन रक्षन्ति वक्तारस्तेषां तत्किल्बिषं भवेत् ॥ ९ ॥  
 पूर्णेपि कालनियमे न शुद्धिर्बाह्यणैर्विना ॥  
 अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥  
 समाप्तामिति नो वाञ्छ्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित् ॥  
 विप्रसंपादनं कर्म उत्पन्ने प्राणसंशये ॥ ११ ॥  
 संपादयन्ति ये विप्राः स्नानं तीर्थफलप्रदम् ॥  
 सम्यक्कर्तुरपायं स्याद्द्विती च फलमाप्नुयात् ॥ १२ ॥  
 इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

चंडालकूपभांडेषु योज्ञानात्पिबते जलम् ॥  
 प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णं वर्णं विधीयते ॥ १ ॥  
 चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥  
 तदर्धं तु चरेद्द्वैश्यः पार्दं शूद्रस्यं दापयेत् ॥ २ ॥  
 भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥  
 प्रमादात्स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्याद्विशोधनम् ॥ ३ ॥



गायत्र्यष्टसहस्रं तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥  
 जपंस्त्रिरात्रमनश्नन्पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥  
 चंडालेन यदा स्पृष्टो विष्मूत्रे कुरुते द्विजः ॥  
 प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्तोच्छिष्टः पडाचरेत् ॥ ५ ॥  
 पाने मैथुनसंपर्के तथा मूत्रपुरीषयोः ॥  
 संपर्के यदि गच्छेत्तु उदक्या चांत्यजैस्तथा ॥  
 एतरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ६ ॥  
 भोजने च त्रिरात्रं स्यात्पाने तु ऽप्यहमेव च ॥  
 मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ७ ॥  
 दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम् ॥  
 एकाहं तत्र निर्दिष्टं दंतधावनभक्षणे ॥ ८ ॥  
 वृक्षारूढे तु चंडाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति ॥  
 फलानि भक्षयंस्तस्य कथं शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥  
 ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥  
 एकरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥  
 येन केनचिदुच्छिष्टोऽप्यमेध्यं स्पृशति द्विजः ॥  
 अहंरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥  
 इत्यावस्तंषीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

चंडालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन ॥  
 अनभ्युक्ष्य पिवेत्तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥  
 ब्राह्मणस्य त्रिरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥  
 क्षत्रियस्य द्विरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥  
 अहोरात्रं तु वैश्यस्य पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥  
 चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ३ ॥  
 व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते ॥  
 पंचगव्यं न दातव्यं तस्य मंत्रविवर्जनात् ॥  
 रूपापयित्वा द्विजानां तु शूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥  
 ब्राह्मणोऽस्य यदोच्छिष्टमश्रात्यज्ञानतो द्विजः ॥  
 अहोरात्रं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥  
 उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुंक्ते ज्ञानाद्विजो यदि ॥  
 शंखपुष्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६ ॥  
 ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ॥  
 न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः ॥ ७ ॥  
 उच्छिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात्स्पृशतेऽपि वा ॥  
 प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानंगिराब्रवीत् ॥ ८ ॥  
 अंत्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥

चांद्रायणं तदर्धार्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥ ९ ॥  
 विष्णूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥  
 श्वकाकोच्छिष्टगोभिश्च प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥ १० ॥  
 उच्छिष्टं स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः ॥  
 शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभांडं तथैव च ॥ ११ ॥  
 पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यद्यमेध्यं कदाचन ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥  
 वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥  
 स्नानं जप्यं च त्रैकाल्यं दिनस्याति विशुद्ध्यति ॥ १३ ॥  
 विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥  
 स्नानांते च विशुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः १४ ॥  
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामिः नीलीवस्त्रस्य यो विधिः ॥  
 स्त्रीणां क्रीडार्थसंभोगे शयनीयेन दुप्यति ॥ १ ॥  
 पालने विक्रये चैव तद्गृत्तेरुपजीवने ॥  
 पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥  
 स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥  
 पंचयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्यै धारणात् ॥ ३ ॥

नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽङ्गेषु धारयेत् ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥  
 रामेकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कर्हिचित् ॥  
 पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥  
 नीलीदारु यदा भिंद्याद्ब्राह्मणस्य शरीरकम् ॥  
 शोणितं दृश्यते तत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ६ ॥  
 नीलीमध्ये यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥  
 नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ॥  
 अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्त्या चांद्रायणं चरेत् ॥ ८ ॥  
 भक्षयेद्यश्च नीलीं तु प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् ॥  
 चांद्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तंबोऽत्रवीन्मुनिः ॥ ९ ॥  
 यावत्यां वापिता नीली तावती वायुचिर्मही ॥  
 प्रमाणं द्वादशाब्दानि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥ १० ॥  
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्येहनि शस्यते ॥  
 वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथंचन ॥ १ ॥

रोगेण यद्वजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥  
 अशुद्धास्तास्तु नैवेह तासां वैकारिको भदः ॥ २ ॥  
 साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते ॥  
 वृत्ते रजासि साध्वी स्याद्बृहकर्मणि चैन्द्रिये ॥ ३ ॥  
 प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥  
 तृतीये रजको प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥ ४ ॥  
 अंत्यजातिश्चपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ॥  
 अहानि तान्पतिकस्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥  
 त्रिरात्रमुपवासः स्यात्पंचगव्यं विशोधनम् ॥  
 निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकरां च कामयेत् ॥ ६ ॥  
 रजस्वलांत्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचेन च ॥  
 त्रिरात्रोपोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥  
 प्रथमेहनि षड्रात्रं द्वितीये तुं ज्यहस्तथा ॥  
 तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥ ८ ॥  
 विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा ॥  
 रजस्वला भवेत्कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत् ॥ ९ ॥  
 स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रिरलंकृताम् ॥  
 पुनर्मध्याह्निं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥ १० ॥  
 रजस्वला तु संस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसैः ॥  
 सा त्रिरात्रोपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

रजस्वला तु या नारी अन्योन्यं स्पृशते यदि ॥  
 तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥  
 उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥  
 कृच्छ्रेण शुद्ध्यते विप्रा शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥  
 एकशाखां समारूढश्चंडालो वा रजस्वला ॥  
 ब्राह्मणश्च समं तत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १४ ॥  
 रजस्वलायाः संस्पर्शः कथंचिज्जायते शुना ॥  
 रजोदिनानां यच्छेषं तदुपोष्य विशुद्ध्यति ॥ १५ ॥  
 अशक्ता चोपवासेन स्नानं पश्चात्समाचरेत् ॥  
 तथाप्यशक्ता चैकेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥  
 उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम् ॥  
 मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत्कृच्छ्रं तदर्धं तु रजस्वलाम् ॥ १७ ॥  
 उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ॥  
 कृच्छ्राद्धं तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ १८ ॥  
 चंडालः श्वपचो वापि आत्रेयीं स्पृशते यदि ॥  
 शोषाद्वा फालकृष्टेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥  
 उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि ॥  
 अहोरात्रोपिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २० ॥  
 एवं तु क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणी चेद्रजस्वला ॥  
 सचैलं घृवनं कृत्वा दिनस्यांते घृतं पिबेत् ॥ २१ ॥

सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ॥

एवमेव विशद्विः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २२ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

### अष्टमोऽध्यायः ८.

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यत्र लिप्यते ॥

सुराविष्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्ध्यते तापलेखनैः ॥ १ ॥

गवाग्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥

दश भस्मानि शुद्ध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ॥ २ ॥

शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूर्येदुरश्मिभिः ॥

रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं तु प्रदुष्यति ॥

अद्विर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

शुष्कमन्नमवेद्यस्य पंचरात्रेण जीर्यति ॥

अन्नं व्यंजनसंपुक्तमर्द्धमासेन जीर्यति ॥ ४ ॥

पयस्तु दधि मासेन षण्मासेन घृतं तथा ॥

संवत्सरेण तैलं तु कोष्ठे जीर्यति वा नवा ॥ ५ ॥

भुंजते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥

इह जन्मनि शूद्रत्वं जायंते ते मृताः शुनिः ॥ ६ ॥

शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ॥

शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ७ ॥

आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते ॥  
 तथा तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽभ्यः ॥ ८ ॥  
 शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योधिगच्छति ॥  
 यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य संभवः ॥ ९ ॥  
 शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥  
 स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ १० ॥  
 ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ॥  
 वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥ ११ ॥  
 अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम् ॥  
 वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ १२ ॥  
 वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥  
 अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ १३ ॥  
 व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छलवर्जितम् ॥  
 क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम् ॥ १४ ॥  
 स्वकर्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्यशक्तिः ॥  
 खल्यज्ञातिधित्वेन वैश्यान्नं तेन संस्कृतम् ॥ १५ ॥  
 अज्ञानतिमिरांधस्य मद्यपानरतस्य च ॥  
 रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमन्त्रविवर्जितम् ॥ १६ ॥  
 आममांसं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ॥  
 गुडस्तक्रं रसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥ १७ ॥



। शाकं मांसं मृणालानि तुंबुरुः सक्तवस्तिलाः ॥  
 । रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः ॥ १८ ॥  
 आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ॥  
 मनस्तापेन शुद्धयेत् द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ १९ ॥  
 द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित् ॥  
 तद्विजेन न भोक्तव्यमापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २० ॥  
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

### नवमोऽध्यायः ९.

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्त्वचते शुद्धम् ॥  
 उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥  
 पूर्वं शौचं तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत् ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥  
 अशित्वा सर्वमेवान्नमकृत्वा शौचमात्मनः ॥  
 मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥  
 प्रसृतं यवसस्येन पलमेकं तु सर्पिषा ॥  
 पलानि पञ्च गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥ ४ ॥  
 अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे ॥  
 रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ५ ॥  
 पद्मोदुंबरविल्वाश्च कुशाश्च सपलाशकाः ॥

एतेषामुदकं पीत्वा पद्मरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ ६ ॥

ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्यामिजलादिषु ॥

अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षिताः ॥ ७ ॥

चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि वा ॥

जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनः संस्कारभागिनः ॥

तेषां सातपनं कृच्छ्रं चांद्रायणमथापि वा ॥ ८ ॥

द्वेष्टितं काकबलाकयोर्वा अमेध्यलिप्तं च भवेच्छरीरम् ॥

त्रे मुखे च प्रविशेच्च सम्यक्ज्ञानेन लेपोपहतस्य शुद्धिः ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वं नाभेः करौ मुक्ता यदंगमुपहन्यते ॥

ऊर्ध्वं ज्ञानमधः शौचमात्रेणैव विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते सुखम् ॥

मृत्तिकाशोधनं ज्ञानं पंचगव्यं विशोधनम् ॥ ११ ॥

दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ॥

पद्मभिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविदूशूद्रयोनिषु ॥ १२ ॥

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम् ॥

अपीतवत्समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥ १३ ॥

अत्रे भोजनसंपन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ॥

अनंतरं स्पृशेदापस्तब्धान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥ १४ ॥

शुष्कमांसमयं चान्नं शूद्रान्नं वाप्यकामतः ॥

मुक्ता कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात्कृच्छ्रप्रयं चरेत् ॥ १५ ॥

अभुक्तो मुच्यते यश्च भुक्तो यश्चापि मुच्यते ॥  
 भोक्ता च मोचकश्चैव पश्चाद्धरति दुष्कृतम् ॥ १६ ॥  
 यस्तु भुञ्जति भुक्तं वा दुष्टं वापि विशेषतः ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥  
 उदके चोदकस्थस्तु स्थलस्थश्च स्थले शुचिः ॥  
 पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्योभयतः शुचिः ॥ १८ ॥  
 उत्तीर्याचामेदुदकादवतीर्य उपस्पृशेत् ॥  
 एवं तु श्रेयसा युक्तो वरुणेनाभिषृज्यते ॥ १९ ॥  
 अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥  
 स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥ २० ॥  
 जन्मप्रभृति संस्कारे श्मशानांते च भोजनम् ॥  
 असपिंडेर्न कर्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥ २१ ॥  
 याजकान्नं नवश्राद्धं संग्रहे चैव भोजनम् ॥  
 स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्ता चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥  
 ब्रह्मौदनेवसाने च सीमंतोन्नयने तथा ॥  
 अन्नश्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्ता चांद्रायणं चरेत् ॥ २३ ॥  
 अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्रियादेव तद्गृहे ॥  
 अथ भुञ्जीत मोहाद्यः पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ २४ ॥  
 अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ॥  
 रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मन्त्रमश्नुते ॥ २५ ॥

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवंति बांधवाः ॥  
 स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यांत्यधोगतिम् ॥ २६ ॥  
 राजान्नमोज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥  
 असंस्कृतं तु यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ २७ ॥  
 मृतके सूतके चैव ग्रहणे शशिभास्करे ॥  
 हस्तिच्छायां तु यो भुंक्ते स पापः पुरुषो भवेत् ॥ २८ ॥  
 पुनर्भूः पुनरेता च रेतोधाः कामचारिणी ॥  
 आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २९ ॥  
 मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥  
 विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ३० ॥  
 रजकव्याधशैलूपवेणुचर्मोपजीविनः ॥  
 भुक्तेषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चांद्रायणेन तु ॥ ३१ ॥  
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते ॥  
 सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचिर्भवेत् ॥ ३२ ॥  
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥  
 उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३३ ॥  
 ब्राह्मणस्य सदा कालं शूद्रे प्रेषणकारिणि ॥  
 भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥ ३४ ॥  
 अनुदकेष्वरण्येषु चोरव्याघ्राकुले पथि ॥  
 कृत्वा सूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः ॥ ३५ ॥

भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्हतः ॥  
 उत्संगे गृह्य पक्वान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ॥ ३६ ॥  
 मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ॥ ॥  
 मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु गन्धं पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३७ ॥  
 । उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ॥  
 चांद्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ ३८ ॥  
 भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥  
 प्रमादाद्यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ ३९ ॥  
 स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः ॥  
 स त्रिरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४० ॥  
 चंडालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिवति द्विजः ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा त्रिषवणेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥  
 सायंप्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्यतं विदुः ॥  
 सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥ ४२ ॥  
 दिनद्वयं च नाश्नीयात्कृच्छ्राद्धं तद्विधीयते ॥  
 प्रायश्चित्तं लघुष्वेतत्पापेषु तु यथार्हतः ॥ ४३ ॥  
 कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानां च विक्रयी ॥  
 प्रेतनिर्यातकश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

आचांतोप्यशुचिस्तावद्यावन्नोद्ध्रियते जलम् ॥

उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावद्भूमिर्न लिप्यते ॥ १ ॥

भूमावपि च लिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् ॥

आसनादुत्थितस्तस्माद्यावन्नाक्रमते महीम् ॥ २ ॥

न यमं यममित्यादुरात्मा वै यम उच्यते ॥

आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ॥ ३ ॥

न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ॥

यथा क्रोधो हि जंतूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥

क्षमा गुणो हि जंतूनामिहामुत्र सुखप्रदः ॥

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ॥

यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ५ ॥

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ॥

न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥ ६ ॥

एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवेत्प्रीतिनिवर्तकस्य ॥

अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यग्मोक्षो भवेन्नित्यमर्हिसकस्य ॥ ७ ॥

क्रोधयुक्तो यद्यजते यज्जुहोति यदर्चति ॥

सर्वं हरति तत्तस्य आमकुंभ इवोदकम् ॥ ८ ॥

अपमानात्तपोवृद्धिः संमानात्तपसः क्षयः ॥

अर्चितः प्रजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति ॥ ९ ॥

आप्यायते यथा धेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥

एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ॥ १० ॥

मातृवत्परदारोश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥

आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥ ११ ॥

रजकव्याधशैलूपवेषुचर्मोपजीविनाम् ॥

यो भुङ्क्ते भुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ १२ ॥

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥

शुद्धिं चांद्रायणं कृत्वा अथवान्ते तथैव च ॥ १३ ॥

अमिहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत् ॥

तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चांद्रायणादृते ॥ १४ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु भंतरा मृतसूतके ॥

सद्यः शुद्धिं विजानीयात्पूर्वसंकल्पितं च यत् ॥ १५ ॥

देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु मृततेषु च ॥

कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशीचं मृतसूतके ॥ १६ ॥

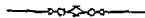
इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

आपस्तंबस्मृतिः समाप्ता ७.

॥ श्रीः ॥

## अथ संवर्त्तस्मृतिः ८.

प्रथमोऽध्यायः १.



संवर्त्तमेकमासीनं सर्ववेदांगपारगम् ॥  
ऋषयरतमुपागम्य पप्रच्छुर्धर्मकांक्षिणः ॥ १ ॥  
भगवच्छ्रोतुमिच्छामो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥  
यथावद्धर्ममाचक्ष्व शुभाशुभविवेचनम् ॥ २ ॥  
वामदेवादयः सर्वे तं पृच्छन्ति महौजसम् ॥  
तानब्रवीन्मुनीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ३ ॥  
स्वभावाद्विचरेद्यत्र कृष्णसारः सदा मृगः ॥  
धर्मदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥ ४ ॥  
उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत् ॥  
स्रग्गंधमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥ ५ ॥  
संध्यां प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥  
सादित्यां पश्चिमां संध्यामर्द्धास्तमितभास्करे ॥ ६ ॥  
तिष्ठन्पूर्वं जपं कुर्यात्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥  
आसीनः पश्चिमां संध्यां सम्यगृक्षविभावेनात् ॥ ७ ॥



अमिकार्यं च कुर्वीत मेधावी तदनंतरम् ॥  
 ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ८ ॥  
 मणवं प्राक् प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ॥  
 गायत्रीं चानुष्वयेण ततो वेदं समारभेत् ॥ ९ ॥  
 हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरि स्थितौ ॥  
 गुरोरनुमतं कुर्यात्पठन्नान्यमतिर्भवेत् ॥ १० ॥  
 सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ॥  
 निवेद्य गुरवेऽश्नीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ ११ ॥  
 सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् ॥  
 नांतरा भोजनं कुर्यादमिहोत्री समाहितः ॥ १२ ॥  
 आचम्यैव तु भुंजीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद्विजः ॥  
 अनाचांतस्तु योऽश्नीयात्प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥ १३ ॥  
 अनाचांतः पिबेद्यस्तु योऽपि वा भक्षयेद्विजः ॥  
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कुर्वन्विशुद्ध्यति ॥ १४ ॥  
 अकृत्वा पादशौचं तु तिष्ठन्मुक्तशिखोऽपि वा ॥  
 विना यज्ञोपवीतेन त्वाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५ ॥  
 आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन चोपवीती सुदृढः सुखः ॥  
 उपवीती द्विजो नित्यं प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ १६ ॥  
 जले जलस्थश्चाचांतः स्थलाचांतो वहिः शुचिः ॥  
 बहिरंतःस्थ आचांत एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥

अमाणिबंधाद्धस्तौ च पादाषट्त्रिंशोधयेत् ॥  
 परिमृज्य द्विरास्यं तु द्वादशांगानि च स्पृशेत् ॥ १८ ॥  
 स्नात्वा पीत्वा तथा क्षुत्वा भुक्त्वा स्पृष्ट्वा द्विजोत्तमः ॥  
 अनेन विधिना सम्यगाचांतः शुचितामियात् ॥ १९ ॥  
 शूद्रः शुद्ध्यति हस्तेन वैश्यो दंतैः पुरारिभिः ॥  
 कंठागतैः क्षत्रियस्तु आचांतः शुचितामियात् ॥ २० ॥  
 आसनारूढपादस्तु कृतावसविथकस्तथा ॥  
 आरूढपादुको वापि न शुद्ध्यति कदाचन ॥ २१ ॥  
 उपासीत न चेत्संध्यामभिकार्यं न वा कृतम् ॥  
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ २२ ॥  
 सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ॥  
 ब्रह्मचारी तु योऽग्नीपात्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३ ॥  
 ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्स्त्रियं कामप्रपीडितः ॥  
 प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमथ त्वेकं सुयंत्रितः ॥ २४ ॥  
 ब्रह्मचारी तु योऽग्नीयान्मधु मांसं कथंचन ॥  
 प्राजापत्यं तु कृत्वासी मौंजी होमेन शुद्ध्यति ॥ २५ ॥  
 निर्वपेत्तु पुरोडाशं ब्रह्मचारी तु पर्वणि ॥  
 मंत्रैः शाकलहोमांगैरमावाज्यं च होमयेत् ॥ २६ ॥  
 ब्रह्मचारी तु यः स्कंदत्कामतः शुक्रमात्मनः ॥  
 अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्ध्येदकामतः ॥ २७ ॥

अभिकार्यं च कुर्यात् मेधावी तदनंतरम् ॥  
 ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ८  
 मणवं प्राक् प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ॥  
 गायत्रीं चानुषूय्येण ततो वेदं समारभेत् ॥ ९ ॥  
 हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरि स्थितौ ॥  
 गुरोरनुमतं कुर्यात्पठन्नान्यमतिर्भवेत् ॥ १० ॥  
 सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ॥  
 निवेद्य गुरवेऽग्नीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ ११  
 सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् ॥  
 नांतरा भोजनं कुर्यादमिहोत्री समाहितः ॥ १२  
 आचम्यैव तु भुंजीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद्विजः ॥  
 अनाचांतस्तु योऽग्नीयात्प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥ १३  
 अनाचांतः पिबेद्यस्तु योऽपि वा भक्षयेद्विजः ॥  
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कुर्वन्विशुद्ध्यति ॥ १४ ॥  
 अकृत्वा पादशौचं तु तिष्ठन्मुक्तशिखोऽपि वा ॥  
 विना यज्ञोपवीतेन त्वाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५  
 आचामेद्रहस्यतीर्थेन चोपवीती सुदृढः सुखः ॥  
 उपवीती द्विजो नित्यं प्राङ्मुखो वाग्यतः ॥ १६  
 जले जलस्थश्चाचांतः स्थलाचांतो वहिः शुचिः  
 बहिरंतः स्थ आचांत एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १७

शुद्धः शुद्धयति मासेन संवर्त्तवचनं यथा ॥  
 प्रेतायान्नं जलं देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ ३८ ॥  
 प्रथमेहि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ॥  
 चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः ॥ ३९ ॥  
 ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥  
 चतुर्थेऽहनि विप्रस्य पष्ठे वैक्षत्रियस्य च ॥ ४० ॥  
 अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः ॥  
 जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव महर्षिभिः ॥ ४१ ॥  
 दशरात्रेण शुद्धयेत विप्रो वेदविवर्जितः ॥  
 जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ॥ ४२ ॥  
 माता शुद्धयेदशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥  
 होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कात्रेण फलेन वा ॥ ४३ ॥  
 पंचयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ॥  
 दशाहात्तु परं सम्यग्विप्रोऽधीयीत धर्मावित् ॥ ४४ ॥  
 दानं तु विविधं देयमशुभानां विनाशनम् ॥  
 यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं भवेत् ॥ ४५ ॥  
 तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥  
 नानाविधानि द्रव्याणि धान्यानि सुवहूनि च ॥ ४६ ॥  
 समुद्रे यानि रत्नानि नरो विगतकल्मषः ॥  
 दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

गंधमाभरणं माल्यं यः प्रयच्छति धर्मवित् ॥  
 स सुगंधः सदा हृष्टो यत्र तत्रोपजायते ॥ ४८ ॥  
 श्रोत्रियाय कुलीनायाभ्यर्थिने हि विशेषतः ॥  
 यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥ ४९ ॥  
 आहूय शीलसंपन्नं श्रुतेनाभिजनेन च ॥  
 शुचिं विभं महामाज्ञं हव्यकव्यैस्तु पूजयेत् ॥ ५० ॥  
 नानाविधानि द्रव्याणि रसवंतीप्सितानि च ॥  
 श्रेयस्कामेन देयानि तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ५१ ॥  
 वस्त्रदाता सुखेषः स्याद्रूप्यदो रूपमेव च ॥  
 हिरण्यदः समृद्धिं च तेजश्चायुश्च विंदति ॥ ५२ ॥  
 भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामावनाप्नुयात् ॥  
 दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव सदा भवेत् ॥ ५३ ॥  
 धान्योदकप्रदायी च सर्पिर्दः सुखमेधते ॥  
 अलंकृतस्त्वलंकारं दाताप्नोति महत्फलम् ॥ ५४ ॥  
 फलमूलानि विप्राय शाकानि विविधानि च ॥  
 सुरभीणि च पुष्पाणि दत्त्वा प्राज्ञस्तु जायते ॥ ५५ ॥  
 तान्मूलं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ॥  
 मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥ ५६ ॥  
 पादुकापानहो छत्रं शयनान्यासनानि च ॥  
 विविधानि च यानानि दत्त्वा द्रव्यपतिर्भवेत् ॥ ५७ ॥

दद्याद्यः शिशिरे वह्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः ॥  
 कायामिदीतिं प्राज्ञत्वं रूपं सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥  
 औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगशान्तये ॥  
 दत्त्वा स्याद्भोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥ ५९ ॥  
 इधनानि च यो दद्याद्विभ्रेभ्यः शिशिरागमे ॥  
 नित्यं जयति संग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीव्यते ॥ ६० ॥  
 अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै ॥  
 ब्राह्मेण तु विवाहेन दद्यात्तां तु सुष्ठुजिताम् ॥ ६१ ॥  
 स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विंदति पुष्कलम् ॥  
 साधुवादं स वै सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ६२ ॥  
 ज्योतिष्ठोमातिरात्राणां शतं शतगुणीकृतम् ॥  
 प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममंत्रैश्च संस्कृताम् ॥ ६३ ॥  
 तां दत्त्वा तु पिता कन्यां भूषणाच्छादनाशनेः ॥  
 पूजयन्स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु ॥ ६४ ॥  
 रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुंक्तेऽथ कन्यकाम् ॥  
 रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वाः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः ॥ ६५ ॥  
 अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥  
 दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥  
 माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥  
 त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ६७ ॥

- तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ॥  
 विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥  
 तैलामलकदांता च स्नानाभ्यंगप्रदायकः ॥  
 नरः प्रहृष्टश्चासीत् सुभगश्चोपजायते ॥ ६९ ॥  
 अनङ्गहो तु यो दद्याद्विजे सीरेण संयुतो ॥  
 अलंकृत्य यथाशक्ति धूर्वहो शुभलक्षणो ॥ ७० ॥  
 सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ॥  
 वर्षाणि वसते स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥ ७१ ॥  
 धेनुं च यो द्विजे दद्यादलंकृत्य पयस्विनीम् ॥  
 कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥ ७२ ॥  
 भूमिं सस्यवर्ती श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे ॥  
 गां दत्त्वार्द्धप्रसूतां च स्वर्गलोके महीयते ॥ ७३ ॥  
 यावन्ति सस्यमूलानि गोरोमाणि च सर्वशः ॥  
 नरस्तावन्ति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७४ ॥  
 यो ददाति शफे रोप्यैर्हमश्रुंगीमरोगिणीम् ॥  
 सवत्सां वाससा वीतां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥ ७५ ॥  
 तस्यां यायन्ति रोमाणि सवत्सायां दिवं गतः ॥  
 तावन्ति वत्सरांतानि स नरो ब्रह्मणोतिके ॥ ७६ ॥  
 यो ददाति वलीवर्दमुक्तेन विधिना शुभम् ॥  
 अव्यंगगोप्रदानेन दत्तं दशगुणं फलम् ॥ ७७ ॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वेण्णवीसूर्यसुताश्च गावः ॥  
 लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात्  
 सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥  
 हाटकक्षितिगौराणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ७९ ॥  
 अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निभृतः सदा ॥  
 अंबुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥ ८० ॥  
 सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ॥  
 सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥ ८१ ॥  
 यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पेकल्पेऽसृजत्प्रभुः ॥  
 तस्मादन्नात्परं दानं विद्यते न हि किञ्चन ॥  
 अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न संशयः ॥ ८२ ॥  
 मृत्तिकागोशकृद्भानुपवीतं तथोत्तरम् ॥  
 दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते ॥ ८३ ॥  
 मुखवासं तु यो दद्यादंतधावनमेव च ॥  
 शुचिगंधसमायुक्तो अवाग्दुष्टस्सदा भवेत् ॥ ८४ ॥  
 पादशौचं तु यो दद्यात्तथा तु गुदालिंगयोः ॥  
 यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धशुद्धिः सदा भवेत् ॥ ८५ ॥  
 औषधं पथ्यमाहारं स्नेहाभ्यंगं प्रतिश्रयम् ॥  
 यः प्रयच्छति रोगिभ्यः स भवेद्याधिवर्जितः ॥ ८६ ॥  
 गुडमिक्षुरसं चैव लवणं व्यंजनानि च ॥



सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यंतं सुखी भवेत् ॥ ८७ ॥  
 दानैश्च विविधैः सम्यक्फलमेतदुदाहृतम् ॥  
 विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८८ ॥  
 अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः ॥  
 अन्योन्यं प्रतिगृह्णन्ति तारयन्ति तरन्ति च ॥ ८९ ॥  
 दानान्येतानि देयानि तथान्यानि विशेषतः ॥  
 दानार्द्धं कृपणार्थिभ्यः श्रेयस्कामेन धीमता ॥ ९० ॥  
 ब्रह्मचारियतिभ्यस्तु वपनं यस्तु कारयेत् ॥  
 नखकर्मादिकं चैव चक्षुष्माञ्जायते नरः ॥ ९१ ॥  
 देवागारे द्विजातीनां दीपं दद्याच्चतुष्पथे ॥  
 मेधावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्मान्स सदा भवेत् ॥ ९२ ॥  
 नित्ये नैमित्तिके काम्ये तिलान्दत्त्वा स्वशक्तितः ॥  
 प्रजावान्पशुमांश्चैव धनवाञ्जायते नरः ॥ ९३ ॥  
 यो यदाभ्यर्थितो विप्रैर्यद्यत्संप्रतिपादयेत् ॥  
 तृणकाष्ठादिकं चैव गोप्रदानसमं भवेत् ॥ ९४ ॥  
 न वै शयीत तमसा न यज्ञे नानृतं वदेत् ॥  
 अपवदेन्न विप्रस्य न दानं परिकीर्तयेत् ॥ ९५ ॥  
 यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥  
 आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥ ९६ ॥  
 चत्वार्येतानि कर्माणि संध्यायां वर्जयेद्बुधः ॥

आहारं मैथुनं निद्रां तथा संपाठमेव च ॥ ९७ ॥  
 आहाराजायते व्याधिर्गर्भो वै रौद्र मैथुनात् ॥  
 निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः संपाठादायुषः क्षयः ॥ ९८ ॥  
 ऋतुमर्ता तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति ॥  
 तस्या रजसि तं मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ ९९ ॥  
 कृत्वा गृह्याणि कर्माणि स्वभार्यापोषणे रतः ॥  
 ऋतुकालाभिगामी च प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १०० ॥  
 उपित्वैवं गृहे विप्रो द्वितीयादाश्रमात्परम् ॥  
 वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयं तु समाश्रयेत् ॥ १०१ ॥  
 वनं गच्छेत्ततः प्राज्ञः सभार्यस्त्वेक एव वा ॥  
 गृहीत्वा चामिहोत्रं च होमं तत्र न हापयेत् ॥ १०२ ॥  
 कृत्वा चैव पुरोडाशं वन्यैर्मध्यैर्यथाविधि ॥  
 भिक्षां च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः ॥ १०३ ॥  
 कुर्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः ॥  
 इष्टिं पार्वीयणीयां तु प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु ॥ १०४ ॥  
 उपित्वैवं वने विप्रो विधिज्ञः सर्वकर्मसु ॥  
 चतुर्थमाश्रमं गच्छेज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ १०५ ॥  
 अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ॥  
 वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥ १०६ ॥  
 अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पंचवा ॥

अद्रिः प्रक्षाल्य ताः सर्वा भुञ्जीत सुसमाहितः ॥ १०७ ॥  
 अरण्ये निर्जने तत्र पुनरासीत मुक्तवत् ॥  
 एकाकी चिंतयेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ १०८ ॥  
 मृत्युं च नाभिनन्देत् जीवितं वा कथंचन ॥  
 कालमेव प्रतीक्षेत् यावदायुः समाप्यते ॥ १०९ ॥  
 संसेव्य चाश्रमान्सर्वाञ्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥  
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थविद्विजः ॥ ११० ॥  
 आश्रमेषु च सर्वेषु प्रोक्तोऽयं प्राश्निको विधिः ॥  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १११ ॥  
 ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥  
 महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पंचमः ॥ ११२ ॥  
 ब्रह्मघ्नश्च वनं गच्छेद्बल्कवासाजटी ध्वजी ॥  
 वन्यान्पेव फलान्यश्वत्थसर्वकामविवर्जितः ॥ ११३ ॥  
 भिक्षार्थी विच्छेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ॥  
 चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्ष्यं बद्धांगी संयतः सदा ॥ ११४ ॥  
 भिक्षास्त्वेवं समादाय वनं गच्छेत्ततः पुनः ॥  
 वनवासी स पापः स्यात्सदाकालमतन्द्रितः ॥ ११५ ॥  
 ख्यापयन्मुच्यते पापाद्ब्रह्महा पापकृत्तमः ॥  
 अनेन तु विधानेन द्वादशाब्दव्रतं चरेत् ॥ ११६ ॥  
 सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वभूताहिते रतः ॥

ब्रह्महत्यापनोदाय ततो मुच्येत किल्बिषात् ॥११७॥

अतः परं सुरापस्य निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥

गौडी माध्वा च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥११८॥

यथैवेका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥

सुरापस्तु सुरां तप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः ॥ ११९ ॥

गोमूत्रममिवर्णं वा गोमयं वा तथाविधम् ॥

घृतं वा त्रीणि पेयानि सुरापो व्रतमाचरेत् ॥१२०॥

मुच्यते तेन पापेन प्रायश्चित्ते कृते सति ॥

अरण्ये वा वसेत्सम्यक्सर्वकामविवर्जितः ॥ १२१ ॥

चांद्रायणानि वा त्रीणि सुरापव्रतमाचरेत् ॥

एवं शुद्धिः सुरापस्य भवदिति न संशयः ॥ १२२ ॥

मद्यभांडोदकं पीत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य स्तेयं राज्ञे निवेदयेत् ॥ १२३ ॥

ततो मुशलमादाय स्तेनं हन्यात्सकृन्नृपः ॥

यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ॥ १२४ ॥

अरण्ये चीरवासा वा चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥

एवं शुद्धिः कृता स्तेये संवर्तवचनं यथा ॥ १२५ ॥

गुरुतल्पे शयानस्तु तप्ते स्वप्यादयोमये ॥

समालिंगेत्स्त्रियं वापि दीप्तां काष्ण्यायसीं कृताम् ॥१२६॥

चांद्रायणानि कुर्याच्च चत्वारि त्रीणि वा द्विजः ॥

मुच्यते च ततः पापात्प्रायश्चित्ते कृते सति ॥ १२७ ॥  
 एभिः संपर्कमायाति यः कश्चित्पापमोहितः ॥  
 तत्तत्पापविशुद्ध्यर्थं तस्य तस्य व्रतं चरेत् ॥ १२८ ॥  
 क्षत्रियस्य वधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥  
 कुर्याच्चैवानुरूपेण ग्रीणि कृच्छ्राणि संयतः ॥ १२९ ॥  
 वैश्यहत्यां तु संप्राप्तः कथंचित्काममोहितः ॥  
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत स नरो वैश्यघातकः ॥ १३० ॥  
 कुर्याच्छूद्रवधे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं यथाविधि ॥  
 एवं शुद्धिमवाप्नोति संवर्त्तवचनं यथा ॥ १३१ ॥  
 गोघ्नस्यातः प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं तत्त्वतः शुभाम् ॥ १३२ ॥  
 गोघ्नः कुर्वीतसंस्कारं गोष्ठे गोरूपसन्निधौ ॥  
 तत्रैव क्षितिशापी स्यान्मासार्द्धं संयतेंद्रियः ॥ १३३ ॥  
 ज्ञानं त्रिपवणं कुर्यान्नखलोमविवर्जितः ॥  
 सक्तुपावकभिक्षाशी पयो दाधि शकृन्नरः ॥ १३४ ॥  
 एतानि क्रमशोऽश्नीयाद्विजस्तत्पापमोक्षकः ॥  
 गायत्रीं च जपेन्नित्यं पावित्राणि च शक्तितः ॥ १३५ ॥  
 पूर्णं चैवार्द्धमासे च स विप्रान्भोज येद्विजः ॥  
 भुक्तवत्सु च विमेषु गां च दद्याद्विचक्षणः ॥ १३६ ॥  
 व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेऽपि वा ॥  
 भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ १३७ ॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्देवाद्यापादिता क्वचित् ॥  
 पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ १३८ ॥  
 यंत्रणे गोश्रिकित्सार्ये मूढगर्भविमोचने ॥  
 यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥ १३९ ॥  
 औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥  
 दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम् ॥ १४० ॥  
 प्रायश्चित्तस्य पापं तु रोधेषु व्रतमाचरेत् ॥  
 द्वौ पादौ बंधने चैव पादोनं यंत्रणे तथा ॥ १४१ ॥  
 पापाणैर्लगुडैर्दंडैस्तथा शस्त्रादिभिर्नरः ॥  
 निपातने चरेत्सर्वं प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ १४२ ॥  
 हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकर्पास्तथा ॥  
 एषां वधे द्विजः कुर्यात्सप्तरात्रमभोजनम् ॥ १४३ ॥  
 व्याघ्रं श्वानं खरं सिंहमृक्षं सूकरमेव च ॥  
 एतान्हत्वा द्विजो मोहात्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १४४ ॥  
 सर्वासांमेव जातीनां मृगाणां वनचारिणाम् ॥  
 अहोरात्रोपितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४५ ॥  
 हंसं काकं बलाकां च बर्हिकारंडवावपि ॥  
 सारसं चापभासौ च हत्वा त्रिदिवसं क्षिपेत् ॥ १४६ ॥  
 चक्रवाकं तथा कौचं सारिकाशुकतित्तिरीन् ॥  
 श्येनगृध्रानुलूकांश्च पारावतमथापि वा ॥ १४७ ॥

टिट्ठिभं जालपादं च कोकिलं कुक्कुटं तथा ॥  
 एषां वधे नरः कुर्यादेकरात्रभोजनम् ॥ १४८ ॥  
 पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां हंसादीनामशेषतः ॥  
 अहोरात्रोपितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४९ ॥  
 मंडूकं चैव हत्वा च सर्पमार्जारस्मूषकान् ॥  
 त्रिरात्रोपोपितस्तिष्ठेत्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ १५० ॥  
 मनस्वो ब्राह्मणो हत्वा प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥  
 अस्थिमतां वधे विप्रः किञ्चिद्दद्याद्विचक्षणः ॥ १५१ ॥  
 यश्चण्डालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥  
 त्रिभिः कृच्छ्रेस्तु शुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वकैः ॥ १५२ ॥  
 पुंश्चलीगमनं कृत्वा कामतोऽकामतोऽपि वा ॥  
 कृच्छ्रचांद्रायणे तस्य पावनं परमं स्मृतम् ॥ १५३ ॥  
 शैलूषीं रजर्कां चैव वेणुचर्मोपजीविनीम् ॥  
 एतां गत्वा द्विजो मोहाच्चेरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ १५४ ॥  
 क्षत्रियामथ वैश्यां वा गच्छेद्यः काममोहितः ॥  
 तस्य सांतपनः कृच्छ्रो भवेत्पापापनोदनः ॥ १५५ ॥  
 शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्द्धमेव वा ॥  
 गोमूत्रपावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १५६ ॥  
 विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥  
 स्वजनां तु द्विजो गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५७ ॥

- क्षत्रियां क्षत्रियो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत् ॥  
 नरो गौगमनं कृत्वा कुर्याच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १५८ ॥  
 मातुलानीं तथा श्वश्रूं सुतां वै मातुलस्य च ॥  
 एता गत्वा स्त्रियो मोहात्पराकेण विशुद्ध्यति ॥ १५९ ॥  
 गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च ॥  
 तस्या दुहितरं चैव चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १६० ॥  
 पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्यागमे तथा ॥  
 गुरुतल्पव्रतं कुर्यान्निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥ १६१ ॥  
 पितृभार्या समारुह्य मातृवर्जा नराधमः ॥  
 भगिनीं मातुरातां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ॥ १६२ ॥  
 एतास्तिस्रः स्त्रियोगत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥  
 कुमारीगमने चैव व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ १६३ ॥  
 पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥  
 सखिभार्या समारुह्य श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ॥ १६४ ॥  
 मातरं योधिगच्छेच्च स्वसारं पुरुषाधमः ॥  
 न तस्य निष्कृतिर्गच्छेत्स्वां चैव तनुजां तथा ॥ १६५ ॥  
 नियमस्थां व्रतस्यां वा योभिगच्छेत्स्त्रियं द्विजः ॥  
 स कुर्यात्प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ १६६ ॥  
 रजस्वलां तु यो गच्छेद्गर्भिणीं पतितां तथा ॥  
 तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रो विधीयते ॥ १६७ ॥



वैश्यजां ब्राह्मणो गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ॥  
 एवं शुद्धिः समाख्याता संवर्तस्य वचो यथा ॥ १६८ ॥  
 कथंचिद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च ॥  
 गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १६९ ॥  
 शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कदाचित्काममोहितः ॥  
 गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १७० ॥  
 ब्राह्मणीशूद्रसंपर्के कदाचित्समुपागते ॥  
 कृच्छ्रचांद्रायणं तस्याः पावनं परमं स्मृतम् ॥ १७१ ॥  
 चण्डालं पुल्कसं चैव श्वपाकं पतितं तथा ॥  
 एताञ्छ्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्युश्चांद्रायणत्रयम् ॥ १७२ ॥  
 अतः परं प्रदुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥  
 संन्यस्य दुर्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ॥ १७३ ॥  
 कुर्यात्कृच्छ्रं समानं तत्पण्मासास्तदनंतरम् ॥  
 विषामिश्रयामश्वलास्तेषामेवं विनिर्दिशेत् ॥ १७४ ॥  
 स्त्रीणां तथा च चरणे ह्यधिमासगमे तथा ॥  
 पतनेष्वप्ययं दृष्टः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥ १७५ ॥  
 नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनः प्रेत्य चेह च ॥  
 गोविप्रमहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥ १७६ ॥  
 नैवाश्रुपतनं कार्यं सद्भिः श्रेयोभिकांक्षिभिः ॥  
 एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७७ ॥

कृत्वा चोदकदानं तु चरेच्चाद्रायणव्रतम् ॥  
 तच्छुवं केवलं स्पृष्ट्वा अशु नो पातितं यदि ॥ १७८ ॥  
 पूर्वकेष्वप्यकारी चेदेकाहं क्षपणं तथा ॥  
 महापातकिनः चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ॥ १७९ ॥  
 उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् ॥  
 नोपातिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विमलुप्यते ॥ १८० ॥  
 चण्डालैस्तु हता ये तु द्विजा दांप्रिसरीसृपैः ॥  
 श्राद्धं तेषां न कर्तव्यं ब्रह्मदंडहताश्च ये ॥ १८१ ॥  
 कृत्वा मूत्रपुरीषे तु भुक्त्वोच्छिष्टस्तथा द्विजः ॥  
 श्वादिस्पृष्टो जपेदेव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥ १८२ ॥  
 चंडालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमंत्यजमेव च ॥  
 उदक्यां सुतिकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १८३ ॥  
 स्पृष्टेन संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥  
 ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥ १८४ ॥  
 चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्चेद्विजोत्तमः ॥  
 गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८५ ॥  
 शुना पुष्पवती स्पृष्टा पुष्पवत्यान्यया तथा ॥  
 शेषाण्यहान्युपवसेत्स्नात्वा शुद्धयेद् घृताशनात् ॥ १८६ ॥  
 चण्डालभांडसंस्पृष्टं पिबेत्कूपगतं जलम् ॥  
 गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

अंत्यजैः स्वीकृते तीर्थे तडागेषु नदीषु च ॥  
 शुद्ध्यते पंचगव्येन पीत्वा तोयमकामतः ॥ १८८ ॥  
 सुराघटप्रपातोयं पीत्वा नालीजलं तथा ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्यं पिबेद्विजः ॥ १८९ ॥  
 कूपे विष्णूत्रसंस्पृष्टाः प्राश्य चापो द्विजातयः ॥  
 त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यन्ति कुम्भे सांतपनं स्मृतम् ॥ १९० ॥  
 वापीकूपतडागानामुपहतानां विशोधनम् ॥  
 अपां घटशतोद्धारः पंचगव्यं च निक्षिपेत् ॥ १९१ ॥  
 स्त्रीक्षीरमाविकं पीत्वा संधिन्याश्चैव गोः पयः ॥  
 तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानां चैव भक्षणे ॥ १९२ ॥  
 विष्णूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ॥  
 श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु व्यहं द्विजः ॥ १९३ ॥  
 विडालमूपिकोच्छिष्टे पंचगव्यं पिबेद्विजः ॥  
 शूद्रोच्छिष्टं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १९४ ॥  
 पलाहुं लशुनं जग्घ्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम् ॥  
 छत्राकं विड्वराहं च चरेत्सांतपनं द्विजः ॥ १९५ ॥  
 कयोः ॥  
 व्रतम् ॥ १९६ ॥  
 अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुद्भुतम् ॥  
 पतितैः प्रक्षितं वापि पंचगव्यं द्विजः पिबेत् ॥ १९७ ॥

- ✓ अंत्यजाभाजने भुक्त्वा उदकयाभाजने तथा ॥  
 गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १९८ ॥  
 गोमांसं मानुषं चैव शुनो हस्तात्समाहतम् ॥  
 अभक्ष्यं तद्भवेत्सर्वं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १९९ ॥  
 चंडाले संकरे विप्रः श्वपाके पुल्कसेपि वा ॥  
 गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०० ॥  
 पतितेन तु संपर्कं मांसं मासार्द्धमेव वा ॥  
 गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०१ ॥  
 पतिताद्रन्यमादत्ते भुंक्ते वा ब्राह्मणो यदि ॥  
 कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद्विजः ॥ २०२ ॥  
 यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥  
 तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या प्रत्यहं द्विजः ॥ २०३ ॥  
 एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥  
 अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं न चोच्यते ॥ २०४ ॥  
 दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ॥  
 पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदाभ्यासान्न संशयः ॥ २०५ ॥  
 सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ॥  
 नाशयत्याशु पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥ २०६ ॥  
 तिलं धनुं च यो दद्यात्संयताय द्विजातये ॥  
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

माघमासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः ॥  
 ब्राह्मणेभ्यस्तिलान्दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०८ ॥  
 उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्यां तु कार्तिके ॥  
 हिरण्यं वस्त्रमन्नं च दत्त्वा तरति दुष्कृतम् ॥ २०९ ॥  
 अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ॥  
 चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दत्ते भवति चाक्षयम् ॥ २१० ॥  
 अमावास्यां द्वादश्यां च संक्रांतौ च विशेषतः ॥  
 एताः प्रशस्तास्तितथ्यो भानुवारस्तथैव च ॥ २११ ॥  
 तत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥  
 उपवासस्तथा दानमेकैकं पावयेत्तरम् ॥ २१२ ॥  
 स्नातः शुचिर्धौतवासाः शुद्धात्मा विजितेंद्रियः ॥  
 सात्त्विकं भावमास्थाय दानं दद्याद्विचक्षणः ॥ २१३ ॥  
 सप्तव्याहृतिभिः कार्यो द्विजैर्होमो जितात्माभिः ॥  
 उपपातकशुद्धयर्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥ २१४ ॥  
 महापातकसंयुक्तो लक्षहोमं सदा द्विजः ॥  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः ॥ २१५ ॥  
 अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ॥  
 गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ॥ २१६ ॥  
 स्नात्वा आचम्य विधिवत्ततः प्राणान्समापयेत् ॥  
 प्राणायामस्त्रिभिः पूतो गायत्रीं तु जपेद्विजः ॥ २१७ ॥

अक्लिन्नवासाः स्थलगः शुचौ देशे समाहितः॥  
 पवित्रपाणिराचांतो गायत्र्या जपमाचरेत् ॥ २१८ ॥  
 ऐहिकामुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः ॥  
 पंचरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति ॥ २१९ ॥  
 गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥  
 महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत् ॥ २२० ॥  
 ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः ॥  
 गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२१ ॥  
 अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा चार्त्तं विगर्हितम् ॥  
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ २२२ ॥  
 अहन्यहनि योऽधीते गायत्रीं वै द्विजोत्तमः ॥  
 मासेन मुच्यते पापादुरगः कंचुकाद्यथा ॥ २२३ ॥  
 गायत्रीं यस्तु विप्रो वै जपेत् नियतः सदा ॥  
 स याति परमं स्थानं वायुभूतः स्वमूर्तिमान् ॥ २२४ ॥  
 प्रणवेन च संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः ॥  
 गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः पिबेद्विजः ॥ २२५ ॥  
 निगृह्य चात्मनः प्राणान्प्राणायामो विधीयते ॥  
 प्राणायामत्रयं कुर्यान्नित्यमेव समाहितः ॥ २२६ ॥  
 मानसं वाचिकं पापं कायेनैव च यत्कृतम् ॥  
 तत्सर्वं नाशमायाति प्राणायामप्रभावतः ॥ २२७ ॥

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ॥  
 सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२८ ॥  
 पावमानीं तथा कौत्सीं पौरुषं सूक्तमेव च ॥  
 जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत सपित्र्यं माधुच्छन्दसम् ॥ २२९ ॥  
 मंडलं ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृहद्यथा ॥  
 वामदेव्यं बृहत्साम सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३० ॥  
 चांद्रायणं तु सर्वेषां पापानां पावनं परम् ॥  
 कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च ॥ २३१ ॥  
 धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं संवर्तेन तु भाषितम् ॥  
 अर्थात्य ब्राह्मणो गच्छेद्ब्रह्मणः सन्न शाश्वतम् ॥ २३२ ॥  
 इति संवर्त्तप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥  
 संवर्त्तस्मृतिः समाप्ता ॥ ८ ॥

॥ श्रीः ॥

## कात्यायनस्मृतिः ९.

प्रथमः खंडः १.

अथातो गोभिलोक्तनामन्येषां चैव कर्मणाम् ॥  
अस्पष्टानां विधिं सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥ १ ॥  
त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तंतुत्रयमधोवृतम् ॥  
त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथिरिष्यते ॥ २ ॥  
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विंदते कटिम् ॥  
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातो लंबं न चोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥  
सदोपवीतिना भाग्यं सदा वद्धशिखेन च ॥  
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ ४ ॥  
त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ॥  
आस्यनासाक्षिकर्णाश्च नाभिवक्षःशिरोऽसकान् ॥ ५ ॥  
संहताभिरुपगुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥  
अंगुष्ठेन प्रदेशिन्यां घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥  
अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रं पुनः पुनः ॥  
कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥ ७ ॥



ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ॥  
 सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२८ ॥  
 पात्रमानीं तथा कौत्सीं पौरुषं सूक्तमेव च ॥  
 जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत सपित्र्यं माधुच्छंदसम् ॥ २२९ ॥  
 मंडलं ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृहद्यथा ॥  
 वामदेव्यं बृहत्साम सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३० ॥  
 चांद्रायणं तु सर्वेषां पापानां पावने परम् ॥  
 कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च ॥ २३१ ॥  
 धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं संवर्त्तेन तु भाषितम् ॥  
 अधीत्य ब्राह्मणो गच्छेद्ब्रह्मणः सन्न शाश्वतम् ॥ २३२ ॥  
 इति संवर्त्तप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥  
 संवर्त्तस्मृतिः समाप्ता ॥ ८ ॥

॥ श्रीः ॥

## कात्यायनस्मृतिः ९.

प्रथमः खंडः १.

अथातो गोभिलोक्तब्रणामन्येषां चैव कर्मणाम् ॥  
अस्पष्टानां विधिं सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥ १ ॥  
त्रिवृद्धूर्ध्ववृतं कार्यं तंतुत्रयमधोवृतम् ॥  
त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथिरिष्यते ॥ २ ॥  
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विदते कटिम् ॥  
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातो लंबं न चाच्छ्रितम् ॥ ३ ॥  
सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ॥  
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ ४ ॥  
त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ॥  
आस्यनासाक्षिकर्णाश्च नाभिवक्षःशिरोऽसकात् ॥ ५ ॥  
संहताभिरुपगुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥  
अंगुष्ठेन प्रदेशिन्यां घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥  
अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रं पुनः पुनः ॥  
कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥ ७ ॥

सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहु चाग्रेण संस्पृशेत् ॥  
 यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरंगं न तूच्यते ॥ ८ ॥  
 दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥  
 यत्र दिङ्मनियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु ॥ ९ ॥  
 तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐंद्रीसौम्यापराजिताः ॥  
 तिष्ठन्नासीनः प्रहो वा नियमो यत्र नेदृशः ॥  
 तदासीनेन कर्तव्यं न प्रह्वेर्न न तिष्ठता ॥ १० ॥  
 गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥  
 देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥ ११ ॥  
 धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ॥  
 गजेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥ १२ ॥  
 कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणारिषाः ॥  
 पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥ १३ ॥  
 प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा परादिषु ॥  
 अपि वाक्षतपुंजेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥ १४ ॥  
 शुद्ध्यलम्बा वसोद्धारी सप्तधारी धृतेन तु ॥  
 कारयेत्पंचधारी वा नातिनीचां नचोच्छ्रिताम् ॥ १५ ॥  
 आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥  
 षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपक्रमेत् ॥ १६ ॥

अनिष्टा तु पितृञ्छ्राद्धे न कुर्यात्कर्म वैदिकम् ॥  
 तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥  
 वसिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः ॥  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत् ॥ १८ ॥  
 इति श्रीकात्यायनस्मृतौ प्रथमखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

### द्वितीयः खण्डः २.

प्रातरामन्त्रितान्विप्रान्पुग्मानुभयतस्तथा ॥  
 उपवेश्य कुशान्दद्याद्वज्रनैव हि पाणिना ॥ १ ॥  
 हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः ॥  
 समूलाः पितृदेवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः ॥ २ ॥  
 हरिता वै सपिञ्जूलाः शुष्काः स्निग्धाः समाहिताः ॥  
 रत्निमात्रप्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्तृताः ॥ ३ ॥  
 पिंडार्थं ये स्मृता दर्भास्तर्पणार्थं तथैव च ॥  
 धृतैः कृते च विष्णून्ने त्यागस्तेषां विधीयते ॥ ४ ॥  
 दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा ॥  
 पातयेदितरं जानुं पितृन्परिचरन्नपि ॥ ५ ॥  
 निपातो नहि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित् ॥  
 सदा परिचरेद्भक्त्या पितृनप्यत्र देववत् ॥ ६ ॥  
 पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान् ॥  
 गोत्रनामभिरामंज्य पितृनर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ ७ ॥

नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥  
 पात्राणां पूरणादीनि दैवेनैव हि कास्येत् ॥ ८ ॥  
 ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राग्रपवित्रकान् ॥  
 कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥ ९ ॥  
 अनंतगर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ॥  
 प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥ १० ॥  
 एतदेव हि पिंजूल्या लक्षणं समुदाहृतम् ॥  
 आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव तु ॥ ११ ॥  
 एतत्प्रमाणामेवैके कौशीमेवार्द्रमंजरीम् ॥  
 शुष्कां वा शीर्णकुसुमां पिंजूर्लां परिचक्षते ॥ १२ ॥  
 पित्र्यमंत्रानुद्रवण आत्मात्मभेदभक्षणम् ॥  
 अधोवायुसमुत्सर्गं प्रहासेऽनृतभाषणे ॥ १३ ॥  
 मार्जारमूषकस्पर्शं आकुप्ये क्रोधसंभवे ॥  
 निमित्तेष्वेष्टु सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥ १४ ॥  
 - इति कात्यायनस्मृतौ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

### तृतीयः खण्डः ३.

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम् ॥  
 अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥ १ ॥

स्वशाखांश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं च यः ॥

कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥

यन्नाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ॥

विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमभिहोत्रादिकर्मवत् ॥ ३ ॥

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथंचन ॥

यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥ ४ ॥

समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् ॥

तावदेव पुनः कुर्यान्नाश्रुतिः सर्वकर्मणः ॥ ५ ॥

प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियते पुनः ॥

तदंगस्याक्रियायां च नाश्रुतिर्नैव तत्क्रिया ॥ ६ ॥

मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् ॥

गायत्र्यनंतरं सोऽत्र मधुमंत्रविवर्जितः ॥ ७ ॥

न चाश्रुत्सु जपेदत्र कदाचित्पितृसंहिताम् ॥

अन्य एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः ॥ ८ ॥

यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद्यवत्तथा ॥

उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः ॥ ९ ॥

संपन्नामिति वृत्ताःस्थ प्रश्नस्थाने विधीयते ॥

सुसंपन्नामिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ १० ॥

प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामंज्य पूर्ववत् ॥

अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्षेपेति पात्रतः ॥ ११ ॥

द्वितीयं च तृतीयं च मध्यदेशाग्रदेशयोः ॥  
 मातामहप्रभृतीस्त्रीनेतेषामेव वामतः ॥ १२ ॥  
 सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यञ्जनैरुपसिच्य च ॥  
 संयोज्य यवकर्कण्डूदाधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥ १३ ॥  
 अवनेजनवत्पिण्डान्दत्त्वा विल्वप्रमाणकान् ॥  
 तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥ १४ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

### चतुर्थः खण्डः ४.

उत्तरोत्तरदानेन पिंडानामुत्तरोत्तरः ॥  
 भवेदधश्चाधराणामधरः श्राद्धकर्माणि ॥ १ ॥  
 वस्माच्छ्राद्धेषु सर्वेषु वृद्धिमास्त्वितरेषु च ॥  
 मूलमध्याग्रदेशेषु ईपत्सक्तृश्च निर्वपेत् ॥ २ ॥  
 गन्धादीन्निःक्षिपेत्तूर्ण्णीं तत आचामयेद्विजान् ॥  
 अन्यत्राप्येष एव स्याद्यवादिरहितो विधिः ॥ ३ ॥  
 दक्षिणाप्लवने देशे दक्षिणाभिसुखस्य च ॥  
 दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु एषोऽन्यत्र विधिः स्मृतः ॥ ४ ॥  
 अथाग्रभूमिमासिंचेत्सुसंप्रोक्षितमस्त्विति ॥  
 शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च ॥ ५ ॥  
 सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ॥  
 अक्षतं चारिष्टं चास्त्वित्यक्षतान्मतिपादयेत् ॥ ६ ॥

अक्षय्योदकदानं तु अर्घ्यदानवदिष्यते ॥  
 पष्ठयैव नित्यं तत्कुर्ष्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥ ७ ॥  
 अर्घ्येऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने ॥  
 तत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ ८ ॥  
 प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्वस्वेव द्विजोत्तमैः ॥  
 पवित्रांतर्हितान्पिण्डान्सिचयेदुत्तानपात्रकृत् ॥ ९ ॥  
 युग्मानेव स्वस्तिवाच्यमहुष्ठाग्रग्रहं सह ॥  
 कृत्वा धुर्य्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः ॥ १० ॥  
 एष श्राद्धविधिः कृत्स्न उक्तः संक्षेपतो मया ॥  
 ये विन्दन्ति न मुह्यन्ति श्राद्धकर्मसु ते कश्चित् ॥ ११ ॥  
 इदं शास्त्रं च गुह्यं च परिसंख्यानमेव च ॥  
 वसिष्ठोक्तं च यो वेद स श्राद्धं वेद नेतरः ॥ १२ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

### पंचमः खण्डः ५.

असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन्कर्मकारिभिः ॥  
 प्रतिप्रयोगं नेताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च ॥ १ ॥  
 आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च ॥  
 वालिकर्माणि दर्शं च पूर्णमासे तथैव च ॥ २ ॥  
 नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥  
 एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥



नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते ॥  
 न सोष्यन्ती जातकर्म प्रोवितागतकर्मसु ॥ ४ ॥  
 विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो  
 गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते ॥  
 विवाहादोवेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं .  
 नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥ ५ ॥  
 प्रदोषे श्राद्धमेकं स्यादोनिष्क्रामप्रवेशयोः ॥  
 न श्राद्धे पुज्यते कर्तुं प्रथमे पुष्टिकर्मणि ॥ ६ ॥  
 हलाभियोगादिषु तु पदसु कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥  
 प्रतिप्रयोगमप्येषामादावेकं तु कारयेत् ॥ ७ ॥  
 बृहत्पत्रक्षुद्रपशुस्वस्त्यर्थं परिविष्यतोः ॥  
 सूर्येन्द्रोः कर्मणी ये तु तयोः श्राद्धं न विद्यते ॥ ८ ॥  
 न दशाग्रंथिके चैव विष्वदष्टकर्मणि ॥  
 कृमिदष्टचिकित्सायां नैव शंषेपु विद्यते ॥ ९ ॥  
 गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् ॥  
 सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथ गादिषु ॥ १० ॥  
 यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः ॥  
 प्रासाद्विक्रमिदं प्रोक्तमतः प्रकृतमुच्यते ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

पट्टः खंडः ६.

आधानकाला ये प्रोक्तास्तथा याश्चाप्तियोनयः ॥  
 तदाश्रयोऽग्निमादध्यादग्निमानग्रजौ यदि ॥ १ ॥  
 दारादिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्निमः ॥  
 परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ २ ॥  
 परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम् ॥  
 अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥ ३ ॥  
 देशांतरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान् ॥  
 वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ ४ ॥  
 जडमूकान्धवाधिरकुब्जवामनकुंडकान् ॥  
 अतिवृद्धानभार्याश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥ ५ ॥  
 धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा ॥  
 कुलटोन्मत्तचोरांश्च परिविन्दन्न दुप्यति ॥ ६ ॥  
 धनवार्धुपिकं राजसेवकं कर्मकं तथा ॥  
 प्रोषितं च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् ॥ ७ ॥  
 प्रोषितं यद्यशृण्वानमब्दादूर्ध्वं समाचरेत् ॥  
 आगते तु पुनस्तस्मिन्पादं तच्छुद्ध्ये चरेत् ॥ ८ ॥  
 लक्षणे प्राग्गतायास्तु प्रमाणं द्वादशांगुलम् ॥  
 तन्मूलसक्ता योदीची तस्या एतन्नवोत्तरम् ॥ ९ ॥

लदग्गतायाः संलमाः शेषाः प्रादेशमात्रिकाः ॥  
 सप्तसप्तांगुलास्त्यक्ता कुशेनैव समुल्लिखेत् ॥ १० ॥  
 मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्तारि ॥  
 मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः ॥ ११ ॥  
 पुण्यवानादधीताग्निं स हि सर्वैः प्रशस्यते ॥  
 अनर्द्धकत्वं यत्तस्य काम्यैस्तन्नीयते शमम् ॥ १२ ॥  
 यस्य दत्ता भवेत्कन्या वाचा सत्येन केनचित् ॥  
 सोऽन्त्यां समिधमाधास्यन्नादधीतेव नान्यथा ॥ १३ ॥  
 अनूढेव तु सा कन्या पञ्चत्वं यदि गच्छति ॥  
 न तथा व्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यां समुद्रहेत् ॥ १४ ॥  
 अथ चेन्न लभेतान्यां याचमानोऽपि कन्यकाम् ॥  
 तमग्निमात्मसात्कृत्वा क्षिप्रं स्यादुत्तराश्रमी ॥ १५ ॥  
 इति कार्यायनस्मृतौ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

### सप्तमः खंडः ७.

अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्व्वीसमुद्भवः ॥  
 तस्य या प्राङ्मुखी शाखा वोदीची वोर्द्धगापि वा ॥ १ ॥  
 अरणिस्तन्मयी प्राक्ता तन्मय्येवोत्तरारणिः ॥  
 सारवद्धारवं चात्र मीविली च प्रशस्यते ॥ २ ॥  
 संसक्तमूलो यः शम्याः स शमीगर्भ उच्यते ॥  
 अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ॥ ३ ॥

चतुर्विंशतिरंगुष्ठदैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् ॥

चत्वार उच्छ्रूये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥

अष्टांगुलः प्रमन्थः स्याच्चक्रं स्याद्वादशांगुलम् ॥

ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयंत्रकम् ॥ ५ ॥

अंगुष्ठांगुलमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ॥

तत्र तत्र बृहत्पर्व ग्रंथिभिर्मिनुयात्सदा ॥ ६ ॥

गोवालैः शणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ॥

व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात्प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥ ७ ॥

मूर्द्धाक्षिकर्णवक्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी ॥

अंगुष्ठमात्राण्येतानि द्वांगुष्ठं वक्ष उच्यते ॥ ८ ॥

अंगुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यंगुष्ठमुदरं स्मृतम् ॥

एकांगुष्ठा कटिर्जैत्र्या द्वौ वस्तिर्द्वौ च गुह्यके ॥ ९ ॥

ऊरू जंघे च पादौ च चतुस्यैकैर्यथाक्रमम् ॥

अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥ १० ॥

यत्तद्ब्रह्मामिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोच्यते ॥

अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥ ११ ॥

अन्येषु ये तु मथनन्ति ते रोक्षभयमाप्नुयुः ॥

प्रथमे मन्थने त्वेष नियमो नोत्तरेषु च ॥ १२ ॥

उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमन्थः सर्वदा भवेत् ॥

योनिसंकरदोषेण युज्यते ह्यन्यमन्थकृत् ॥ १३ ॥

आर्द्रा ससुषिरा चैव घूर्णांगी पाटिता तथा ॥  
 न हिता यजमानानामराणिश्चोत्तरारणिः ॥ १४ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

### अष्टमः खंडः ८.

परिधायाहृतं वासः प्रावृत्य च यथाविधि ॥  
 विभृयात्प्राङ्मुखो यंत्रमावृता वक्ष्यमाणया ॥ १ ॥  
 चात्रबुध्रे प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः ॥  
 कृत्वोत्तराग्रामराणि तद्बुधमुपरि न्यसेत् ॥ २ ॥  
 चक्राधः कीलकाग्रस्थामोविलीमुदगग्रकाम् ॥  
 विष्टंभाद्धारयेद्यंत्रं निष्कम्पं प्रपतः शुचिः ॥ ३ ॥  
 त्रिरुद्वेष्टयाथ नेत्रेण चक्रं पत्न्योहतांशुकाः ॥  
 पूर्व मधंत्यरण्यन्ताः प्राच्यघ्नैः स्पाद्यथा च्युतिः ॥ ४ ॥  
 नैकयापि विना कार्य्यमाधानं भार्य्यया द्विजैः ॥  
 अकृतं तद्विजानीयात्सर्वान्वा चारमन्ति यत् ॥ ५ ॥  
 वर्णज्यैष्ठ्येन बह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः ॥  
 कार्यमभिच्युतेराभिः साध्वीभिर्मथनं पुनः ॥ ६ ॥  
 नात्र शूर्द्धी प्रयुज्जीत न द्रोहद्वेषकारिणीम् ॥  
 न चैवाव्रतस्थां नान्यपुंसां च सह संगताम् ॥ ७ ॥  
 ततः शक्ततरा पश्चादासामन्यतरांपि वा ॥  
 उपेतानां वान्यतमा मन्येदग्निं निकामतः ॥ ८ ॥

जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च ॥  
 आधाय समिधं चैव ब्राह्मणं चोपवेशयेत् ॥ ९ ॥  
 ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्व्वमंत्रसमन्विताम् ॥  
 गां दद्याद्यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥ १० ॥  
 होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये सुवः स्मृतः ॥  
 पाणिरेवेतरस्मिस्तु सुचैवात्र तु हूपते ॥ ११ ॥  
 खादिरो वाथ पालाशो द्विवितस्तिः सुवः स्मृतः ॥  
 सुग्व्वाहुमात्रा विज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः ॥ १२ ॥  
 सुवाग्ने घ्राणवत्खातं व्यंगुष्ठपरिमंडलम् ॥  
 जुह्वाः शराववत्खातं सनिर्व्वाहं षडंगुलम् ॥ १३ ॥  
 तेषां प्राक्शः कुशैः कार्प्यः संप्रमार्गो जुह्वयता ॥  
 प्रतापनं च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥ १४ ॥  
 प्राञ्चं प्राञ्चमुदगमेरुदग्रं समीपतः ॥  
 तत्तथाऽऽसादयेद्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥ १५ ॥  
 आज्यं हव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ॥  
 मंत्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ १६ ॥  
 नांगुष्ठादधिका ग्राह्या समिस्थूलतया कचित् ॥  
 न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥ १७ ॥  
 प्रादेशान्नाधिका नोना न तथा स्याद्विशालिका ॥  
 न सपर्णा न निर्व्वाप्या होमेषु च विजानता ॥ १८ ॥

प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥  
 एवंविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्मसु ॥ १९ ॥  
 समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ॥  
 दर्शं च पौर्णमासे च क्रियास्वन्या सु विंशतिः ॥ २० ॥  
 समिदादिषु होमेषु मंत्रदैवतवर्जिता ॥  
 पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्च हीन्धनार्थं समिद्भवेत् ॥ २१ ॥  
 इध्मोऽप्येधार्थमाचार्यैर्विराड्भुतिषु स्मृतः ॥  
 यत्र चास्य निवृत्तिः स्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥ २२ ॥  
 अंगहोमसमित्तंत्रसोप्यन्त्याख्येषु कर्मसु ॥  
 येषां चैतदुपर्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च ॥ २३ ॥  
 अक्षभंगादिविपदि जलहोमादिकर्मणि ॥  
 सोमादितिषु सर्वासु नैतेष्विध्मो विधीयते ॥ २४ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

### नवमः खण्डः ९.

सूर्येऽन्तर्शलममाप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदांगुलैः ॥  
 प्रादुष्करणममीनां प्रातर्भासां च दर्शनात् ॥ १ ॥  
 हस्तादूर्ध्वं रविर्पावद् गिरिं हित्वा न गच्छति ॥  
 तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥ २ ॥  
 यावत्सम्यङ् न भाव्यंते नभस्पृक्षाणि सर्वतः ॥  
 न च लौहित्यमापैति तावत्सायं च हूयते ॥ ३ ॥

रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षग्रान्तरिते रवौ ॥

संध्यामुद्दिश्य जुहुयाद्भुतमस्य न लुप्यते ॥ ४ ॥

न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम् ॥

वैरूपाक्षं च न जपेत्प्रपदं च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

पर्युक्षणं च सर्वत्र कर्तव्यमुदितेऽग्निति ॥

अंते च वामदेव्यस्य गानं कुर्याद्वचस्त्रिधा ॥ ६ ॥

अहोमकेष्वपि भवेद्यथोक्तं चंद्रदर्शनम् ॥

चामदैव्यं गणेष्वन्ते बल्यन्ते वैश्वदेविके ॥ ७ ॥

यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् ॥

एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधीनपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥

वर्हिःपर्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा ॥

कृत्वाद्भुतिषु सर्वासु त्रिकर्म तत्र विद्यते ॥ ९ ॥

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु ग्रीहयः स्मृताः ॥

माषकोद्वगौरादि सर्वालाभेऽभिवर्जयेत् ॥ १० ॥

पाण्याद्भुतिर्द्वादशपर्वपरिका

कंसादिना चेत्सुवमात्रपरिका ॥

दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः

स्वंगारिणि स्वीचिपि तच्च पावके ॥ ११ ॥

योजनर्चिपि जुहोत्यग्नौ व्यंगारिणि च मानवः ॥

मन्दाभिरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥ १२ ॥



तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ॥  
 आरोग्यमिच्छतापुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम् ॥ १३ ॥  
 होतव्ये च हुते चैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः ॥  
 न कुर्यादभिधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ॥ १४ ॥  
 मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्व्येपोऽध्यजायत ॥  
 नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तम् ॥ १५ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

### दशमः खण्डः १०.

- यथाहनि तथा प्रातर्ब्रित्यं स्नायादनातुरः ॥
- दन्तान्प्रक्षाल्य नद्यादौ गृहे चेत्तदमन्त्रवत् ॥ १ ॥
- नारदाद्युक्तवार्क्षं यदष्टांगुलमपादितम् ॥
- सत्त्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ॥ २ ॥
- उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥
- परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेद्दंतधावनम् ॥ ३ ॥
- आयुर्वलं यशो वर्चः प्रजाः पशून्वसूनि च ॥
- ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ ४ ॥
- मासद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः ॥
- तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥ ५ ॥
- धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते ॥
- न ता नदीशब्दवहा गतास्ताः परिकीर्तिताः ॥ ६ ॥

उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ॥

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥ ७ ॥

वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ॥

जलार्थिनोऽथ पितरो मरीच्याद्यास्तथर्पयः ॥ ८ ॥

उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः ॥

पिपासुननुगच्छन्ति संतुष्टाः स्वशरीरिणः ॥ ९ ॥

समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्यादयो मलाः ॥

नूनं सर्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥ १० ॥

ऋषीणां सिच्यमानानामन्तरालं समाश्रितः ॥

संपिवेद्यः शरीरेण पर्षन्मुक्तजलच्छटाः ॥ ११ ॥

विद्यादीन्ब्राह्मणः कामान्वरादीन्कन्यका ध्रुवम् ॥

आमुष्मिकान्यपि सुखान्याप्नुयात्स न संशयः ॥ १२ ॥

अशुच्यशुचिना दत्तमाममन्नं जलादिना ॥

अनिर्गतदशाहास्तु प्रेता रक्षांसि भुञ्जते ॥ १३ ॥

स्वर्धुन्यंभःसमानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले ॥

कूपस्यान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ दशमः खण्डः ॥ १० ॥

इति कर्मप्रदीपे परिशिष्टे कात्यायनविरचिते प्रथमः प्रपाठकः १

## एकादशः खंडः ११.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि संध्योपासनकं विधिम् ॥

अनर्हः कर्मणां विप्रः संध्याहीनो यतः स्मृतः ॥ १ ॥

सव्ये पाणौ कुशान्कृत्वा कुप्यादाचमनक्रियाम् ॥

ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घास्तु बर्हिषः ॥ २ ॥

दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः संध्यादिकर्मणि ॥

सव्यः सोपग्रहः फार्ग्यो दक्षिणः सपवित्रकः ॥ ३ ॥

रक्षयेद्धारिणात्मानं परिक्षिप्य समंततः ॥

शिरसो मार्जनं कुप्यात्कुशैः सोदकचिन्दुभिः ॥ ४ ॥

प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च सावित्री चतुर्थीका ॥

अब्दैवत्यं व्यृचं चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥ ५ ॥

भूराद्यास्तिस्त्र एवैता महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥

महर्जनस्तपः सत्यं गायत्री च शिरस्तथा ॥ ६ ॥

आपोऽज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरिति शिरः ॥

प्रतिप्रतीकं प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरसः ॥ ७ ॥

एता एतां सहानेन तथैभिर्दशभिः सह ॥

त्रिजपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ८ ॥

करेणोद्धृत्य सलिलं प्राणमासज्य तत्र च ॥

जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाचमर्षणम् ॥ ९ ॥

उत्थायार्कं प्रतिप्रोहेन्निकेणाञ्जलिनाम्भसः ॥  
 ओं चित्रमृगद्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥ १० ॥  
 संध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः ॥  
 मध्ये त्वद् उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥ ११ ॥  
 तदसंसक्तपार्णिर्वा एकपादर्द्धपादपि ॥  
 कुर्यात्कृताञ्जलिर्वापि ऊर्द्धबाहुरथापि वा ॥ १२ ॥  
 यत्र स्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ॥  
 भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्स्यते ॥ १३ ॥  
 तिष्ठेदुदयनात्पूर्वा मध्यमामपि शक्तितः ॥  
 आसीन उद्गमाच्चान्त्यां संध्यां पूर्वात्रिकं जपन् ॥ १४ ॥  
 एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति ॥  
 यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥ १५ ॥  
 सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ॥  
 तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥ १६ ॥  
 वेदमादित आरभ्य शक्तितोऽहरहर्जपेत् ॥  
 उपतिष्ठेत्ततो रुद्रं सर्वाद्वा वैदिकान्जपात् ॥ १७ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतावेकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

## द्वादशः खंडः १२.

अथाद्रिस्तर्पयेद्देवान्सतिलाभिः पितृनपि ॥

नमस्ते तर्पयामीति आदावोमिति च ब्रुवन् ॥ १ ॥

ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं वेदान् देवांश्छन्दां-  
स्यूपीन् पुराणाचार्यान् गंधर्वांनितरान्मासं  
संवसरं सावयव देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान्  
सागरान्पर्वतान् सरितो दिव्यान्मनुष्यानितरा-  
न्मनुष्यान् यक्षात्रक्षांसि सुपर्णान् पिशाचान्  
पृथिवीमोषधीः पशून्वनस्पतीन् भूतग्रामं चतुर्वि-  
धमित्युपवीत्यथ प्राचीनावीती यमं यमपुरुषान्  
कव्यवाहमनलं सोमं यममर्यमणमभिष्वत्तान्  
सोमपीथान् बर्हिषदोऽथ स्वान् पितृन् सकृत्  
सकृन्मातामहांश्चेति प्रतिपुरुषमभ्यस्येज्येषु-  
भ्रातृभ्यश्चुरापितृव्यमातुलाश्च पितृवंशमातृवंशौ  
ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्तितास्तर्पयामीत्यय-  
मवसानाञ्जलिरथ श्लोकाः ॥ २ ॥

छायां यथेच्छेच्छरदातपार्तः पयः पिपासुः क्षुधितोऽलमन्नम् ॥

बालो जनित्रीं जननी च बालं योषितुमांसं पुरुषश्च योषाम् ३

तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥

विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्वाभ्युदयकृद्धि सः ॥ ४ ॥

तस्मात्सदैव कर्त्तव्यमकुर्वन्महत्तेनसा ॥  
 युज्यते ब्राह्मणः कुर्वन्विश्वमेतद्विभर्त्ति हि ॥ ५ ॥  
 अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥  
 प्रातर्न तनुयात्स्नानं होमलोपो हि गर्हितः ॥ ६ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

### त्रयोदशः खण्डः १३.

पश्चानामथ सत्राणां महतामुच्यते विधिः ॥  
 धैरिष्ठा सततं विप्रः प्राप्नुयात्सन्न शाश्वतम् ॥ १ ॥  
 देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् ॥  
 महासत्राणि जानीयात्त एवेह महामखाः ॥ २ ॥  
 अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥  
 होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ३ ॥  
 श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पिञ्चो बलिरथापि वा ॥  
 यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥ ४ ॥  
 स चार्वाकतर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः ॥  
 वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्रर्तौ निमित्तिकात् ॥ ५ ॥  
 अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ॥  
 अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा ६ ॥  
 अप्युद्धृत्य यथाशक्त्या किञ्चिदन्नं यथाविधि ॥  
 पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्दिजे ॥ ७ ॥

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत् ॥  
 हन्तकारं भनुष्येभ्यस्तदर्थं निनयेदपः ॥ ८ ॥  
 मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम् ॥  
 अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धं प्रथमयामान्तः ॥ ९ ॥  
 सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बलिकर्म च ॥  
 अनशनतापि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ १० ॥  
 अमुष्मै नम इत्येवं बलिदानं विधीयते ॥  
 बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारः कृतो यतः ॥ ११ ॥  
 स्वाहाकारवपट्टकारनमस्कारा दिवौकसाम् ॥  
 स्वधाकारः पितॄणां च हन्तकारो नृणां कृतः ॥ १२ ॥  
 स्वधाकारेण निनयेत्पित्र्यं बलिमतः सदा ॥  
 तदप्येके नमस्कारं कुर्वते नेति गौतमः ॥ १३ ॥  
 नावराद्धर्चावल्यो भवन्ति महामार्जारश्रवणप्रमाणत्वात् ॥  
 एकत्र चेदविकृष्टा भवन्तीतरेतरसंसक्ताश्च ॥ १४ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः खंडः १४.

अतस्तद्विन्यासो वृद्धिपिंडानिवोत्तरांश्चतुरो बली  
 त्रिदध्यात् ॥ पृथिव्यै वायवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः  
 प्रजापतये इति सव्यत एतेषामेकैकमद्र्य ओ-

बधिवनस्पातिभ्य आकाशाय कामायेत्येतेषामपि  
मन्यव इन्द्राय वासुकये ब्रह्मण इत्येतेषामपि  
रक्षोजनेभ्य इति सर्वेषां दक्षिणतः पितृभ्य इति  
चतुर्दश नित्या आशस्यप्रभृतयः काम्याः सर्वे-  
षामुभयतोऽग्निः परिपेकः पिंडवच्च पश्चिमाप्र-  
तिपत्तिः ॥ १ ॥

न स्यातां काम्यसामान्ये जुहोतिबलिकर्मणी ॥  
पूर्वं नित्यविशेषोक्तं जुहोतिबलिकर्मणोः ॥ २ ॥

काममते भवेयातां न तु मध्ये कदाचन ॥  
नैकस्मिन्कर्मणि तते कर्मान्यदापतेद्यतः ॥ ३ ॥

अग्न्यादिर्गोतमाद्युक्तो होमः शाकल एव च ॥  
अनाहिताग्नेरप्येष युज्यते बलिभिः सह ॥ ४ ॥

स्पृष्टा यो वीक्ष्यमाणोऽग्निं कृतांजलिपुटस्ततः ॥  
वामदेव्यजपात्पूर्वं प्रार्थयेद्द्रविणोदयम् ॥ ५ ॥

आरोग्यमायुरैश्वर्यं धीर्धृतिः शं बलं यशः ॥  
ओजो वर्चः पशून्वीर्यं ब्रह्म ब्राह्मण्यमेव च ॥ ६ ॥

सौभाग्यं कर्मासिद्धिश्च कुलज्यैष्ठ्यं सुकर्तृताम् ॥  
सर्वमेतःसर्वसाक्षिन्द्रविणोदरिरीहि नः ॥ ७ ॥

न ब्रह्मयज्ञादधिकोऽस्ति यज्ञो न तत्प्रदानात्परमस्ति दानम् ॥  
सर्वे तदन्ताः क्रतवः सदाना नान्तो दृष्टः कैश्चिदस्य द्विकस्य



ऋचः पठन्मधुपयःकुल्याभिस्तर्पयेत्सुरान् ॥  
 घृतामृतौघकुल्याभिर्पेजूंष्यपि पठन्सदा ॥ ९ ॥  
 सामान्यपि पठन्सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ॥  
 भेदःकुल्याभिरपि च अथर्वागिरसः पठन् ॥ १० ॥  
 मांसक्षीरोदनमधुकुल्याभिस्तर्पयेत्पठन् ॥  
 वाकोवाक्यपुराणानि इतिहासानि चान्वहम् ॥ ११ ॥  
 ऋगादीनामन्यतममेतेषां शक्तितोऽन्वहम् ॥  
 पठन्मध्वाज्यकुल्याभिः पितृनपि च तर्पयेत् ॥ १२ ॥  
 ते तृप्तास्तर्पयंत्येनं जीवंतं प्रेतमेव च ॥  
 कामचारी च भवति सर्वेषु सुरसद्मसु ॥ १३ ॥  
 दुर्वप्येनो न तं स्पृशेत्पंक्तिं चैव पुनाति सः ॥  
 यं यं कर्तुं च पठति फलभाक्तस्य तस्य च ॥ १४ ॥  
 वसुपूर्णावसुमतीविर्दानफलमाप्नुयात् ॥  
 ब्रह्मयज्ञादपि ब्रह्मदानमेवातिरिच्यते ॥ १५ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्दशः खंडः ॥ १४ ॥

### पंचदशः खंडः १५.

ब्रह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्तिता ॥  
 कर्मातिऽनुच्यमानापि पूर्णपात्रादिका भवेत् ॥ १ ॥  
 यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णेन विद्यते ॥

नावराद्धर्मतः कुर्यात्पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥ २ ॥ -  
 विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेदक्षिगार्द्धहरो भवेत् ॥  
 स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥  
 कुलर्त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् ॥  
 नातिक्रमेत्सदा दित्सन्य इच्छेदात्मनो हितम् ॥ ४ ॥  
 अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते ॥  
 नैतावपृष्टा ददतः पात्रेऽपि फलमास्ति हि ॥ ५ ॥  
 दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मनसा वरम् ॥  
 इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः ॥ ६ ॥  
 सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ॥  
 यददाति तमुल्लंघ्य ततः स्तेयेन युज्यते ॥ ७ ॥  
 यस्य त्वेकगृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः ॥  
 गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ८ ॥  
 ब्राह्मणाभिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥  
 ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मानि ह्रियते ॥ ९ ॥  
 आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसंभवा ॥  
 महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥ १० ॥  
 आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामं तु कारयेत् ॥  
 सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते ॥ ११ ॥  
 तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी ॥

मृन्मय्यौदुम्बरी वीपि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥ १२ ॥

स्वशाखोक्तः प्रसुस्विन्नो हृदग्धोऽकठिनः शुभः ॥

न चातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा ॥ १३ ॥

इध्मजातीयामिध्मार्धप्रमाणं मेक्षणं भवेत् ॥

घृतं चांगुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम् ॥ १४ ॥

• एषैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे ॥

दर्वी द्यंगुलपृथ्वग्रातुरीयोनं तु मेक्षणम् ॥ १५ ॥

मुसलोलूखले वार्क्षं स्वापते सुदृढे तथा ॥

इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव च ॥ १६ ॥

दक्षिणं वामतो बाह्यमात्माभिमुखमेव च ॥

करं करस्य कुर्वीत करेण्यच्च कर्मणः ॥ १७ ॥

कृत्वाग्न्यभिमुखौ पाणी स्वस्थानस्थौ सुसंयतौ ॥

प्रदक्षिणं तथासीनः कुर्यात्परिसमूहनम् ॥ १८ ॥

बाहुमात्रा परिधय ऋजवः सत्वचोऽघ्रणाः ॥

त्रयो भवन्ति शीर्णाग्रा एकेषां तु चतुर्दिशम् ॥ १९ ॥

प्रागग्रावलिभिः पश्चाद्दुदगग्रमथापरम् ॥

न्यसेत्परिधिमन्यं चेदुदगग्रः सपर्वतः ॥ २० ॥

यथोक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ॥

यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

षोडशः खंडः १६.

पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ॥

वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥ १ ॥

यदा चतुर्दशी यामं तुरीयमनुपूरयेत् ॥

अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥ २ ॥

यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः ॥

अनयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥ ३ ॥

यच्चोक्तं दृश्यमानेपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया ॥

अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्व्वपेत् ॥ ४ ॥

अष्टमेशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः ॥

अमावास्याष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः ॥ ५ ॥

आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् ॥

विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः ॥ ६ ॥

अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागो न कलावशिष्टः ॥

तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति ७

यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यव्यस्तास्मिस्तृतीयया परि-  
दृश्यो नोपजायते ॥

एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात् ८

सम्मिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत्कचित् ॥

खर्वितां तां विदुः केचिद्गताध्वामिति चापरे ॥ ९ ॥

वर्द्धमानाममावास्यां लभेच्चेदपरेऽहनि ॥  
 यामांस्त्रीनर्थिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ १० ॥  
 पक्षादावेव कुर्वीत सदा पक्षादिकं चरुम् ॥  
 पूर्वाह्ण एव कुर्वन्ति विद्धेऽप्यन्ये मनीषिणः ॥ ११ ॥  
 सपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते ॥  
 न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिः ॥ १२ ॥  
 पितामहे जीवति च पितुः प्रेतस्य निर्व्वपेत् ॥  
 पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत्पितामहः ॥ १३ ॥  
 पितुः पितुः पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च ॥  
 कुर्प्यान्पिण्डत्रयं यस्य संस्थितः प्रपितामहः ॥ १४ ॥  
 जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः ॥  
 पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः ॥ १५ ॥  
 पितामहः पितुः पश्चात्पंचत्वं यदि गच्छति ॥  
 पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धपोडशम् ॥ १६ ॥  
 नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ॥  
 पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्प्यान्मासानुमासिकम् १७ ॥  
 असंस्कृती न संस्कार्यो पूर्वोपौत्रप्रपौत्रकैः ॥  
 पितरं तत्र संस्कार्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥  
 पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा ॥  
 पितामहेन पितरं संस्कार्यादिति निश्चयः ॥ १९ ॥

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते संगवर्जिते ॥  
 व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ २० ॥  
 मातुः सपिंडीकरणं पितामह्या सहोदितम् ॥  
 यथोक्तेनैव कल्पेन पुत्रिकाया न चेत्सुतः ॥ २१ ॥  
 न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते ॥  
 स्वभर्तृपिंडमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता ॥ २२ ॥  
 मातुः प्रथमतः पिंडं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥  
 द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥ २३ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

### सप्तदशः खंडः १७.

पुरतो यात्मनः कुर्यात्सा पूर्वा परिकीर्त्यते ॥  
 मध्यमा दक्षिणेनास्यास्तदक्षिणत उत्तमा ॥ १ ॥  
 वाय्वमिदिङ्मुखान्तास्ताः कार्य्याः सार्द्धांगुलान्तराः ॥  
 तीक्ष्णान्ता यवमध्याश्च मध्यं नाव इवोत्किरेत् ॥ २ ॥  
 शंकुश्च खादिरः कार्य्यो रजतेन विभूषितः ॥  
 शंकुश्चैवोपवेशश्च द्वादशांगुल इष्यते ॥ ३ ॥  
 अग्न्याशाग्रैः कुशैः कार्य्य कर्षूणां स्तरणं घनैः ॥  
 दक्षिणान्तं तदग्रैस्तु पितृयज्ञे परिस्तरेत् ॥ ४ ॥

स्वगरं सुरभि ज्ञेयं चंदनादिविलेपनम् ॥  
 सौवीरांजनमित्युक्तं पिंजलीनां यदंजनम् ॥ ५ ॥  
 स्वस्तरे सर्वमासाद्य यथावदुपपुज्यते ॥  
 देवपूर्वं ततः श्राद्धमत्वरः शुचिरारभेत् ॥ ६ ॥  
 आसनाद्यर्घपर्यन्तं वसिष्ठेन यथेरितम् ॥  
 कृत्वा कर्माय पात्रेषु उक्तं दद्यात्तिलोदकम् ॥ ७ ॥  
 तूष्णीं पृथगपो दत्त्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम् ॥  
 गन्धोदके च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु ॥ ८ ॥  
 आसुरेण तु पात्रेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ॥  
 पितरस्तस्य नाश्रन्ति दशवर्षाणि पंच च ॥ ९ ॥  
 कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं मृन्मयं स्मृतम् ॥  
 तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत् ॥ १० ॥  
 गंधान्वाहणसात्कृत्वा पुष्पाण्यृतुभवानि च ॥  
 धूपं चैवानुपूर्व्येण ह्यग्नौ कुर्यादनन्तरम् ॥ ११ ॥  
 अग्नौ करणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना ॥  
 प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिः श्रुता ॥ १२ ॥  
 अपसव्येन वा कायौ दक्षिणाभिमुखेन च ॥  
 निरूप्य हविरन्यस्मा अन्यस्मै नहि हूयते ॥ १३ ॥  
 स्वाहाकुर्यान्न चात्रान्ते न चैव जुहुयाद्धविः ॥  
 स्वाहाकारेण हुत्वाग्नी पश्चान्मंत्रं समापयेत् ॥ १४ ॥

पित्र्ये यः पंक्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनेमिमान् ॥  
 हुत्वा मंत्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ १५ ॥  
 नो कुर्याद्धोममंत्राणां पृथगादिषु कुत्रचित् ॥  
 अन्येषां चाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना ॥ १६ ॥  
 सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्र समुदीरितम् ॥  
 परिग्रहणमात्रं तत्सव्यस्यादिशति व्रतम् ॥ १७ ॥  
 पिंजल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात्करात् ॥  
 अन्वारभ्य च सव्येन कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥ १८ ॥  
 यावदर्थमुपादाय हविषाऽर्भकमर्भकम् ॥  
 चरुणा सह सत्रीय पिंडान्दातुमुपक्रमेत् ॥ १९ ॥  
 पितुरुत्तरकर्ण्वशे मध्यमे मध्यमस्य तु ॥  
 दक्षिणे तत्पितुश्चैव पिण्डान्पर्वणि निर्वपेत् ॥ २० ॥  
 वाममावर्तनं केचिदुदगंतं प्रचक्षते ॥  
 सर्वं गौतमशांडिल्यौ शांडिल्यायनएव च ॥ २१ ॥  
 आवृत्य प्राणमायम्य पितृन्ध्यायन्ययार्थतः ॥  
 जपंस्तेनैव चावृत्य ततः प्राणं प्रमोचयेत् ॥ २२ ॥  
 शाकं च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यपि वा पचेत् ॥  
 यस्तु शाकादिको होमः कार्पेऽष्टपाष्टकावृतः ॥ २३ ॥  
 अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगीतमौ ॥  
 वार्कखंडिश्च सर्वासु कौत्सो मेनेष्टकासु च ॥ २४ ॥



स्थालोपाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्यनुकल्पितम् ॥  
 श्रपयेत्तं सवत्सापास्तरुण्या गोः पयस्यनु ॥ २५ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ सप्तदशः खंडः ॥ १७ ॥

### अष्टादशः खंडः १८.

सायमादिप्रातरंतमेकं कर्म प्रचक्षते ॥  
 दर्शातं पौर्णमास्याद्यमेकमेव मनीषिणः ॥ १ ॥  
 ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपि चाग्रिमः ॥  
 य आयाति स होतव्यः स एवादिरिति श्रुतिः ॥ २ ॥  
 ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः कुर्यात्सायं होमादनंतरम् ॥  
 वैश्वदेवं तु पाकांते बलिकर्मसमन्वितम् ॥ ३ ॥  
 ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादभिरूपान्स्वशक्तितः ॥  
 यजमानस्ततोऽश्रीयादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥  
 वैवाहिकामौ कुर्वीत सायं प्रातस्त्वतंदितः ॥  
 चतुर्थीकर्म कृत्वैतदेतच्छाट्यायनेर्मतम् ॥ ५ ॥  
 ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः प्रातर्हुत्वा तां सायमाहुतिम् ॥  
 प्रातर्होमस्तदेव स्यादेव एवोत्तरो विधिः ॥ ६ ॥  
 पौर्णमास्यत्यये हव्यं होता वा यदहर्भवेत् ॥  
 तदहर्जुहुयादेवममावास्यात्ययेऽपि च ॥ ७ ॥

अहूयमानेऽनश्वश्चेन्नयेत्कालं समाहितः ॥  
 सम्पन्ने तु यथा तत्र हूयते यदिहोच्यते ॥ ८ ॥  
 आहुत्यः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाहुतीः सकृत् ॥  
 मंत्रेण विधिवद्धृत्वाधिकमेवापरा अपि ॥ ९ ॥  
 यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् ॥  
 चतस्रस्तत्र विज्ञेयाः स्त्रीपाणि ग्रहणे यथा ॥ १० ॥  
 अप्यनाज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि बाहुतिः ॥  
 होतव्यात्र विकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥ ११ ॥  
 यद्यग्निरग्निनान्येन संभवेदाहितः कश्चित् ॥  
 अग्नये विविचय इति जुहुयाद्वा घृताहुतिम् ॥ १२ ॥  
 अग्नयेऽसुमते चैव जुहुयाद्वै घृतेर्न चेत् ॥  
 अग्नये शुचये चैव जुहुयाच्च दुरग्निना ॥ १३ ॥  
 गृहदारामिनामिस्तु यष्टव्यः क्षमामवां द्विजैः ॥  
 दावामिना च संसर्गे हृदयं यदि तप्पते ॥ १४ ॥  
 द्विर्भूतो यदि संसृज्येत्संसृष्टमुपशामयेत् ॥  
 असंसृष्टं जागरयेद्विरिशर्मैवमुक्तवान् ॥ १५ ॥  
 न स्वेग्नावन्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम् ॥  
 स्वर्गवासक्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते ॥ १६ ॥  
 अग्निस्तु नामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः ॥  
 नहि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति कश्चित् ॥ १७ ॥

( १८२ )

अष्टादशस्मृतयः ।

यस्याग्नावन्यहोमः स्यात्स वैश्वानरदैवतम् ॥  
चरुं निरुप्य जुहुयात्प्रायश्चित्तं तु तस्य तत् ॥ १८ ॥  
परेणामौ हुते स्वार्थं परस्यामौ हुते स्वयम् ॥  
पितृयज्ञात्पये चैव वैश्यदेवद्वयस्य च ॥ १९ ॥  
अनिष्टा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥  
भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥ २० ॥  
स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु ॥  
पिंडनोद्ग्रहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥ २१ ॥  
भूतप्रवाचने पत्नी यद्यसन्निहिता भवेत् ॥  
रजोरोगादिना तत्र कथं कुर्वति याज्ञिकाः ॥ २२ ॥  
महानसेऽन्नं या कुर्यात्सवर्णां तां प्रवाचयेत् ॥  
प्रणवाद्यपि वा कुर्यात्कात्यायनवचो यथा ॥ २३ ॥  
यज्ञवास्तुनि मुष्ट्यां च स्तंबे दर्भचटौ यथा ॥  
दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥ २४ ॥  
इति कात्यायनस्मृतावष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः खंडः १९.

निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यत्विजं तथा ॥  
प्रवसेत्कार्प्यवान्विप्रो वृथैव न चिरं कवित् ॥ १ ॥

मनसा नैत्यकं कर्म प्रवसन्नप्यतंद्रितः ॥

उपविश्य शुचिः सर्वं यथाकालमनुव्रजेत् ॥ २ ॥

पत्न्या चाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽग्निर्विनीतया ॥

सौभाग्यवित्तावैधव्यकामया भर्तृभक्तया ॥ ३ ॥

या वा स्याद्दीरसूरासामाज्ञासंपादिनी प्रिया ॥

दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ ४ ॥

दिनत्रयेण वा कर्म यथाज्येष्ठं स्वशक्तितः ॥

विभज्य सह वा कुर्युर्यथाज्ञानं च शास्त्रवत् ॥ ५ ॥

स्त्रीणां सौभाग्यतो ज्यैष्ठ्यं विद्यैव द्विजन्मनाम् ॥

नहि ख्यात्या न तपसा भर्ता तुष्यति योषिताम् ॥ ६ ॥

भर्तुरादेशवर्तिन्या यथोमा बहुभिर्ग्रतैः ॥

✓ अग्निश्च तोषितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥

विनयावनतापि स्त्री भर्तुर्या दुर्भगा भवेत् ॥

अमुत्रोमामिभर्तृणामवज्ञातिः कृता तथा ॥ ८ ॥

श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितिं तथा ॥

प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्मः स प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

पापिष्ठं दुर्भगामन्यं नम्रमुत्कृत्तनासिकम् ॥

प्रातरुत्थाय यः पश्येत्स कलैरुपयुज्यते ॥ १० ॥

पतिमुल्लंघ्य मोहास्त्री किं किं न नरकं व्रजेत् ॥

कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥ ११ ॥

( १८४ ) - अष्टादशस्मृतयः ।

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कात्र लोकान्समश्नुते ॥  
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥ १२ ॥  
सदारोऽन्यान्पुनर्दारान्कथंचित्कारणांतरात् ॥  
य इच्छेदमिमान्कर्तुं क होमोऽस्य विधीयते ॥ १३ ॥  
स्वेप्मावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥  
न ह्याहिताग्नेः स्वं कर्मालौकिकेऽपि विधीयते ॥ १४ ॥  
पडाहुतिकमन्येन जुहुयाद्भुवदर्शनात् ॥  
न ह्यात्मनोऽर्थ स्यात्तावद्यावन्न परिणीयते ॥ १५ ॥  
पुरस्ताच्चिविकल्पं य प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ॥  
ततः पडाहुतिकं शिष्टैर्यज्ञविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥  
इति कात्यायनस्मृतावेकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

विंशः खंडः २०.

असमक्षं तु दंपत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना ॥  
द्वयोरप्यसमक्षं हि भवेद्धुतमनर्थकम् ॥ १ ॥  
विहायामि सभार्यश्चेत्सीमामुल्लंघ्य गच्छति ॥  
होमकालात्यये तस्य पुनराधानमिष्यते ॥ २ ॥  
अरण्योः क्षयनाशामिदाहेष्वग्निं समाहितः ॥  
पालयेदुपशान्तेऽस्मिन्पुनराधानमिष्यते ॥ ३ ॥

ज्येष्ठा चेद्बहुभार्य्यस्य अतिचारेण गच्छति ॥  
 पुनराधानमत्रैक इच्छन्ति न तु गौतमः ॥ ४ ॥  
 दाहयित्वाग्निभिर्भार्य्या सदृशीं पूर्वसंस्थिताम् ॥  
 पात्रैश्चाथामिमादध्यात्कृतदारोऽविलंघितः ॥ ५ ॥  
 एवंवृत्तां सवर्णा स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारणीम् ॥  
 दाहयित्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६ ॥  
 द्वितीयां चैव यः पत्नीं दहेद्वैतानिकामिभिः ॥  
 जीवन्त्यां प्रथमायां तु ब्रह्मघ्नेन समं हि तत् ॥ ७ ॥  
 मृतायां तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत् ॥  
 ब्रह्मोज्झितं विजानीयाद्यश्च कामात्समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥  
 मृतायामपि भार्य्यायां वैदिकाग्निं न हि त्यजेत् ॥  
 उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत् ॥ ९ ॥  
 रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् ॥  
 ईजे यज्ञैर्बहुविधैः सह भ्रातृभिरच्छुतः ॥ १० ॥  
 यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्य्या कथंचन ॥  
 सा स्त्री संपद्यते तेन भार्या वास्य पुमान्भवेत् ॥ ११ ॥  
 भार्य्या मरणमापन्ना देशांतरगतापि वा ॥  
 अधिकारी भवेत्पुत्रो महापातकिनि द्विजे ॥ १२ ॥  
 मान्या चेन्निवृत्ते पूर्व भार्या पतिविमानिता ॥  
 त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥ १३ ॥

पूर्वैव योनिः पूर्वाष्टपुनराधानकर्मणि ॥  
 विशेषोत्राग्न्युपस्थानमाज्याहुत्यष्टकं तथा ॥ १४ ॥  
 कृत्वा व्याहृतिहोमान्तमुपतिष्ठेत् पावकम् ॥  
 अध्यायः केवलान्नेयः कस्तेजाभिरमानसः ॥ १५ ॥  
 अभिमर्दि अग्नत्रायाह्यमआयाहिवीतये ॥  
 तिस्रंऽग्निज्योतिरित्यामिंदूतममेमृडेति च ॥ १६ ॥  
 इत्यष्टावाहुर्तोडुंत्वा यथाविध्यनुपूर्वशः ॥  
 पूर्णाहुत्यादिकं सर्वमन्यत्पूर्ववदाचरेत् ॥ १७ ॥  
 अरण्योरल्पमप्यङ्गे यादृतिष्ठति पूर्वयोः ॥  
 न तावत्पुनराधानमन्याऽरण्योर्विधीयते ॥ १८ ॥  
 विनष्टस्रुवस्रुवं न्यवृजं प्रत्यवस्थलमुदर्चिषि ॥  
 प्रत्यग्रं च मुसलं प्रहरेज्जातवेदसि ॥ १९ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ विंशतितमः खण्डः ॥ २० ॥

### एकविंशः खंडः २१.

स्वयं होमासमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् ॥  
 तत्राप्यशक्तस्य ततः शयनाच्चोपवेशनम् ॥ १ ॥  
 हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद्गृही भवेत् ॥  
 प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्चच्छ्रुः पुनर्न वा ॥ २ ॥  
 दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् ॥  
 दक्षिणाशिरसं भूमौ वर्हिष्मत्यां निवेशयेत् ॥ ३ ॥

पृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम् ॥  
 चंदनोक्षितसर्वांगं सुमनोभिर्विभूषितम् ॥ ५ ॥  
 हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा च्छिद्रेषु सप्तसु ॥  
 मुखेष्वथापि धापैर्न निर्हरेशुः सुतादयः ॥ ५ ॥  
 आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् ॥  
 एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पर्य्युत्सृजेद्भुवि ॥ ६ ॥  
 अर्द्धमादहनं प्राप्त आसीनो दक्षिणामुखः ॥  
 सव्यं जान्वाच्य शनैः सतिले पिण्डदानवत् ॥ ७ ॥  
 अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्दारुचयं महत् ॥  
 भूपदेशे शुची देशे पश्चाच्चित्यादिलक्षणे ॥ ८ ॥  
 तत्रोत्तानं निपात्यैर्न दक्षिणाशिरसं मुखे ॥  
 आज्यपूर्णां स्रुचं दद्याद्दक्षिणाग्रां नसि भुवम् ॥ ९ ॥  
 पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीत्तराम् ॥  
 पार्श्वयोः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥ १० ॥  
 मुसलेन सह न्युब्जमन्तरूर्वोरुल्लखलम् ॥  
 जत्रौ विलीकमत्रैवमनश्रुनयनो विभोः ॥ ११ ॥  
 अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः ॥  
 अथाग्निं सव्यजान्वक्तो दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥ १२ ॥  
 अस्मात्त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥  
 असीं स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥ १३ ॥



एवं गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥  
 यश्चैनं दाहयेत् सोऽपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥ १४ ॥  
 यथा स्वायुधधृक् पाथो ह्यरण्यान्यपि निर्भयः ॥  
 अतिक्रम्यात्मनोऽभीष्टं स्थानमिष्टं च विन्दति ॥ १५ ॥  
 एवमेषोऽग्निमान्यज्ञपात्रायुधविभूषितः ॥  
 लोकानन्यानातिक्रम्य परं ब्रह्मैव विन्दति ॥ १६ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतावेकविंशतितमः खंडः ॥ २१ ॥

### द्वाविंशः खंडः २२.

अथानवेक्ष्य च चितां सर्वं एव शवस्पृशः ॥  
 स्नात्वा सचैलमाचम्य दद्युरस्योदकं स्थले ॥ १ ॥  
 गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनंतरम् ॥  
 दक्षिणाग्रान् रुशान्कृत्वा सतिलं तु पृथक्पृथक् ॥ २ ॥  
 एवं कृतोदकान्सम्यक्सर्वाञ्छाद्वलसंस्थितान् ॥  
 आप्लुत्य पुनराचान्तान्वदेष्टुस्तेऽनुयायिनः ॥ ३ ॥  
 मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राणवर्माणि ॥  
 धर्मं कुरुत यत्रेन यो वः सह गमिष्यति ॥ ४ ॥  
 मानुष्ये कदलीस्तंभे निःसारे सारमार्गणम् ॥  
 यः करोति स संभूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ५ ॥  
 गंग्री वसुमती नाशमुदधिर्देवतानि च ॥  
 केन प्रल्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥ ६ ॥

पंचधा संभृतः कायो यदि पंचत्वमागतः ॥  
 कर्माभेः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥ ७ ॥  
 सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः ॥  
 संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं हि जीवितम् ॥ ८ ॥  
 श्लेष्माश्रु बांधवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ॥  
 अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥  
 एवमुक्त्वा ब्रजेयुस्ते गृहांल्लघुपुरःसराः ॥  
 स्नानामिस्पर्शनाज्याशौः शुध्येयुरितरेतरैः ॥ १० ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ द्वाविंशतितमः खण्डः ॥ २२ ॥

### त्रयोविंशः खंडः २३.

एवमेवाहितामेस्तु पात्रन्यासादिकं भवेत् ॥  
 कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषः सूत्रचोदितः ॥ १ ॥  
 विदेशमरणेऽस्थानि ह्याहुत्याभ्यज्य सर्पिषा ॥  
 दाहयेदूर्णयाऽऽच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ २ ॥  
 अस्थामलाभे पर्णानि सकलान्युक्तयावृता ॥  
 भर्जयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥ ३ ॥  
 महापातकसंयुक्तो दैवात्स्यादमिमाम्यदि ॥  
 पुत्रादिः पालयेदमीन्युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ ४ ॥  
 प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि ॥  
 गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥

सादयेदुभयं वाप्सु ह्यद्र्योऽग्निरभवद्यतः ॥  
 पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ॥ ६ ॥  
 अनयैवावृता नारी दग्धप्राया व्यवस्थिता ॥  
 अग्निप्रदानमंत्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥ ७ ॥  
 अग्निर्नैव दहेद्भार्या स्वतंत्रा पतिता न चेत् ॥  
 तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगंतिके ॥ ८ ॥  
 अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थनां संचयनं भवेत् ॥  
 यस्तत्र विधिरादिष्ट ऋषिभिः सोऽधुनोच्यते ॥ ९ ॥  
 स्नानांतं पूर्ववत्कृत्वा गव्येन पयसा ततः ॥  
 सिंचेदस्थानि सर्वाणि प्राचीनावीत्यभापयन् ॥ १० ॥  
 शर्मापलांशशाखाभ्यामुद्धृत्योद्धृत्य भस्मनः ॥  
 आज्येनाभ्यज्य गव्येन सेचयेद्गंधवारिणा ॥ ११ ॥  
 मृत्पात्रसंपुटं कृत्वा सूत्रेण परिवेष्ट्य च ॥  
 श्वभ्रं खात्वा शुचौ भूमौ निखनेदक्षिणामुखः ॥ १२ ॥  
 पूरयित्वावटं पंकर्पिडशैवालसंयुतम् ॥  
 दत्त्वोपरि समं शेषं कुर्यात्पूर्वाह्नकर्मणा ॥ १३ ॥  
 एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते ॥  
 स्त्रीणामिवाग्निदानं स्यादधातोऽनुक्तमुच्यते ॥ १४ ॥  
 इति काल्यायनस्मृतौ ग्रंथोर्विशित्तमः खण्डः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः खण्डः २४.

सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ॥  
 होमः श्रोते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापि वा फलैः ॥ १ ॥  
 अकृतं होमयेत्स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ॥  
 कृतं वा होमयेदन्नमन्वारंभविधानतः ॥ २ ॥  
 कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम् ॥  
 ग्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥ ३ ॥  
 सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने ॥  
 एवमादिनिमित्तेषु होमयेदिति योजयेत् ॥ ४ ॥  
 न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं कश्चित् ॥  
 न दक्षिणात् परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥ ५ ॥  
 पितृर्प्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् ॥  
 अशीचं कर्मणोऽस्ते स्यात्स्वहं वा ब्रह्मचारिणः ॥ ६ ॥  
 श्राद्धमभिमतः कार्यं दाहादेकादशोऽहनि ॥  
 प्रत्याब्दिकं तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्व्वदा ॥ ७ ॥  
 द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं पाण्मासिके तथा ॥  
 सपिंडीकरणं चैव एतद्वै श्राद्धपोडशम् ॥ ८ ॥  
 एकाहेन तु पण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः ॥  
 न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां पाण्मासिके तदा ॥ ९ ॥

यानि पंचदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु ॥  
 एकस्मिन्नहि देयानि सपुत्रस्यैव सर्वदा ॥ १० ॥  
 न योपायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ॥  
 न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ॥ ११ ॥  
 एकादशेऽहि निर्वर्त्य अर्वांगदर्शाद्यथाविधि ॥  
 भ्रुकुबीताभिमान्पुत्रो मातापित्रोः सपिंडताम् ॥ १२ ॥  
 सपिंडीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् ॥  
 एकोद्विष्टेन विप्रिना दद्यादित्याह गौतमः ॥ १३ ॥  
 कर्पूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् ॥  
 प्रत्याद्विकं च शेषेषु पिंडाः स्युः षडिति स्थितिः ॥ १४ ॥  
 अर्घ्यक्षयोदके चैव पिंडदानेऽवनेजने ॥  
 तन्त्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ १५ ॥  
 ब्रह्मदंडादियुक्तानां येषां नास्त्यभिसत्क्रिया ॥  
 श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित् ॥ १६ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्विंशतितमः खंडः ॥ २४ ॥

### पंचविंशः खण्डः २५.

मंत्राम्नायेऽम इत्येतत्पंचकं लाघवार्थिभिः ॥  
 पठ्यते तत्प्रयोगे स्थान्मंत्राणामेव विंशतिः ॥ १ ॥  
 अमंः स्थाने वायुचन्द्रसूर्या बहुवदूह्य च ॥  
 समस्य पञ्चमीसूत्रे चतुश्चतुरिति श्रुतेः ॥ २ ॥

प्रथमे पञ्चके पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत् ॥  
 अपि पञ्चसु मन्त्रेषु इति यज्ञविदो विदुः ॥ ३ ॥  
 द्वितीये तु पतिघ्नी स्यादपुत्रेति तृतीयके ॥  
 चतुर्थे त्वपसञ्चेति इदमाहुतिर्विंशकम् ॥ ४ ॥  
 धृतिहोमे न पर्युज्याद्रोनामसु तथाष्टसु ॥  
 चतुर्थ्यामघ्न्य इत्येतद्रोनामसु हि हूयते ॥ ५ ॥  
 लताग्रपल्लवो गूढः शुंगेति परिकीर्त्यते ॥  
 पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मबंधुस्तथाऽश्वतः ॥ ६ ॥  
 शलादुनीलमित्युक्तं ग्रंथः स्तवक उच्यते ॥  
 कपुष्पिकाभितः केशा मूर्ध्नि पश्चात्कपुच्छलम् ॥ ७ ॥  
 श्वाविच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः ॥  
 तिलतण्डुलसम्पक्कः कृसरः सोऽभिधीयते ॥ ८ ॥  
 नामत्रेये मुनिवसुपिशाचा बहुवत्सदा ॥  
 यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्यातिथिदेवताः ॥ ९ ॥  
 आभेयाद्येऽथ सर्पाद्ये विशाखाद्ये तथैव च ॥  
 आपाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैव च ॥ १० ॥  
 द्वंद्वान्येतानि बहुवद्वक्षाणां जुहुयात्सदा ॥  
 द्वंद्वद्वयं द्विवच्छेपमवशिष्टान्यथैकवत् ॥ ११ ॥  
 देवतास्वपि हूयन्ते बहुवत्सर्वपित्तयः ॥ -  
 देवाश्च वसवश्चैव द्विपदेवाश्विनौ सदा ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि ॥  
 बाढभोमिति वा झूपात्तथैवानूपपालयेत् ॥ १३ ॥  
 सशिखं वपनं कार्यमास्त्रानाद्ब्रह्मचारिणा ॥  
 आशरीराविमोक्षाय ब्रह्मचर्य्यं न चेद्रवेत् ॥ १४ ॥  
 न गात्रोत्सादनं कुर्यादनापदि कदाचन ॥  
 जलक्रीडामलंकारान्ब्रती दंड इवाष्ठवेत् ॥ १५ ॥  
 देवतानां विपर्यासे जुहोतिषु कथं भवेत् ॥  
 सर्वं प्रायश्चित्तं हुत्वा क्रमेण जुहुयात्पुनः ॥ १६ ॥  
 संस्कारा अतिपत्येरन्स्वकालाच्चैक्यंचन ॥  
 हुत्वा तदैव कर्तव्या ये तूपनयनादयः ॥ १७ ॥  
 अनिष्टा नवयज्ञेन नवात्रं योऽत्यकामतः ॥  
 वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ १८ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ पंचविंशतितमः खंडः ॥ २५ ॥

### षड्विंशः खण्डः २६.

चरुः समशनीयो यस्तथा गोपज्ञकर्मणि ॥  
 वृषभोत्सर्जने चैव अश्वयज्ञे तथैव च ॥ १ ॥  
 श्रावण्यां वा प्रदोषे यः कृष्णारंभे तथैव च ॥  
 कथमेतेषु निर्वापा कथं चैव जुहोतयः ॥ २ ॥

देवतासंख्यया ग्राह्या निर्वापास्तु पृथक्पृथक् ॥  
 तूर्ण्णां द्विरेव गृह्णीयाद्भोमश्चापि पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥  
 यावतां होमनिर्वृत्तिर्भवेद्वा यत्र कीर्तिता ॥  
 शेषं चैव भवेत्किञ्चित्तावन्तं निर्वपेच्चरुम् ॥ ४ ॥  
 चरौ समशनीये तु पितृयज्ञे चरौ यथा ॥  
 होतव्यं मेक्षणे वान्य उपस्तीर्याभिघारितम् ॥ ५ ॥  
 कालः कात्यायनेनोक्तो विधिश्चैव समासतः ॥  
 वृषोत्सर्गो यतो नात्र गोभिलेन तु भाषितः ॥ ६ ॥  
 पारिभाषिक एव स्यात्कालो गोवाजियज्ञयोः ॥  
 अन्यस्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्य च ॥ ७ ॥  
 अथवा मार्गपाल्येऽहि कालो गोयज्ञकर्मणः ॥  
 नीराजनेऽहि वाश्वानामिति तत्रातरे विधिः ॥ ८ ॥  
 शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ॥  
 धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको घनिनः स्मृतः ॥ ९ ॥  
 आश्वयुज्यां तथा कृष्यां वास्तुकर्माणि याज्ञिकाः ॥  
 यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवं प्रचक्षते ॥ १० ॥  
 द्वे पंच द्वे क्रमेणैता हविराहुतयः स्मृताः ॥  
 शेषा आज्येन होतव्या इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥  
 पयो यदाज्यसंयुक्तं तत्तृपातकमुच्यते ॥  
 दध्येके तदुपासाद्य कर्त्तव्यः पायसश्चरुः ॥ १२ ॥



ग्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः ॥  
 यवाश्चोषधयः सप्त विपदं घ्नन्ति धारिताः ॥ १३ ॥  
 संस्काराः पुरुषस्यैते स्मर्यन्ते गौतमादिभिः ॥  
 अतोष्टकादयः कार्याः सर्वकालममोदिनाम् ॥ १४ ॥  
 सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात्कर्माणि यो द्विजः ॥  
 स पंक्तिपावनो भूत्वा लोकान्मैति घृतश्च्युतः ॥ १५ ॥  
 एकाहमपि कर्मस्थो योऽग्निशुश्रूपकः शुचिः ॥  
 नयत्यत्र तदेवास्य शताहं दिवि जायते ॥ १६ ॥  
 यस्त्वाधायामिमाशास्य देवादीन्नेभिरिष्टवान् ॥  
 निराकर्ताऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥ १७ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चविंशतितमः खण्डः ॥ २६ ॥

### सप्तविंशः खण्डः २७.

यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत् ॥  
 अमावास्यां द्वितीयं यदन्वाहार्यं तदुच्यते ॥ १ ॥  
 एकसाध्येषु बर्हिःषु न स्यात्परिसमूहनम् ॥  
 नौदगासादनं चैव क्षिप्रहोमां हि ते मताः ॥ २ ॥  
 अभावे ग्रीहियवयोर्दध्ना वा पयसापि वा ॥  
 तदभावे यवाग्वा वा जुहुयादुदकेन वा ॥ ३ ॥  
 रौद्रे तु राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिसारिकम् ॥  
 उक्ता मंत्रं स्पृशेदाप आलभ्यात्मानमेव च ॥ ४ ॥

यजनोपेऽद्वि सोमश्चेद्धारुण्यां दिशि दृश्यते ॥  
 तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्विजातये ॥ ५ ॥  
 लवणं मधु मांसं च सारांशो येन हूयते ॥  
 उपवासेन भुञ्जीत नोरु रात्रौ न किञ्चन ॥ ६ ॥  
 स्वकाले सायमाहुत्या अप्राप्तौ होतृहव्ययोः ॥  
 प्राक्प्रातराहुतेः कालः प्रायश्चित्ते हुते सति ॥ ७ ॥  
 प्राक्सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः ॥  
 प्राक्पौर्णमासादर्शस्य प्राग्दर्शादितरस्य तु ॥ ८ ॥  
 वैश्वदेवे त्वतिक्रान्ते अहोरात्रमभोजनम् ॥  
 प्रायश्चित्तमथो हुत्वा पुनः सन्तनुयाद्व्रतम् ॥ ९ ॥  
 होमद्वयात्यये दर्शपौर्णमा सात्यये तथा ॥  
 पुनरेवामिमादध्यादिति भार्गवशासनम् ॥ १० ॥  
 अनृचो माणवो ज्ञेय एणः कृष्णमृगः स्मृतः ॥  
 रुरुर्गौरमृगः प्रोक्तस्तंबलः शोण उच्यते ॥ ११ ॥  
 केशान्तिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः ॥  
 ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासांतिको विशः ॥ १२ ॥  
 ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥  
 अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनमिद्वृषिताः ॥ १३ ॥  
 गौर्विशिष्टतमा विप्रेर्वेदेष्वपि निगद्यते ॥  
 न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्गौर्वर उच्यते ॥ १४ ॥

येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ॥  
 वरस्तत्र भवेद्दानमपि चाऽऽच्छादयेद्गुरुम् ॥ १५ ॥  
 अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ॥  
 प्रमादिकं श्रुतौ यत्स्याद्यातयामत्वकारि तत् ॥ १६ ॥  
 प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्ग विधिवद्विजैः ॥  
 क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत् ॥ १७ ॥  
 अपातयामैश्छन्दोभिर्यत्कर्म क्रियते द्विजैः ॥  
 क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारकम् ॥ १८ ॥  
 गायत्रीश्च सगायत्रां चार्हस्पत्यमिति त्रिकम् ॥  
 शिष्येभ्योऽनूच्य विधिषुदुपाकुर्यात्ततः श्रुतिम् ॥ १९ ॥  
 छन्दसामेकविंशानां संहितायां यथाक्रमम् ॥  
 तच्छन्दस्काभिरेवर्गिभिराद्याभिर्होम इष्यते ॥ २० ॥  
 पर्वभिश्चैव गानेषु ब्राह्मणेपूतरादिभिः ॥  
 अङ्गेषु चर्चामन्त्रेषु इति षष्टिर्जुहोतयः ॥ २१ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतौ सप्तविंशतितमः खण्डः ॥ २७ ॥

### अष्टाविंशः खण्डः २८.

अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ॥  
 भृष्टास्तु ब्रीहयो लाजा घटाः खाण्डिक उच्यते ॥ १ ॥  
 नाधीयीत रहस्यानि सान्तराणि विचक्षणः ॥

नचोपनिषदश्चैव षण्मासान्दक्षिणायनान् ॥ २ ॥  
 उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्मवित् ॥  
 उत्सर्गश्चैक एवैषां तैष्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥ ३ ॥  
 अजातव्यञ्जनाऽलोम्नी न तथा सह संविशेत् ॥  
 अयुगूः काकबन्ध्याया जाता तां न विवाहयेत् ॥ ४ ॥  
 संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः ॥  
 स्मार्त्तं कर्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्युणोदितः ॥ ५ ॥  
 यस्यां दिशि बलि दद्यात्तामेवाभिमुखो विशेत् ॥  
 श्रवणाकर्मणि भवेद्यच्च कर्म न सर्वदा ॥ ६ ॥  
 बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनन्तथा ॥  
 प्रत्यहं न भवेयातामुल्मुकन्तु भवेत्सदा ॥ ७ ॥  
 पृषातकप्रेषणयोर्नवस्य हविषस्तथा ॥  
 शिष्टस्य प्राशने मन्त्रस्तत्र सर्वेऽधिकारिणः ॥ ८ ॥  
 ब्राह्मणानामसान्निध्ये स्वयमेव पृषातकम् ॥  
 अवेक्षेद्भविषः शेषं नवयज्ञेऽपि भक्षयेत् ॥ ९ ॥  
 सफला बदरीशाखा फलवत्यभिधीयते ॥  
 घना विसिकताशंकाः स्मृता जातशिलास्तुताः १० ॥  
 नष्टो विनष्टो मणिकः शिलानाशे तथैव च ॥  
 तदैवाहत्य संस्कार्यो नापेक्षेदाग्रहायणीम् ॥ ११ ॥  
 श्रवणाकर्म लुप्तं चेत्कथञ्चित्सूतकादिना ॥

आग्रहायणिकं कुट्याद्वलिवर्जमशेषतः ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वस्वस्तरशापी स्यान्मासमर्द्धमथाऽपि वा ॥

सप्तरात्रं त्रिरात्रं वा एकां वा सद्य एव वा ॥ १३ ॥

नोर्द्ध मंत्रप्रयोगः स्यान्नाम्पगारं नियम्यते ॥

नाहतास्तरणं चैव न पार्श्वं चापि दक्षिणम् ॥ १४ ॥

दृढश्चेदाग्रहायण्यामावृत्त्या वापि कर्मणः ॥

कुंभं मंत्रवदासिंचेत्प्रतिकुंभमृचं पठेत् ॥ १५ ॥

अल्पानां यो विघातः स्यात्स बाधो बहुभिः स्मृतः ॥

प्राणासम्मित इत्यादि वसिष्ठबोधितं यथा ॥ १६ ॥

विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् ॥

तुल्यप्रमाणकत्वे तु न्याय एवं प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥

त्रैयंबकं करतलमपूपा मंडकाः स्मृताः ॥

पालाशगोलकाश्चैव लोहचूर्णं च चीवरम् ॥ १८ ॥

स्पृशन्ननामिकाग्रेण कचिदालोकयन्नपि ॥

अनुमंत्रणीयं सर्वत्र सदैवमनुमंत्रयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ अष्टाविंशतितमः खण्डः ॥ २८ ॥

### एकोनत्रिंशः खंडः २९.

क्षालनं दर्भकूर्चेन सर्वत्र स्रोतसां पशोः ॥

नूष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वपार्ये प्राणदारुणि ॥ १ ॥

सप्त तावन्मूर्धन्यानि तथा स्तनचतुष्टयम् ॥  
 नाभिः श्रोणिरपानं च गोक्षोतांसि चतुर्दश ॥ २ ॥  
 क्षुरो मांसावदानार्थः कृत्स्ना स्विष्टकृदावृता ॥  
 वषामादाय जुहुयात्तत्र मंत्रं समापयेत् ॥ ३ ॥  
 हंजिह्वाक्रोडमस्थोनि यकृदृक्कौ गुदं स्तनाः ॥  
 श्रोणिस्कंधसटापार्श्वं पश्वंगानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥  
 एकादशानामंगानामवदानानि संख्यया ॥  
 पार्श्वस्य वृक्कसक्थनोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥ ५ ॥  
 चरितार्था श्रुतिः कार्य्या यस्मादप्यनुकल्पशः ॥  
 अतोऽष्टर्चेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥ ६ ॥  
 अवदानानि यावन्ति क्रियेरन्प्रस्तरे पशोः ॥  
 तावन्तः पायसान्पिंडान्पश्वभावेऽपि कारयेत् ॥ ७ ॥  
 ऊहनव्यंजनार्थं तु पश्वभावेऽपि पायसम् ॥  
 सद्रवं श्रपयेत्तद्वदन्वष्टक्येऽपि कर्मणि ॥ ८ ॥  
 प्राधान्यं पिंडदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ॥  
 गयादौ पिंडमात्रस्य दीयमानत्वदर्शनात् ॥ ९ ॥  
 भोजनस्य प्रधानत्वं वदन्त्यन्ये महर्षयः ॥  
 ब्राह्मणस्य परीक्षायां महायज्ञप्रदर्शनात् ॥ १० ॥  
 आमश्चाद्भविधानस्य विना पिंडैः क्रियाविधिः ॥  
 तदालभ्याप्यनध्यायविधानश्रवणादपि ॥ ११ ॥

विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद्वृद्धि स्थितम् ॥  
 प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्तस्मादेष समुच्चयः ॥ १२ ॥  
 प्राचीनावीतिना कार्प्य पित्र्येषु प्रोक्षणं पशोः ॥  
 दक्षिणोद्वासनान्तं च चरोर्निर्वपणादिकम् ॥ १३ ॥  
 सत्रयश्चावदानानां प्रधानार्थो नहीतरः ॥  
 प्रधानं हवनं चैव शेषं प्रकृतिवद्भवेत् ॥ १४ ॥  
 द्वीपमुन्नतमाख्यातं शादा चैवेष्टका स्मृता ॥  
 कीर्लिनं सजलं प्रोक्तं दूरस्वातोदको मरुः ॥ १५ ॥  
 द्वारे गवाक्षस्तम्भैः कर्द्दमभित्यन्तकोणवेधैश्च ॥  
 नेष्टं वास्तुद्वारं विद्वमनाक्रांतमार्यैश्च ॥ १६ ॥  
 वर्षा गमाविति घोर्होश्चलनश्चेति यवांस्तथा ॥  
 असावित्यत्र नामोक्त्वा जुहुयात्क्षिप्रहोमवत् ॥ १७ ॥  
 साक्षतं सुमनोयुक्तमुदकं दधिसंयुतम् ॥  
 अर्घ्यं दधिमधुभ्यां च मधुपर्कं विधीयते ॥ १८ ॥  
 कांस्येनैवार्हणीयस्य नितयेदर्घ्यमंजली ॥  
 कांस्यापिधानं कांस्यस्थं मधुपर्कं समर्पयेत् ॥ १९ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतावेकोनत्रिंशत्तमः खण्डः ॥ २९ ॥  
 इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे तृतीयः  
 प्रपाठकः समाप्तः ॥ ३ ॥  
 इति कात्यायनस्मृतिः समाप्ता ॥ ९ ॥

॥ श्रीः ॥

## अथ बृहस्पतिस्मृतिः १०.



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ बृहस्पतिस्मृतिप्रारंभः ॥

इष्टा कतुशतं राजा समाप्तवरदक्षिणम् ॥

भगवन्तं गुरुं श्रेष्ठं पर्यपृच्छद् बृहस्पतिम् ॥ १ ॥

भगवन्केन दानेन सर्वतः सुखमेधते ॥

यदक्षयं महार्थं च तन्मे ब्रूहि महन्तम ॥ २ ॥

एवमिद्रेण पृष्ठोऽसौ देवदेवपुरोहितः ॥

वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्पतिरुवाच ह ॥ ३ ॥

सुवर्णदानं भूदानं गोदानं चैव वासव ॥

एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिं रत्नं च वासव ॥

सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥

फालकृष्ठां मर्हां दत्त्वा सत्त्वाजां सस्यमालिनीम् ॥

यावत्सूर्यकृता लोकास्तावत्स्वर्गे महीयते ॥ ६ ॥

यत्किञ्चित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः ॥

अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडान्निवर्त्तनम् ॥



दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥

सवृषं गोसहस्रं तु यत्र तिष्ठत्यतंद्रितम् ॥

बालवत्साप्रसूतानां तद्वोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९ ॥

विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेन्द्रियाय ॥

यावन्मही तिष्ठति सागरांता तावत्फलं तस्य भवेदनंतम् ॥ १० ॥

यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महोत्तले ॥

एवं कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमर्जिताः ॥ ११ ॥

यथाप्सु पतितः शक्र तैलविंदुः प्रसर्पति ॥

एवं भूम्याः कुतं दानं सस्येसस्ये प्ररोहति ॥ १२ ॥

अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ॥

स नरः सर्वदो भूष यो ददाति वसुंधराम् ॥ १३ ॥

यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी ॥

स्वयंदत्ता सहस्राक्ष भूमिर्भरति भूमिदम् ॥ १४ ॥

शंखं भद्रासनं छत्रं चरस्थावरवारणाः ॥

भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरंदर ॥ १५ ॥

आदित्या वरुणो वह्निर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥

शूलपाणिश्च भगवानभिनंदन्ति भूमिदम् ॥ १६ ॥

आस्फोटयन्ति पितरः प्रवल्गन्ति पितामहाः ॥

भूमिदाता कुले जातः स च त्राता भविष्यति ॥ १७ ॥

त्रीण्याद्वुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥

तारयंतीह दातारं अपवापनदोहनैः ॥ १८ ॥  
 प्रावृता वस्त्रदा यांति नम्रा यांति त्ववस्त्रदाः ॥  
 तृप्ता यांत्यन्नदातारः क्षुधिता यांत्यन्नदाः ॥ १९ ॥  
 कांक्षंति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ॥  
 गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ २० ॥  
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥  
 यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ २१ ॥  
 लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पांडुरः ॥  
 श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥ २२ ॥  
 नीलः पांडुरलांगूलस्तृणमुद्धरते तु यः ॥  
 पष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥ २३ ॥  
 यस्य शृंगगतं पंकं कूलात्तिष्ठति चोद्धृतम् ॥  
 पितरस्तस्य चाश्रंति सोमलोकं महाश्रुतिम् ॥ २४ ॥  
 पृथोर्यदोर्दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च ॥  
 अन्येषां च नरेंद्राणां पुनरन्यो भविष्यति ॥ २५ ॥  
 बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥  
 यस्य यस्य यथा भूमिस्तस्य तस्य तथा फलम् ॥ २६ ॥  
 | यस्तु ब्रह्मन्नः स्त्रीघ्नो वा यस्तु वै पितृघातकः ॥  
 गर्वाशतसहस्राणां हंता भवति दुष्कृती ॥ २७ ॥  
 स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुंधराम् ॥

श्वविघ्नायां कृमिभूत्वा पितृभिः सह पच्यते ॥ २८ ॥

आक्षेप्ता चानुमता च तमेव नरकं व्रजेत् ॥

भूमिदो भूमिहर्ता च नापरं पुण्यपापयोः ॥

ऊर्ध्वं चाधोऽवतिष्ठेत् यावदाभूतसंग्रहम् ॥ २९ ॥

अप्तेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥

लोकास्त्रयस्तेन भवंति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात् ३०

पडशीतिसहस्राणां योजनानां वसुंधरा ॥

स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ॥

उभौ तौ पुण्यकर्माणीं नियतं स्वर्गगामिनौ ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥

हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ३३ ॥

यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥

तस्य देहादियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

अन्यायेन हृता भूमिर्येनैरपहारिता ॥

हरंतो हारयंतश्च हन्युरासप्तमं कुलम् ॥ ३५ ॥

हरते हारयेद्यस्तु मंदबुद्धिस्तमोवृतः ॥

स बद्धो वारुणैः पार्श्वैस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥ ३६ ॥

असुभिः पतितैस्तेषां दानानामवकीर्तनम् ॥

ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हन्ति त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३७ ॥

वापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेन च ॥  
 गवः कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥  
 गामेकां स्वर्णमेके वा भूमेरप्यर्द्धमंगुलम् ॥  
 हरन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥  
 द्रुतं दत्तं तपोधीतं यत्किञ्चिद्धर्मसंचितम् ॥  
 अर्धांगुलस्य सीमायां हरणेन प्रणश्यति ॥ ४० ॥  
 गोवीथीं ग्रामस्थ्यां च शमशानं गोपितं तथा ॥  
 संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४१ ॥  
 ऊपरे निर्जले स्थाने प्रास्तं सस्यं विवर्जयेत् ॥  
 जलाधारस्य कर्तव्यो व्यासस्य वचनं यथा ॥ ४२ ॥  
 पंच कन्यानृतं हन्ति दश हन्ति गवानृतम् ॥  
 शतमश्वानृतं हन्ति सहस्रं पुरुषानृतम् ॥ ४३ ॥  
 हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥  
 सर्वं भूम्यनृतं हन्ति मास्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ४४ ॥  
 ब्रह्मस्वे न रतिं कुर्यात्प्राणैः कंठगतैरपि ॥  
 अनौपधमभैषज्यं विषमेतद्बलाहलम् ॥ ४५ ॥  
 न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥  
 विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥ ४६ ॥  
 लोहचूर्णाश्मचूर्णं च विषं च जरयेन्नरः ॥  
 ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ४७ ॥

मन्युप्रहरणा विप्रा राजानः शस्त्रपाणयः ॥  
 शस्त्रमेकाकिनं हन्ति ब्रह्ममन्युः कुलत्रयम् ॥ ४८ ॥  
 मन्युप्रहरणां विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः ॥  
 चक्रात्तीव्रतरो मन्युस्तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ॥ ४९ ॥  
 अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैव च ॥  
 मन्युदग्धस्य विप्राणामंकुरो न प्ररोहति ॥ ५० ॥  
 तेजसामिश्र दहति सूर्यो दहति रश्मिना ॥  
 राजा दहति दण्डेन विप्रो दहति मन्युना ॥ ५१ ॥  
 ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ॥  
 तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्माविनाशनम् ॥ ५२ ॥  
 ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ॥  
 गुरुमित्रहिरण्यं च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् ॥ ५३ ॥  
 ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ॥  
 प्रच्छादयति तच्छिद्रमप्यत्र तु विसर्पति ॥ ५४ ॥  
 ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साधनानि बलानि च ॥  
 संग्रामे तानि लीयन्ते सिकतासु यथोदकम् ॥ ५५ ॥  
 श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ॥  
 संतुष्टाय विनीताय सर्वभूताहिताय च ॥ ५६ ॥  
 वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥  
 ईदृशाय सुरभेष्ठ यदत्तं हि तदक्षयम् ॥ ५७ ॥

आमपात्रेऽथान्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥  
 विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति ॥ ५८ ॥  
 एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥  
 अविद्वान्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥ ५९ ॥  
 यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ॥  
 बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ६० ॥  
 कुलं तारयते धीरः सप्तसप्त च वासव ॥ ६१ ॥  
 यस्तडागं नवं कुर्यात्पुराणं वापि खानयेत् ॥  
 स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ६२ ॥  
 वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च ॥  
 पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौक्तिकं फलम् ॥ ६३ ॥  
 निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ॥  
 स दुर्गविषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥  
 एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम ॥  
 कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥ ६५ ॥  
 दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स भवेन्नरः ॥  
 प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विंदति ॥ ६६ ॥  
 कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ॥  
 ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥ ६७ ॥

भूमिर्गावस्तथा दाराः प्रसह्य द्वियते यद्वा ॥  
 न चावेदयते यस्तु तमाहुर्वैद्यघातकम् ॥ ६८ ॥  
 निवेदितश्च राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युदीपितः ॥  
 न निवारयते यस्तु तमाहुर्वैद्यघातकम् ॥ ६९ ॥  
 उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ॥  
 मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः ॥ ७० ॥  
 धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ॥  
 रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥  
 फलमूलांशनात्पूजा स्वर्गस्सत्येन लभ्यते ॥  
 प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वं च सुखमश्नुते ॥ ७२ ॥  
 गवाह्यः शक्र दीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ॥  
 स्त्रियस्त्रिपवणस्त्रायो वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ ७३ ॥  
 नित्यस्त्रायी भवेदर्कः संध्ये द्वे च जपन्दिजः ॥  
 नवं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् ॥ ७४ ॥  
 अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥  
 रसनाप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विंदति ॥ ७५ ॥  
 नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ॥  
 सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ॥ ७६ ॥  
 वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः ॥  
 अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्पृष्टसर्वकामागमास्तथा ॥ ७७ ॥

उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च वासव ॥  
 कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्यानाद्विशिष्यते ॥ ७८ ॥  
 अर्धव्यस्य सर्ववेदान्वै सद्यो दुःखात्प्रमुच्यते ॥  
 पावनं चरते धर्मं स्वर्गलोके महीयते ॥ ७९ ॥  
 बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठन्ति द्विजातयः ॥  
 चत्वारि तेषां वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ८० ॥  
 इति श्री बृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्र समाप्तम् ॥ १० ॥





॥ श्रीः ॥

## पाराशरस्मृतिः ११.

प्रथमः खंडः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ पाराशरस्मृतिप्रारंभः ॥

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ॥

व्यासमेकोग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥

मातुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे ॥

शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽन्यर्कसन्निभः ॥

प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ॥ ३ ॥

न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्प्रहम् ॥

अस्मत्पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽब्रुवत् ॥ ४ ॥

ततस्त ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकाक्षिणः ॥

ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गत्वा धंदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥

नानापुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलंकृतम् ॥

नदीप्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥

मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवतायनाश्रितम् ॥

यक्षगंधर्वसिद्धैश्च नृत्यगीतैरलंकृतम् ॥ ७ ॥

तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ॥  
 सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥  
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ॥  
 प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥  
 अथ संतुष्टहृदयः पराशरमुहामुनिः ॥  
 आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुंगवः ॥ १० ॥  
 कुशलं सम्यगित्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यनंतरम् ॥  
 यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल ॥ ११ ॥  
 धर्मं कथय मे तात अनुग्राह्यो ह्यहं तव ॥  
 श्रुता मे मानवा धर्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा ॥ १२ ॥  
 गार्गीया गौतमीयाश्च तथा चौशनसाः स्मृताः ॥  
 अत्रेर्विष्णोश्च संवर्तादक्षादंगिरसस्तथा ॥ १३ ॥  
 शातातपाच्च हारीताद्याज्ञवल्क्यास्तथैव च ॥  
 आपस्तंबकृता धर्माः शंखस्य लिखितस्य च ॥ १४ ॥  
 कात्यायनकृताश्चैव तथा भाचेतसान्मुनेः ॥  
 श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्था मे न विस्मृताः ॥ १५ ॥  
 अस्मिन्मन्वन्तरे धर्मा कृतत्रेतादिके युगे ॥  
 सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ॥ १६ ॥  
 चातुर्वर्ण्यसमाचारं किञ्चित्साधारणं वद ॥  
 चतुर्णामपि वर्णानां कर्तव्यं धर्मकोविदेः ॥ १७ ॥

ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥  
 व्यासवाक्यावसानेषु मुनिमुख्यः पराशरः ॥ १८ ॥  
 धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥  
 वक्ष्यमाणधर्मतत्त्वग्रहणाय श्रोतृसावधानतां विधत्ते ॥  
 शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयस्तथा ॥ १९ ॥  
 कल्पे कल्पे क्षेये सत्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २० ॥  
 श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा ॥  
 न कश्चिद्वेदकर्ता च वेदं स्मृत्वा चतुर्मुखः ॥ २१ ॥  
 तथैव धर्मान्स्मरति मनुः कल्पांतरेऽंतरे ॥  
 अन्यं कृतयुगे धर्मास्त्रितायां द्वापरे युगे ॥ २२ ॥  
 अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपाऽनुसारतः ॥  
 तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ २३ ॥  
 द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे ॥  
 कृते तु मानवा धर्मास्त्रितायां गौतमाः स्मृताः ॥ २४ ॥  
 द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥  
 त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ २५ ॥  
 द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥  
 कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनिन च ॥ २६ ॥  
 द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥  
 कृते तात्क्षानिकः शापस्त्रितायां दशभिर्दिनैः ॥ २७ ॥

द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ॥

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ॥ २८ ॥

द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् ॥ २९ ॥

अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥

जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च ॥ ३० ॥

| जिताश्चोरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥

सीदन्ति चाऽभिहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन्कलियुगे सदा ॥

कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिताः ॥ ३२ ॥

द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः ॥

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च य द्विजाः ॥ ३३ ॥

तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा इह त द्विजाः ॥

युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ३४ ॥

पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥

अहमद्यैव तत्सर्वमनुस्मृत्य ब्रवीमि वः ॥ ३५ ॥

चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वन्तु ऋषिपुंगवाः ॥

पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ३६ ॥

चितितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ॥ ३७ ॥

आचारध्वष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥  
 पद्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥  
 हुतशेषं तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ३८ ॥  
 संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ॥  
 आतिथ्यं वैश्वदेवं च पद्कर्माणि दिनेदिने ॥ ३९ ॥  
 इष्टो वा यदि वा द्वेष्टो भूयः पण्डित एव वा ॥  
 संप्राप्तो वैश्वदेवांते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ४० ॥  
 दूराच्चोपगतं श्रांतं वैश्वदेव उपास्थितम् ॥  
 अतिथिं तं विजानीयात्तातिथिः पूर्वमागतः ॥ ४१ ॥  
 नैकग्रामीणमतिथिं संगृहीत कदाचन ॥  
 अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥  
 अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ॥  
 तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ४३ ॥  
 श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रभोत्तरेण च ॥  
 गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद्बृही ॥ ४४ ॥  
 अतिथिर्यस्य भद्राशो गृहात्मतिनिवर्तते ॥  
 पितरस्तस्य नाश्रंति दश वर्षाणि पंच च ॥ ४५ ॥  
 काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेन च ॥  
 अतिथिर्यस्य भद्राशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥ ४६ ॥

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ॥  
 सुक्षेत्रे च सुपात्रे च क्षुप्तं दत्तं न नश्यति ॥ ४७ ॥  
 न पृच्छेद्भोगचरणे न स्वाध्यायं श्रुतं तथा ॥  
 हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः ॥ ४८ ॥  
 अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा ॥  
 वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वं दिने दिने ॥ ४९ ॥  
 वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ॥  
 उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ५० ॥  
 यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥  
 तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥  
 दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिग्राह्य ब्रह्मचारिणाम् ॥  
 इच्छया च ततो दद्याद्भिभवे सत्यवारितम् ॥ ५२ ॥  
 यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात्पुनर्जलम् ॥  
 तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ ५३ ॥  
 यस्य च्छत्रं हयश्चैव कुंजरारोहमृद्धिमत् ॥  
 ऐंद्रस्थानमुपासीत तस्मात्तं न विचारयेत् ॥ ५४ ॥  
 वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥  
 नहि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ५५ ॥  
 अकृत्वा वैश्वदेवं तु ये भुञ्जन्ते द्विजातयः ॥  
 तेपामन्नं न भुञ्जीत काकयोनिं व्रजन्ति ते ॥ ५६ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जते ये द्विजाधमाः ॥  
 सर्वे ते निष्कला ज्ञेयाः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ ५७ ॥  
 वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः ॥  
 सर्वे ते नरकं यांति काकयोनौ व्रजन्ति च ॥ ५८ ॥  
 शिरो वेष्ट्य तु यो भुंक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः ॥  
 वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षोसि भुञ्जते ॥ ५९ ॥  
 यतये काञ्चनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे ॥  
 चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥  
 शुक्लवस्त्रं च यानं च तांबूलं धातुमेव च ॥  
 प्रतिगृह्य कुलं हन्यात्प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६१ ॥  
 चोरो वा यदि चंडालः शत्रुर्वा पितृघातकः ॥  
 वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ६२ ॥  
 न गृह्णाति तु यो विप्रो अतिथिं वेदपारगम् ॥  
 अदत्तं चान्नपानं तु भुक्त्वा भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ ६३ ॥  
 ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुपममकंदकम् ॥  
 वापयेत्सर्वधीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥ ६४ ॥  
 सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे नित्तिपेद्धनम् ॥  
 सुक्षेत्रे च सुपात्रे च क्षुप्तं तत्र विनश्यति ॥ ६५ ॥  
 अम्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ॥  
 तं ग्रामं दण्डयेद्वाजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥ ६६ ॥

क्षत्रियो हि प्रजा रक्षञ्छस्त्रपाणिः प्रदंडवान् ॥  
 निजस्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥ ६७ ॥  
 न श्रीः कुलक्रमायाता भूपणोल्लिखिताऽपि वा ॥  
 खड्गेनाक्रम्य भुंजीत वरिभोग्यां वसुंधराम् ॥ ६८ ॥  
 पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ॥  
 मालाकार इवाऽरामे न यथांगारकारकः ॥ ६९ ॥  
 लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् ॥  
 कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहता ॥ ७० ॥  
 शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते ॥  
 अन्यथा कुरुते किञ्चित्तद्रवेत्तस्य निष्फलम् ॥ ७१ ॥  
 लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ॥  
 न दुप्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥ ७२ ॥  
 विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥  
 कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥  
 कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ॥  
 वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ॥ ७४ ॥  
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



## द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ॥  
 सधर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥  
 तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पाराशरवचो यथा ॥  
 पट्टकर्मसहितो विप्रः कृषिकर्मः च कारयेत् ॥ २ ॥  
 क्षुधितं तृपितं श्रांतं बलीवर्द्धं न योजयेत् ॥  
 हीनांगं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥ ३ ॥  
 स्थिरांगं नीरुजं तृप्तं सुनर्दं पण्डवर्जितम् ॥  
 वाहयेद्विषसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥  
 जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् ॥  
 एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्भोजयेत्स्नातकान्द्विजः ॥ ५ ॥  
 स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ॥  
 निर्वपेत्पंचयज्ञांश्च ऋतुदीक्षां च कारयेत् ॥ ६ ॥  
 तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समाः ॥  
 विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ॥ ७ ॥  
 घ्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ॥  
 अष्टागवं धर्महलं पद्मवं वृत्तिलक्षणम् ॥ ८ ॥  
 चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत् ॥  
 द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥

पद्मं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् ॥  
 न याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विजः ॥ १० ॥  
 दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥  
 संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥ ११ ॥  
 अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लांगली ॥  
 पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ॥ १२ ॥  
 अदाता कर्षकश्चैव पंचैते समभागिनः ॥  
 कंडनी पेपणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी ॥ १३ ॥  
 पंचसूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्तते ॥  
 वैश्वदेवो बलिर्भिक्षा गोघ्रासो दंतकारकः ॥ १४ ॥  
 गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्सूनादोषैर्न लिप्यते ॥  
 वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कुमिकीटकान् ॥ १५ ॥  
 कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 यो न दद्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ॥ १६ ॥  
 स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥  
 राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकाविंशकम् ॥ १७ ॥  
 विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 क्षत्रियोगपि कृपिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८ ॥  
 वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृपिवाणिज्यशिल्पकम् ॥  
 विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूपयोज्झिताः ॥ १९ ॥

भवंत्यल्पायुपस्ते वै निरयं यांत्यसंशयम् ॥  
 चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥ २० ॥  
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ॥  
 दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः भेतसूतके ॥ १ ॥  
 क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः ॥  
 शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥  
 उपासने तु विप्राणामंगशुद्धिश्च जायते ॥  
 ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शा विधीयते ॥ ३ ॥  
 जातौ विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥  
 वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥  
 एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योगमिवेदसमन्वितः ॥  
 त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥  
 जन्मकर्मपरिभ्रष्टः प्रन्ध्योपासनवर्जितः ॥  
 नामचारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥  
 अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका ॥  
 दशरात्रेण संशुद्ध्येद्भूमिष्ठं च गवोदकम् ॥ ७ ॥

एकपिंडास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः ॥  
 जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८ ॥  
 तावत्तत्सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ॥  
 दायाद्विच्छेदमाप्नोति पंचमो वात्मवंशजः ॥ ९ ॥  
 चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पाणिशाः पुंसि पंचमे ॥  
 षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥  
 भृग्वभिमरणे चैव देशांतरमृते तथा ॥  
 बाले प्रेते च संन्यस्तं सद्यः शौचं विधीयते ॥ ११ ॥  
 देशांतरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि ॥  
 न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥  
 देशांतरगतो विप्रः प्रयासात्कालकारितात् ॥  
 देहनाशमनुप्राप्तस्तियिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥  
 कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥  
 उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ १४ ॥  
 अजातदंता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःमृताः ॥  
 न तेषामभिसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥  
 यदि गर्भा विपद्येत स्रवते चापि योपितः ॥  
 यावन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥  
 आचतुर्थोद्वेत्स्त्रावः पातः पंचमषष्ठयोः ॥  
 अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यादश्राहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥

भवंत्यल्पायुपस्ते वै निरयं यांत्यसंशयम् ॥  
 चतुर्णामपि वर्णानामेव धर्मः सनातनः ॥ २० ॥  
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ॥  
 दिनत्रयेण शुद्ध्यति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥ १ ॥  
 क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः ॥  
 शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥  
 उपासने तु विप्राणामंगशुद्धिश्च जायते ॥  
 ब्राह्मणानां प्रसूतो तु देहस्पर्शो विधीयते ॥ ३ ॥  
 जातो विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥  
 वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥  
 एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥  
 ऽप्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥  
 जन्मकर्मपारिश्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः ॥  
 नामवारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥  
 अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका ॥  
 दशरात्रेण संशुद्ध्येद्भूमिष्ठं च नवोदकम् ॥ ७ ॥

एकपिंडास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः ॥  
 जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८ ॥  
 तावत्तत्सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ॥  
 दायाद्विच्छेदमाप्नोति पंचमो बात्मवंशजः ॥ ९ ॥  
 चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पणिशाः पुंसि पंचमे ॥  
 षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥  
 भृग्वग्निमरणे चैव देशांतरमृते तथा ॥  
 बाले प्रेते च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥ ११ ॥  
 देशांतरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि ॥  
 न क्षिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥  
 देशांतरगतो विप्रः प्रयासात्कालकारितात् ॥  
 देहनाशमनुप्राप्तस्तितथिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥  
 कृष्णाष्टमो त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥  
 उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ १४ ॥  
 अजातदंता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ॥  
 न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥  
 यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योपितः ॥  
 यावन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥  
 आचतुर्थ्याद्भवेत्स्नायः पातः पंचमपष्ठयोः ॥  
 अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यादशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥

संपर्काज्जायते दीपो नान्यो दीपोस्ति वै द्विजे ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपर्कं वर्जयेद्बुधः ॥ २८ ॥  
 विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंतरा मृतसूतके ॥  
 पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीपमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥  
 अंतरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ॥  
 तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्पूर्वं न गच्छति ॥ ३० ॥  
 ब्राह्मणार्थं विपन्नानां वंदागोप्रहणे तथा ॥  
 आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३१ ॥  
 द्वाविमौ पुरुषौलोके सूर्यमंडलभेदिनौ ॥  
 परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ३२ ॥  
 यत्रयत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ॥  
 अक्षयैर्लभते लोकान्यदि क्लृप्तं न भापते ॥ ३३ ॥  
 संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ॥  
 एष मे मंडलं भित्त्वा परं स्थानं प्रयास्यति ॥ ३४ ॥  
 यस्तु भग्नैः सैन्येऽपि विद्रवत्सु समंततः ॥  
 परिज्ञाता यदा गच्छेत्स च क्रतुफलं लभेत् ॥ ३५ ॥  
 यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः ॥  
 देवकन्यास्तु तं वीरं हरन्ति रमयन्ति च ॥ ३६ ॥  
 देवांगनासहस्राणि शूरमायोधने हतम् ॥  
 त्वरमाणाः प्रधावन्ति मम भर्ता ममेति च ॥ ३७ ॥

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णं नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥  
 प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४८ ॥  
 विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकांतमुपस्थिताः ॥  
 द्विजैस्तदानुगंतव्या एष धर्मः सनातनः ॥ ४९ ॥  
 तस्माद्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् ॥  
 दृष्टे सूर्यावलोकनेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥ ५० ॥  
 इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ॥  
 उद्धर्नीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते ॥ १ ॥  
 पूयशोणितसंपूर्णं त्वंधे तमासि मज्जति ॥  
 पष्टिवर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥  
 नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत् ॥  
 वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरस्तथा ॥ ३ ॥  
 तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यंतीत्येवमाह प्रजापतिः ॥  
 गोभिर्हृतं तथोद्भृजं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥  
 संस्पृशंति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ॥  
 अन्ये ये चारगंतारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥ ५ ॥



तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् ॥  
 अनहुत्सहितां गां च दक्षुर्विप्राय दक्षिणाम् ॥ ६ ॥  
 त्र्यहमुष्णं पिबेद्भारि त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ॥  
 त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ७ ॥  
 षट्पलं तु पिबेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥  
 पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८ ॥  
 यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः ॥  
 पंचाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ ९ ॥  
 मासार्द्धमासमेकं वा मासद्वयमथापि वा ॥  
 अष्टार्द्धमर्द्धमेकं वा भवेदूर्ध्वं हि तत्समः ॥ १० ॥  
 त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ॥  
 तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ११ ॥  
 चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पंचमे मतः ॥  
 कुर्याच्चांद्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वेदवद्वयम् ॥ १२ ॥  
 शुद्धयर्थमष्टमे चैव षण्मासात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥  
 पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥ १३ ॥  
 ऋतुज्ञाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति ॥  
 सा मृता नरकं याति विधवा च पुनःपुनः ॥ १४ ॥  
 ऋतुज्ञातां तु यो भार्या सन्निधौ नोपगच्छति ॥  
 घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यावमन्यते ॥  
 सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥ १६ ॥  
 पत्न्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥  
 आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥  
 अपृष्टा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् ॥  
 सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥  
 बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ॥  
 गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्कचित् ॥ १९ ॥  
 यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने ॥  
 प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ २० ॥  
 न कार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेण वा पुनः ॥  
 स भवेत्कर्मचांडालो यस्तुं धर्मपराङ्मुखः ॥ २१ ॥  
 ओषवाताहतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥  
 स क्षेत्रो लभते बीजं न बीजी भागमर्हति ॥ २२ ॥  
 तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ ॥  
 पत्न्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तारि गोलकः ॥ २३ ॥  
 औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ॥  
 दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥  
 परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते ॥

सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजक पंचमाः ॥ २५ ॥  
 द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ॥  
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चादायणं चरेत् ॥ २६ ॥  
 कुञ्जवामनपेंडेषु गढदेषु जडेषु च ॥  
 जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिविंदतः ॥ २७ ॥  
 पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा ॥  
 दारामिहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥ २८ ॥  
 ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् ॥  
 अनुज्ञातस्तु कुर्वति शंखस्य वचनं यथा ॥ २९ ॥  
 नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ॥  
 पंचस्वापस्तु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३० ॥  
 मृते भर्तारि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ॥  
 सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ३१ ॥  
 तिस्रः कोट्योर्ध्वकोटी च यानि लोमानि मानवे ॥  
 तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥ ३२ ॥  
 व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते विलात् ॥  
 एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनेव सह मोदते ॥ ३३ ॥  
 ॥ इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

वृकश्चानशृगालादिदष्टो यस्तु द्विजोत्तमः ॥  
 स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ १ ॥  
 गवां शृंगोदकस्नानान्महानद्योस्तु संगमे ॥  
 ममुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥  
 वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि ॥  
 सहिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥  
 सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपावसेत् ॥  
 घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥  
 अव्रतः सव्रतो वापि शुना दष्टो भवेद्विजः ॥  
 प्रणिपत्य भवेत्पूतो विमैश्चक्षुर्निरीक्षितः ॥ ५ ॥  
 शुना घाताऽवलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ॥  
 आद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोपचूलनम् ॥ ६ ॥  
 ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥  
 उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥  
 कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ॥  
 यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चाऽवलोकयेत् ॥ ८ ॥  
 असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः ॥  
 घृतं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥

अदीनवफघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥  
 वृककाककपोतानां सारीतितिरघातकः ॥  
 अंतर्जले उभे संध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥  
 गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः ॥  
 अपकाशी दिनं तिष्ठेत्रिकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥  
 वल्गुलीटिट्टिभानां च कोकिलाखंजरीटके ॥  
 लाविकारक्तपक्षेषु शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥  
 कारंडवचकोराणां पिंगलाकुररस्य च ॥  
 भारद्वाजादिक हत्वा शिवं संयज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥  
 भेरुंडचापभासांश्च पारावतकर्पिजलौ ॥  
 पक्षिणो चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥  
 ... ॥ ९ ॥  
 ... ॥ १० ॥  
 शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् ॥  
 वृंताकफलभक्षी वाप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १० ॥  
 वृकजंबुकक्रक्षाणां तरक्षूणां च घातकः ॥  
 तिलप्रस्थं द्विजे दद्यादायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ११ ॥  
 गजस्य च तुरंगस्य महिषोष्टनिपातने ॥  
 प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ १२ ॥

कुरंगं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन् ॥

शुद्ध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥

मृगरोहिद्वराहाणामवेर्वस्तस्य घातकः ॥

अफालकृष्टमभीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥ १४ ॥

एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम् ॥

अहोरात्रोपितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १५ ॥

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥

प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादशदक्षिणा ॥ १६ ॥

वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिघातयेत् ॥

सोऽतिकृच्छ्रद्वयं कुर्याद्द्विंशदक्षिणां ददेत् ॥ १७ ॥

वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् ॥

हत्वा चांदायणं तस्य त्रिंशद्वाश्चैव दक्षिणा ॥ १८ ॥

चंडालं हतवान्कश्चिद्वाहणो यदि केचन ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत् ॥ १९ ॥

क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण च ॥

चंडालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्राद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २० ॥

चोरः श्वपाकश्चंडालो विप्रेणाभिहतो यदि ॥

अहोरात्रोपितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २१ ॥

श्वपाकं चापि चंडालं विप्रः संभाषते यदि ॥

द्विजसंभाषणं कुर्यात्सावित्रीं च सकृज्जपेत् ॥ २२ ॥

- चंडालैः सह सुप्तं तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥  
 चंडालकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥  
 चंडालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत् ॥  
 चंडालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥  
 चंडालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रतः ॥  
 अज्ञानाच्चैकनक्तं त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २५ ॥  
 चंडालभांडं संस्पृष्ट्वा पीत्वा-कूपगतं जलम् ॥  
 गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥  
 चंडालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिवते द्विजः ॥  
 तत्क्षणाक्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २७ ॥  
 यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति ॥  
 प्राजापत्यं न दातव्यं कूर्च्छं सांतपनं चरेत् ॥ २८ ॥  
 चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यमनंतरः ॥  
 तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २९ ॥  
 भांडस्यमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् ॥  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ३० ॥  
 ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः ॥  
 शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तिः ॥ ३१ ॥  
 भुंक्तेऽज्ञानाद्विजश्रेष्ठश्चंडालाद्यं कथंचन ॥  
 गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३२ ॥

एकैकं ग्रासमश्नीयाद्गोमूत्रे यावकस्य च ॥  
 दशाहं नियमस्थस्य व्रतं तच्च विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥  
 अविज्ञातस्तु चंडालो यत्र वैश्मनि तिष्ठति ॥  
 विज्ञाते उपसंन्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम् ॥ ३४ ॥  
 मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान्गायंतो वेदपारगाः ॥  
 पतंतमुद्धरेयुस्तं धर्मज्ञाः पापसंकरात् ॥ ३५ ॥  
 दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ॥  
 भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥  
 ज्यहं भुंजीत दध्ना च ज्यहं भुंजीत सर्पिषा ॥  
 ज्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥ ३७ ॥  
 भावदुष्टं न भुंजीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ॥  
 दविक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु ॥ ३८ ॥  
 भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः कांस्यतान्त्रयोः ॥  
 जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृन्मयम् ॥ ३९ ॥  
 कुसुंभगुडकार्पासलवणं तैलसर्पिषी ॥  
 द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्वैश्मनि पावकम् ॥ ४० ॥  
 एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥  
 त्रिशतं गा वृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४१ ॥  
 पुनर्लेपनखातेन होमजाप्येन शुद्ध्यति ॥  
 आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥ ४२ ॥



( २३८ ) . अष्टादशस्मृतयः ।

चंडालैः सह संपर्क मांसं मासाद्धमेव वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ ४३ ॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेषुजीविनी ॥

( चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञाता नु तिष्ठति ॥ ४४ ॥

ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्याद्धमेव तु ॥

गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥

गृहस्याभ्यंतरं गच्छेच्चंडालो यदि कस्यचित् ॥

तमागारादिनिःसार्य मृद्रांडं तु विसर्जयेत् ॥ ४६ ॥

रसपूर्णं तु मृद्रांडं न त्यजेत्तु कदाचन ॥

गोमयेन तु संमिश्रेर्जलेः प्रोक्षेद्गृहं तथा ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पृथशोणितसंभवे ॥

कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ४८ ॥

गवां मूत्रपुरीषेण दधिकक्षारेण सर्पिषा ॥

अप्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ४९ ॥

क्षत्रियोपि सुवर्णस्य पंच मापान्प्रदाय तु ॥

गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥ ५० ॥

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥ ५१ ॥

प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलं हि तत् ॥

जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥ ५२ ॥

सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥  
 व्याधिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिन्ने डामरे तथा ॥ ५३ ॥  
 उपवासो व्रतं होमो द्विजसंपादितानि वा ॥  
 अथ वा ब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वे कुर्वत्यनुग्रहम् ॥ ५४ ॥  
 सर्वान्कामानवाप्नोति द्विजसंपादितैरिह ॥  
 दुर्वलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बालवृद्धयोः ॥ ५५ ॥  
 ततोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ॥  
 स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्वा दज्ञानतोऽपि वा ॥ ५६ ॥  
 कुर्वत्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥  
 शरीरस्याऽत्यये प्राप्ते वदन्ति नियमं तु ये ॥ ५७ ॥  
 महत्कार्योपरोधेन नास्वस्थस्य कदाऽन ॥  
 स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति वदन्ति नियमं तु ये ॥ ५८ ॥  
 ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥  
 स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥ ५९ ॥  
 यथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥  
 स एव नियमो ग्राह्यो यमेकांऽपि वदेद्विजः ॥ ६० ॥  
 कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु अन्यथा भ्रूणहा भवेत् ॥  
 ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः ॥ ६१ ॥  
 तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥  
 ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥ ६२ ॥

सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ॥  
 उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ॥ ६३ ॥  
 विप्रैः संपादितं यस्य संपूर्णं तस्य तत्फलम् ॥  
 अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ॥ ६४ ॥  
 तदंतरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥  
 भुञ्जानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् ॥ ६५ ॥  
 स्वमुच्छिष्टमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते भुक्तभाजने ॥  
 पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्यंकस्थः स्थितोऽपि वा ॥ ६६ ॥  
 श्वानचण्डालदृक्चैव भोजनं परिवर्जयेत् ॥  
 यदन्नं प्रतिपिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥ ६७ ॥  
 यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः ॥  
 शृतं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्चानोपघातितम् ॥ ६८ ॥  
 केनेदं शुद्ध्यते चेति ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥  
 काकश्चानावलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ॥ ६९ ॥  
 वेदवेदांगविद्विप्रैर्बर्मशास्त्रानुपालकैः ॥  
 प्रस्थाद्धा त्रिंशतिद्रोणः स्मृतो विप्रस्य आढकः ॥ ७० ॥  
 ततो द्रोणाऽऽढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः ॥  
 काकश्चानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा ॥ ७१ ॥  
 स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिद्रोणाढके भवेत् ॥  
 अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत् ॥ ७२ ॥

सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत् ॥  
 हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ॥ ७३ ॥  
 विप्राणां ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ॥  
 स्नेहो वा गोरसो वापि तत्र शुद्धिः कथं भवेत् ॥ ७४ ॥  
 अल्पं परित्यजेत्तत्र स्नेहस्योत्पवनेन च ॥  
 अनलज्वालाया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ॥ ७५ ॥  
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे पद्मोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

अथातो द्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचो यथा ॥  
 दाखाणां तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥  
 मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥  
 चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च ॥ २ ॥  
 चरूणां सुक्लुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥  
 भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमल्लेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥  
 रजसा शुद्ध्यते नारी विकृतिं या न गच्छति ॥  
 नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥ ४ ॥  
 वापीरूपतडागेषु दूषितेषु कथंचन ॥  
 उद्धृत्य वै कुम्भशतं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

( २४२ )

अष्टादशस्मृतयः ।

अष्टवर्षा भवेद्रौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥

दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥

मासे तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ॥

मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरोऽनिशम् ॥ ७ ॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥

त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ८ ॥

यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ॥

असंभाष्यो ह्यपांक्त्यः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥

यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥

स भैक्ष्यभुञ्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षेषि शुद्ध्यति ॥ १० ॥

अस्तंगते यदा सूर्ये चंडालं पतितं स्त्रियः ॥

सूतिकां स्पृशते चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ११ ॥

जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च ॥

ब्राह्मणानुमतश्चैव ज्ञानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणो ब्राह्मणीं तथा ॥

तावत्तिष्ठन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १३ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणो क्षत्रियो तथा ॥

अर्द्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा ॥ १४ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणो वैश्यजां तथा ॥

पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥ १५ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा ॥  
 कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥  
 स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥  
 कुर्यादजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ॥ १७ ॥  
 रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्त्तते ॥  
 नाऽशुचिः सा ततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकं मलम् ॥ १८ ॥  
 साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्त्तते ॥  
 रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्माणि चैव हि ॥ १९ ॥  
 प्रथमेऽहनि चंडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥  
 तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥ २० ॥  
 आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ॥  
 स्नात्वास्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥ २१ ॥  
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः ॥  
 उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२ ॥  
 अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शं स्नानं विधीयते ॥  
 तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २३ ॥  
 भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यत्र लिप्यते ॥  
 सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽन्युपलेपनैः ॥ २४ ॥  
 गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च ॥  
 शुद्ध्यन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥ २५ ॥

गंधूपं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने ॥  
 पण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥ २६ ॥  
 आयसेष्वायसानां च सीसस्याधौ विशोधनम् ॥  
 दंतमस्थि तथा शृंगं रौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥ २७ ॥  
 मणिपात्राणि शंखश्चेत्येतान्प्रक्षालयेज्जलेः ॥  
 पाषाणे तु पुनर्घर्षे एषा शुद्धिरुदाहृता ॥ २८ ॥  
 मृन्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि ॥  
 धेणुवल्कलचीराणां क्षीमकार्पासवाससाम् ॥ २९ ॥  
 और्णेनेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३० ॥  
 मुंजोपस्करशूर्पाणां शणस्य फलचर्मणाम् ॥  
 तृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम् ॥ ३१ ॥  
 तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च ॥  
 शोषयित्वा र्कतापेन प्रोक्षणाच्छुद्धतामियुः ॥ ३२ ॥  
 मार्जारमक्षिकाकीटपतंगकृमिदुर्गुराः ॥  
 मेध्यामेध्यं स्पृशंतो ये नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३३ ॥  
 महीं स्पृष्ट्वा गतं तोयं याश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ॥  
 भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३४ ॥  
 तांबूलक्षुफलान्येव भुक्ते स्नेहानुलेपने ॥  
 मधुपर्कं च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः ॥ ३५ ॥

रथ्याकर्द्धमतोयानि नावः पंथास्तृणानि च ॥  
 मारुतार्केण शुद्ध्यन्ति पकेष्टकचितानि च ॥ ३६ ॥  
 अदुष्टा संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥  
 स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥ ३७ ॥  
 क्षुते निष्ठोवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥  
 पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ ३८ ॥  
 अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ॥  
 एते सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३९ ॥  
 प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥  
 विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥  
 देशभंगे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥  
 रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥ ४१ ॥  
 येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥  
 उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥  
 आपत्काले तु निस्तीर्णे शौचाऽऽचारं न चिंतयेत् ॥  
 शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्यो धर्मं समाचरेत् ॥ ४३ ॥  
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥



## अष्टमोऽध्यायः ८.

गवां बन्धनयोक्त्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः ॥  
 अकामकृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥  
 वेदवेदांगविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ॥  
 स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥ २ ॥  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ॥  
 उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशं समर्हति ॥ ३ ॥  
 सद्यो निःसंशये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः ॥  
 भुञ्जानो वर्द्धयेत्पापं पर्पथन्न न विद्यते ॥ ४ ॥  
 संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ॥  
 प्रमादस्तु न कर्त्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥  
 कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं विवर्द्धते ॥  
 स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्वो निवेदयेत् ॥ ६ ॥  
 तेऽपि पापकृतां वैद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ॥  
 व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमंतो रुजापहाः ॥ ७ ॥  
 प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान्सत्यपरायणः ॥  
 मुहुरार्जवसंपन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥ ८ ॥  
 सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ॥  
 क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ततः पर्वदमाव्रजेत् ॥ ९ ॥

उपस्थाय ततः शीघ्रमार्तिमान्धरणि व्रजेत् ॥  
 गात्रैश्च शिरसा चैव नच किञ्चिदुदाहरेत् ॥ १० ॥  
 सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः संध्योपास्त्यमिकार्ययोः ॥  
 अज्ञानात्कृषिकर्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥ ११ ॥  
 अवतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥  
 सहस्रशः समेतानां परिपत्त्वं न विद्यते ॥ १२ ॥  
 यद्वदंतितमोमूढा मूर्खा धर्ममत द्विदः ॥  
 तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृनधिगच्छति ॥ १३ ॥  
 अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ॥  
 प्रोयश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्पदि व्रजेत् ॥ १४ ॥  
 चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ॥  
 स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥ १५ ॥  
 प्रमाणमार्गं मार्गतो येऽधर्मं प्रवदन्ति वै ॥  
 तेषामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥  
 यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्ध्यति ॥  
 एवं परिपदादेशान्नाशयेत्तत्र दुष्कृतम् ॥ १७ ॥  
 नैव गच्छति फर्तारं नैव गच्छति पर्पदम् ॥  
 मारुतार्कादिसंयोगात्पापं नश्यति तोयवत् ॥ १८ ॥  
 चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवंतोऽग्निहोत्रिणः ॥  
 ब्राह्मणानां समर्था ये परिपत्साभिधीयते ॥ १९ ॥

अनाहिताग्रयो येन्ये वेदवेदांगपारगाः ॥  
 पंच त्रयो वा धर्मज्ञाः परिपत्सा प्रकीर्तिता ॥ २० ॥  
 मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ॥  
 वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥ २१ ॥  
 पंच पूर्वं मया प्रोक्तास्तेषां चासंभवे त्रयः ॥  
 स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिपत्सा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥  
 अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ॥  
 परिपत्त्वं न तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥  
 यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥  
 ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥  
 ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ॥  
 यथा हुतमनमौ च अमंत्रो ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥  
 यथा पटोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरुपराऽफला ॥  
 यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥ २६ ॥  
 चित्रकर्म यथानैकरंगैरुन्मल्यते शनैः ॥  
 ब्राह्मण्यमपि तद्विद्धि संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः ॥ २७ ॥  
 प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ॥  
 ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥ २८ ॥  
 ये पठन्ति द्विजा वेदं पंचयज्ञरताश्च ये ॥  
 त्रैलोक्यं तारयन्त्येव पंचेन्द्रियरता अपि ॥ २९ ॥

संप्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः ॥  
 तथा च वेदविद्विप्रः सर्वभक्षोऽपि दैवतम् ॥ ३० ॥  
 अमेध्यानि तु सर्वाणि प्रक्षिप्यन्ते यथोदके ॥  
 तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षिपेच्च द्विजानले ॥ ३१ ॥  
 गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ॥  
 गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥ ३२ ॥  
 दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः ॥  
 कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥ ३३ ॥  
 धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखङ्गधरा द्विजाः ॥  
 क्रीडार्थमपि यद्व्यूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ ३४ ॥  
 चातुर्वेद्योऽविकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥  
 त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेषा दशावरा ॥ ३५ ॥  
 राज्ञश्चानुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥  
 स्वयमेव न कर्तव्यं कर्तव्या स्वल्पानिष्कृतिः ॥ ३६ ॥  
 ब्राह्मणांस्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति ॥  
 तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥  
 प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः ॥  
 आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद्वै वेदमातरम् ॥ ३८ ॥  
 सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥  
 गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाश्चाप्यनुव्रजेत् ॥ ३९ ॥

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥  
 न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तिः ॥ ४० ॥  
 आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेथवा खले ॥  
 भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥  
 पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत् ॥  
 पतितां पंकलमां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥  
 ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥  
 मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोत्राह्मणस्य च ॥ ४३ ॥  
 गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥  
 प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं विभजेत चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥  
 एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः ॥  
 अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥ ४५ ॥  
 दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिनं नक्तभोजनः ॥  
 दिनद्वयमयाची स्याद्विदिनं मारुताशनः ॥ ४६ ॥  
 त्रिदिनं चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः ॥  
 दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥ ४७ ॥  
 चतुरहं त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः ॥  
 चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः ॥ ४८ ॥  
 प्रायश्चित्ते ततस्तीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥

विप्राणां दक्षिणां दद्यात्पवित्राणि जपेद्विजः ॥४९॥

ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु गोघ्नः शुद्धयेन्न संशयः ॥५०॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

### नवमोऽध्यायः ९.

गवां संरक्षणार्थं न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥

तद्वधं तु न तं विद्यात्कामाकामकृतं तथा ॥ १ ॥

दंडादूर्ध्वं यदान्येन प्रहाराद्यदि पातयेत् ॥

प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत् ॥ २ ॥

रोधबंधनयोक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम् ॥

एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥ ३ ॥

योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥

गोघाटे वा गृहे वापि दुर्गेष्वप्यसमस्थले ॥ ४ ॥

नदीष्वथ समुद्रेषु त्वन्येषु च नदीमुखे ॥

दग्धदेशे मृता गावः स्तंभनादोध उच्यते ॥ ५ ॥

योक्त्रदामकरैश्च कंठाभरणभूषणैः ॥

गृहे चापि वने चापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥ ६ ॥

तदेव बंधनं विद्यात्कामाकामकृतं च यत् ॥

हले वा शकटे पंक्तौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः ॥ ७ ॥

गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योऽक्रो भवति तद्वधः ॥  
 मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः ॥ ८ ॥  
 कामाकामकृतक्रोधो दंडैर्हृन्यादयोपलैः ॥  
 प्रहता वा मृता वापि ताद्वि हेतुर्निपातने ॥ ९ ॥  
 अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः ॥  
 आर्द्रस्तु सपलाशश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ १० ॥  
 मूर्च्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतः स तु ॥  
 उत्थितस्तु यदा गच्छेत्पञ्च सप्त दशाथ वा ॥ ११ ॥  
 आसं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥  
 पूर्वव्याध्युपसृष्टश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १२ ॥  
 पिंडस्थे पादमेकं तु द्वौ पादौ गर्भसंमिते ॥  
 पादानं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ १३ ॥  
 पादैऽगरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ॥  
 त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखं तु निपातने ॥ १४ ॥  
 पादे वस्त्रयुगं चैव द्विपादे कांस्यभाजनम् ॥  
 त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥ १५ ॥  
 निष्पन्नसर्वगात्रेषु दृश्यते वा सचेतनः ॥  
 अंगप्रत्यंगसंपूर्णां द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ १६ ॥  
 पापाणेनैव दंडेन गावो येनाभिघातिताः ॥  
 शृंगभंगे चरेत्पादं द्वौ पादौ नेत्रघातने ॥ १७ ॥

लांगूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने ॥  
 त्रिपादं चैव कर्णे तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ १८ ॥  
 शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च ॥  
 यदि जीवति षण्मासान्प्रायाश्चित्तं न विद्यते ॥ १९ ॥  
 व्रणभङ्गे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गस्तु पाणिना ॥  
 यवसश्चोपहर्तव्यो यावद्वृद्धवलोभवेत् ॥ २० ॥  
 यावत्संपूर्णसर्वाङ्गस्तावत्तं पोषयेन्नरः ॥  
 गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥ २१ ॥  
 यद्यसंपूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा ॥  
 गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायाश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥  
 काष्ठलोष्टकपापाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् ॥  
 व्यापादयति यो गां तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥  
 चरेत्सातपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥  
 तप्तकृच्छ्रं तु पापाणैः शस्त्रेणैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥  
 पञ्च सातपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः ॥  
 तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥ २५ ॥  
 प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ॥  
 तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥  
 अन्यत्राक्रान्तलक्ष्मभ्यां बाहने मोचने तथा ॥  
 सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥ २७ ॥



अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ॥

नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥

अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ॥

नासिक्ये पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ २९ ॥

दहनात्तु विपद्येत अनङ्गान्योक्कयंत्रितः ॥

उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥ ३० ॥

रोधनं बंधनं चैव भारप्रहरणं तथा ॥

दुर्गमैरणयोक्त्रं च निमित्तानि वधस्य षट् ॥ ३१ ॥

बंधपाशसुगुप्तांगो छियते यदि गोपशुः ॥

भुवने तस्य पापी स्यात्प्रायश्चित्ताद्धर्महति ॥ ३२ ॥

न नारिकेलैर्न च शाणवालैर्न चापि भौजैर्न च वल्कशृङ्खलैः ॥

एतैस्तु गावो न निबंधनीया वद्धा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ॥ ३३ ॥

कुशैः काशैश्च वध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम् ॥

पाशललाभिदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३४ ॥

यदि तत्र भवेत्काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥

जपित्वा पावर्त्ता देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥ ३५ ॥

प्रेमयन्कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ॥

गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥ ३६ ॥

आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ॥

श्वणं हृदयं भिन्नं ममो वा कूपसंकटे ॥ ३७ ॥

कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः ॥  
 स एव म्रियते तत्र ग्रीवपादोऽस्तु समाचरेत् ॥ ३८ ॥  
 कूपखाते तटाबंधे नदीबंधे प्रपासु च ॥  
 पानीषेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३९ ॥  
 कूपखाते तटाखाते दीर्घखाते तथैव च ॥  
 स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४० ॥  
 वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ॥  
 स्वकार्ये गृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥  
 निशि बंधानिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ॥  
 अभिविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४२ ॥  
 ग्रामघाते शरीरेण वेश्मभंगनिपातने ॥  
 अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४३ ॥  
 संग्रामेऽपहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च  
 दायाभिग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४४ ॥  
 यंत्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ॥  
 यत्रे कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४५ ॥  
 व्यापन्नानां बहूनां च रोधने बंधनेऽपि वा ॥  
 भिषङ्मिथ्यापचारेण प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥  
 गोवृषाणां विपत्तौ च यावंतः प्रेक्षका जनाः ॥  
 अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥ ४७ ॥

एको हतो यैर्बहुभिः समेतेर्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिघातात् ॥  
 दिव्येन तेषामुपलभ्य हंता निवर्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ॥ ४८ ॥  
 एका चेद्बहुभिः काचिद्वैवाद्यपादिता कचित् ॥  
 पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥  
 हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशा भवेत् ॥  
 लाला भवति दष्टेषु एवमन्वेपणं भवेत् ॥ ५० ॥  
 ग्रासार्थं चोदितो वापि अध्वानं नैव गच्छति ॥  
 मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ॥  
 प्रायश्चित्तं तु तेनाक्तं गोघ्नश्चाद्राय-ं चरेत् ॥ ५१ ॥  
 केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥  
 द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥ ५२ ॥  
 राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥  
 अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥  
 यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ॥  
 तत्पापं तस्य तिष्ठेत् त्यक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥  
 यत्किञ्चिक्लियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ॥  
 सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥ ५५ ॥  
 एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥  
 न स्त्रियां केशवपनं न दूरे शयनासनम् ॥ ५६ ॥  
 न च गोष्ठे वसेद्वाग्नौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ॥

नदीषु संगमे चैव अरण्येषु विशेषतः ॥ ५७ ॥  
 न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ॥  
 त्रिसंध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ॥ ५८ ॥  
 बंधुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रचांद्रायणादिकम् ॥  
 गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ५९ ॥  
 इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ॥  
 स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥ ६० ॥  
 विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ॥  
 क्लीबो दुःखी च कुप्री च सप्तजन्मानि वै नरः ॥ ६१ ॥  
 तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ॥  
 स्त्रीबालभृत्यरोगार्तेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥  
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

### दशमोऽध्यायः १०.

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥  
 अगम्यागमने चैव शुद्धौ चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥  
 एकैकं द्वासपेक्षासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ॥  
 अमावस्यां न भुंजीत ह्येष चांद्रायणो विधिः ॥ २ ॥  
 कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत् ॥  
 अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्ध्यते ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णं कुर्याद्वाह्यभोजनम् ॥  
 गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विधेयं दक्षिणाम् ॥ ४ ॥  
 चण्डाली वा श्वपाकी वा अनुगच्छति यो द्विजः ॥  
 त्रिरात्रमुपवासी च विप्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥  
 सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥  
 ब्रह्मकूर्चं ततः कृत्वा कुर्याद्वाह्यतर्पणम् ॥ ६ ॥  
 गायत्री च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥  
 विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥  
 गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत् ॥  
 क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा चण्डालीं गच्छतो यदि ॥ ८ ॥  
 प्राजापत्यद्वयं कुर्यादद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥  
 श्वपाकी वाथ चण्डाली शूद्रो वा यदि गच्छति ॥ ९ ॥  
 प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ॥ १० ॥  
 मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥  
 एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि संचरेत् ॥ ११ ॥  
 चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिरश्छेदेन शुद्ध्यति ॥  
 मातृष्वसृगमे चैव आत्ममेदूनि कृतनम् ॥ १२ ॥  
 अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चांद्रायणद्वयम् ॥  
 दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत् ॥ १३ ॥  
 पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम् ॥

गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्या तथैव च ॥ १४ ॥  
 मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥  
 गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥  
 पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रयौ कर्षा तथा ॥  
 खरीं च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १६ ॥  
 गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददेत् ॥  
 महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥  
 डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ॥  
 वंदिग्राहे भयार्तो वा सदा स्वर्त्स्नीं निरीक्षयेत् ॥ १८ ॥  
 चण्डालैः सह संपर्कं या नारी कुरुते ततः ॥  
 विप्रान्दशवरान्कृत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् ॥ १९ ॥  
 आकण्ठसंमिते कूपे गोमयोदककर्द्धमे ॥  
 तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् ॥ २० ॥  
 सशिखं वपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ॥  
 त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत् ॥ २१ ॥  
 शंखपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम् ॥  
 सुवर्णं पंचगव्यं च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् ॥ २२ ॥  
 एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥  
 व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसते बहिः ॥ २३ ॥  
 प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥  
 चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चांद्रायणव्रतम् ॥  
 यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ॥ २५ ॥  
 बन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्धा बलाद्गयात् ॥  
 कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं शुद्धयेत्पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥  
 सकृद्भुक्ता तु या नारी नैच्छंती पापकर्माभिः ॥  
 प्राजापत्येन शुद्धयेत् ऋतुप्रस्रवणेन च ॥ २७ ॥  
 पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ॥  
 पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ २८ ॥  
 गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २९ ॥  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥  
 एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ३० ॥  
 जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ॥  
 तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥ ३१ ॥  
 ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसां समन्विता ॥  
 सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्यागमनं पुनः ॥ ३२ ॥  
 कामान्मोहाच्च या गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धून्सुतान्पतिम् ॥  
 सापि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥ ३३ ॥  
 मदमोहगता नारी क्रोधाद्वंदादिताडिता ॥  
 अद्वितीयं गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥ ३४ ॥

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥  
 दशाहं न त्यजेन्नारीं त्यजेद्वृश्चतां तथा ॥ ३५ ॥  
 भर्ता चैव चरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बांधवाः ॥  
 तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३६ ॥  
 ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसां विवर्जिता ॥  
 गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ॥ ३७ ॥  
 पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदाऽशुद्धं गृहं भवेत् ॥  
 पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ॥ ३८ ॥  
 उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात्पंचगव्येन सेचयेत् ॥  
 त्यजेच्च मृन्मयं पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत् ॥ ३९ ॥  
 संभाराञ्छोधयेत्सर्वान्गोकेशैश्च फलोद्भवान् ॥  
 ताम्राणि पंचगव्येन कांस्यानि दशभस्मभिः ॥ ४० ॥  
 प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादयेत् ॥  
 गौर्द्वयं दक्षिणां दद्यात्प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ४१ ॥  
 इतरेषामहोरात्रं पंचगव्यं च शोधनम् ॥  
 उपवासैर्घृतेः पुण्यैः स्नानसंध्यार्चनादिभिः ॥ ४२ ॥  
 जपहोमदयादानैः शुद्ध्यन्ते ब्राह्मणादयः ॥  
 आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम् ॥ ४३ ॥  
 न दुष्यन्ति च दर्भाश्च यज्ञेषु चमसा यथा ॥ ४४ ॥  
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



## एकादशोऽध्यायः ११.

- अमेध्यरेतो गोमांसं चंडलान्नमथापि वा ॥  
 यदि भुक्तं तु विषेण कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥  
 क्षत्रियो वाथ वैश्यश्चेदर्धकृच्छ्रं च कापिकम् ॥ २ ॥  
 पंचगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिवेद्विजः ॥  
 एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद्विषाद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥  
 शूद्रात्रे सूतकात्रं च अभोज्यस्यान्नमेव च ॥  
 शंकितं प्रतिविद्वात्रं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥  
 यदि भुक्तं तु विषेण अज्ञानादापदापि वा ॥  
 ज्ञात्वा समाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥  
 व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं पदा ॥  
 तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥  
 शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वात्र पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥  
 क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥  
 एकपंचयुपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ॥  
 यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥  
 मोहाद्वृंजीत यस्तत्र पक्तावुच्छिष्टभोजने ॥  
 प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ ९ ॥  
 पीयूषं श्वेतलघुनं वृंताशफलगुंजने ॥  
 पलांडुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥

लघ्नीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भुजते द्विजः ॥  
 त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्ये न शुद्ध्यति ॥ ११ ॥  
 मंडूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च ॥  
 ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकात्रेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥  
 क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावंतौ शुचिव्रतौ ॥  
 तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥ १३ ॥  
 घृतं क्षीरं तथा तैलं गुडं तैलेन पाचितम् ॥  
 गत्वा नदीतटे विप्रो भुंजीयाच्छूद्रभाजने ॥ १४ ॥  
 मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् ॥  
 तं शूद्रं घर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिव दूरतः ॥ १५ ॥  
 द्विजशुश्रूषणरतान्मद्यमांसविवर्जितान् ॥  
 स्वकर्मनिरतान्नित्यं ताञ्छूद्रान्न त्यजेद्विजः ॥ १६ ॥  
 अज्ञानाद्भुजते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा ॥  
 प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥  
 गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके ॥  
 वैश्ये पंचसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥ १८ ॥  
 ब्राह्मणस्य यदा भुंक्ते द्विसहस्रं तु दापयेत् ॥  
 अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥  
 शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेपेण आहृतम् ॥  
 पक्वं विप्रगृहे भुंक्ते भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥ २० ॥

आपत्काले तु विप्रेण भुंक्ते शूद्रगृहे यदि ॥  
 मनस्तापेन शुद्ध्येत द्रुपदां वा सकृज्जपेत् ॥ २१ ॥  
 दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥  
 एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं विधीयते ॥ २२ ॥  
 शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥  
 असंस्काराद्भवेदासः संस्कारादेव नापितः ॥ २३ ॥  
 क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ॥  
 स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रेर्न संशयः ॥ २४ ॥  
 वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥  
 स ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रेर्न संशयः ॥ २५ ॥  
 भण्डास्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ॥  
 अंकांमतस्तु यो भुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २६ ॥  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा उपसर्पति ॥  
 ब्रह्मकूर्चोपवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥ २७ ॥  
 शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥  
 ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ २८ ॥  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥  
 निर्दिष्टं पंचगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ २९ ॥  
 गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥  
 पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ३० ॥

कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा ॥  
 मूत्रमेकपलं दद्यादंगुष्ठार्धं तु गोमयम् ॥ ३१ ॥  
 क्षीरं सप्तपलं दद्यादधि त्रिपलमुच्यते ॥  
 घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥  
 गायत्र्यादाय गोमूत्रं गंधद्वारेति गोमयम् ॥  
 आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥ ३३ ॥  
 तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥  
 पंचगव्यमृचा घृतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥ ३४ ॥  
 आपोहिष्ठेति चालोड्य मानस्तोकेति मंत्रयेत् ॥  
 सप्तावरासु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुक्त्विषः ॥ ३५ ॥  
 एतैरुद्धृत्य होतव्यं पंचगव्यं यथाविधि ॥  
 इरावती इदंविष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥ ३६ ॥  
 एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिवेद्विजः ॥  
 आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु ॥ ३७ ॥  
 उद्धृत्य प्रणवेनैवं पिवेच्च प्रणवेन तु ॥  
 यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ॥ ३८ ॥  
 ब्रह्मकूर्चं दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेधनम् ॥  
 पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ॥  
 वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः ॥  
 दग्धि चायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥ ४० ॥

पिवतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ॥  
 अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ४१ ॥  
 कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वसृगाली च मर्कटम् ॥  
 अस्थिचर्मादिपतितः पीत्वाऽमेध्या अपो द्विजः ॥ ४२ ॥  
 नारं तु कुणपं काकं विडुराहं खरोष्ट्रकम् ॥  
 गावयं सौमतीकं च मायूरं खड्गकं तथा ॥ ४३ ॥  
 वैयाघ्रमार्क्षं सैहं वा कूपे यदि निमज्जति ॥  
 तडागस्याप्यदुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥ ४४ ॥  
 प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः ॥  
 विप्रः शुध्येन्निरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्रपात् ॥ ४५ ॥  
 एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ॥  
 परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥ ४६ ॥  
 अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चां द्रायणं चरेत् ॥  
 अपचस्य तु यदानं दातुरस्य कुतः फलम् ॥ ४७ ॥  
 दाता प्रतिग्रहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥  
 गृहीत्वान्नं समारोप्य पंचयज्ञान्नं निर्वपेत् ॥ ४८ ॥  
 परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः पारकीर्तितः ॥  
 पंचयज्ञान्स्वयं कृत्वा परात्रेनोपजीवति ॥ ४९ ॥  
 सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः ॥  
 गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ॥ ५० ॥

ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः ॥

युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः ॥ ५१ ॥

तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकार च गरीयसः ॥ ५२ ॥

स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥

ताडयित्वा तृणेनापि कंठे बद्ध्वापि वाससा ॥ ५३ ॥

विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥

अवगूर्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने ॥ ५४ ॥

अतिकृच्छ्रं च रुधिरे कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते ॥

नवाहमतिकृच्छ्री स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥ ५५ ॥

त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥

सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥

दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥ ५६ ॥

इति पराशरायै धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्यायः १२.

दुःस्वप्नं यदि पश्येत् वांते वा धुरकर्मणि ॥

मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते ॥ १ ॥

अज्ञानात्प्राश्य विष्णूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥

पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ २ ॥

अग्निं मेखला दंडो भैक्षचर्या प्रतानि च ॥  
 निवर्त्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥  
 विष्णुमूत्रस्य च शुद्धयर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ॥  
 पंचगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥  
 जलाम्बिपतने चैव भद्रज्यानाशकेषु च ॥  
 प्रत्यवसितवर्णानां कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ५ ॥  
 प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च ॥  
 वृषैकादशदानेन वर्णाः शुद्धयन्ति ते त्रयः ॥ ६ ॥  
 ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पये ॥  
 सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ७ ॥  
 गोद्वयं दाक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥  
 मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥  
 स्नानानि पंच पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः ॥  
 अग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥ ९ ॥  
 अग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ॥  
 आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥ १० ॥  
 यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तदिव्यमुच्यते ॥  
 तत्र स्नात्वा तु गंगायां स्नातो भवति मानवः ॥ ११ ॥  
 स्नातुं यातं द्विजं सर्वे देवाः पितृगणैः सह ॥  
 वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः ॥ १२ ॥

निराशास्ते निवर्त्तते वस्त्रनिष्पीडने कृते ॥  
 तस्मान्नपीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥ १३ ॥  
 रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ॥  
 तर्पितास्तेन ते सर्वे रुधिरेण मलेन च ॥ १४ ॥  
 अवधूनोति यः केशान्स्नात्वा मस्रवतो द्विजः ॥  
 आचामेद्रा जलस्थोपि स बाह्यः पितृदैवतैः ॥ १५ ॥  
 शिरः प्रावृत्य कंठं वा मुक्तकक्षशिखोऽपि वा ॥  
 विना यज्ञोपवीतेन आचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६ ॥  
 जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्चेद्ब्रहिः स्थले ॥  
 उभे स्पृष्ट्वा समाचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥ १७ ॥  
 स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ॥  
 आचांतः पुनराचामेद्रासो विपरिधाय च ॥ १८ ॥  
 क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथाऽनृते ॥  
 पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ १९ ॥  
 भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते ॥  
 अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥ २० ॥  
 मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाथ देवताः ॥  
 सर्वे सोमे प्रलीयन्ते तस्माद्दानं तु संग्रहे ॥ २१ ॥  
 खलयज्ञे विवाहे च संक्रांतौ ग्रहणे तथा ॥  
 शर्वर्ग्या दानमस्त्येव नाऽन्यत्र तु विधीयते ॥ २२ ॥



पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि ॥  
 राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥ २३ ॥  
 महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ॥  
 प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत्क्षानमाचरेत् ॥ २४ ॥  
 चैत्यवृक्षश्चितिः पृथग्शंडालः सोमविक्रयी ॥  
 एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥ २५ ॥  
 अस्थिसंचयनात्पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ॥  
 अंतर्दशाहे विप्रस्य हूर्ध्वमाचमनं स्मृतम् ॥ २६ ॥  
 सर्वं गंगासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥  
 सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २७ ॥  
 कुशैः पूतं भवेत्क्षानं कुशेनोपस्पृशेद्विजः ॥  
 कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानसमं भवेत् ॥ २८ ॥  
 अपिकार्यात्परिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः ॥  
 वेदं चैवानधीयानाः सार्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥ २९ ॥  
 तस्माद्वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः ॥  
 अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥ ३० ॥  
 शूद्रान्नरसपुष्टस्याधीयमानस्य नित्यशः ॥  
 जपतो जुह्वतो वापि गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥ ३१ ॥  
 शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ॥  
 शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ३२ ॥

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी ॥  
 वर्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥३३॥  
 मृतसूतकपुष्टांगं द्विजं शूद्रान्नभोजिनम् ॥  
 अहं तं न विजानामि कांकां योनिगमिष्यति ॥३४॥  
 गृध्रो द्वादशजन्मानि दशजन्मानि सूकरः ॥  
 श्वयोनौ सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥  
 दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ॥  
 ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३६ ॥  
 मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद्विजः ॥  
 भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥  
 अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् ॥  
 हतं दैवं च पित्र्यं च आत्मानं चोपघातयेत् ॥ ३८ ॥  
 भुञ्जानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुञ्चति ॥  
 स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥३९॥  
 भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वति ये द्विजाः ॥  
 न देवास्तृप्तिमायांति निराशाः पितरस्तथा ॥४०॥  
 अस्नात्वा वै न भुञ्जीत तथैवाग्निमपूज्य च ॥  
 न पर्णपृष्ठे भुञ्जीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥ ४१ ॥  
 गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचितयेत् ॥  
 पोष्यवर्गार्थसिद्धयर्थं न्यायवर्ती स बुद्धिमान् ॥४२॥

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ॥  
 अन्यायेन तु यो जीवेत्सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४३ ॥  
 अमिचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ॥  
 दृष्टमात्राः पुनंत्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ॥ ४४ ॥  
 ऊरणि कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् ॥  
 तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥ ४५ ॥  
 गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययं त्रितम् ॥  
 तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम् ॥ ४६ ॥  
 ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मभिः ॥  
 एतद्रोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४७ ॥  
 कुटुंबिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ॥  
 यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥ ४८ ॥  
 वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेयशतेर्मखैः ॥  
 गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ४९ ॥  
 अष्टादशदिनादर्वाक्स्नानमेव रजस्वला ॥  
 अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरत्रवीत् ॥ ५० ॥  
 युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्गुणम् ॥  
 चण्डालसृतिकोदकपापतितानामधः क्रमात् ॥ ५१ ॥  
 ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ॥  
 स्नात्वावलोकयेत्सूर्यमज्ञानात्स्पृशते यदि ॥ ५२ ॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥  
 तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥  
 यस्तु क्रुद्धः पुमान्भूयाज्जायायास्तु अगम्यताम् ॥  
 पुनरिच्छति चेदेनां विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥ ५४ ॥  
 श्रांतः क्रुद्धस्तमोऽथो वा क्षुत्पिपासाभयार्दितः ॥  
 दानं पुण्यमकृत्वा वा प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ ५५ ॥  
 उपस्पृशेन्निषवणं महानद्युपसंगमे ॥  
 चीर्णति चैव गां दद्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्दश ॥ ५६ ॥  
 दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ॥  
 अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥ ५७ ॥  
 सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदांगवेदिनः ॥  
 भुक्त्वात्रं मुच्यते पापादहोरात्रांतरात्ररः ॥ ५८ ॥  
 कृध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमंतरिक्षमृतौ तथा ॥  
 कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत अशौचमरणे तथा ॥ ५९ ॥  
 कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ॥  
 पुण्यतीर्थं नार्दशिराः स्नानं द्वादशसंख्यया ॥ ६० ॥

सपुत्रः सहभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥  
 गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम् ॥ ७० ॥  
 ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥  
 विध्यादुत्तरतो यस्य संवासः परिकीर्तितः ॥ ७१ ॥  
 पराशरमतं तस्य सेतुबंधस्य दर्शनात् ॥  
 सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ ७२ ॥  
 सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥  
 चांद्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥  
 अनहुत्सहिः सारा मृगः सदा ॥  
 तत्र वेदोक्तो धर्मा भवितुमर्हति ॥ ३ ॥  
 श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ॥  
 तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वे स्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥  
 ब्राह्मणक्षत्रियविशखयो वर्णा द्विजातयः ॥  
 श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु नेतरे ॥ ५ ॥  
 शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥  
 वेदमंत्रस्वधास्वाहावपट्टकारादिभिर्विना ॥ ६ ॥  
 विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् ॥  
 जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥ ७ ॥

वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥  
 अधमादुत्तमायां तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥ ८ ॥  
 ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चण्डालो धर्मवर्जितः ॥ ९ ॥  
 कुमारीसंभवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥  
 ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ॥ १० ॥  
 वर्द्धकिर्नापितो गोप आशायः कुम्भकारकः ॥  
 वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिनः ॥  
 वरश्चो मेदचण्डालदासश्चपचकोलकाः ॥ ११ ॥  
 एतं त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ॥  
 एषां संभाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥ १२ ॥  
 गर्भाधानं पुंसवनं सोमंतो जातकर्म च ॥  
 नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १३ ॥  
 कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः ॥  
 केशांतः स्नानमुद्वाहो विवाहामिपरिग्रहः ॥ १४ ॥  
 व्रतामिसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥  
 नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्ज क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥  
 विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंत्रतो दश ॥  
 गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥ १६ ॥  
 सोमंतश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ॥  
 एकादशेऽपि नामाकंस्पेक्षा मासि चतुर्थके ॥ १७ ॥

षष्ठे मास्यन्नमश्रीयाञ्चूडाकर्म कुलोचितम् ॥  
 कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते ॥ १८ ॥  
 विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्र एकादशे तथा ॥  
 द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयमर्हति ॥ १९ ॥  
 तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्विगुणाधिकः ॥  
 वेदव्रतच्युतो ब्राह्मणः स ब्राह्मणस्तोममर्हति ॥ २० ॥  
 द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः ॥  
 द्वितीयं छंदसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥ २१ ॥  
 एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो बान्धवदोषतः ॥  
 श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २२ ॥  
 उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥  
 विभृषादंडकौपीनोपवीताग्निनमेखलाः ॥ २३ ॥  
 पुण्येद्वि गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राहुतिक्रियः ॥  
 स्मृत्वोकारं च गायत्रीमारभेद्वेदमादितः ॥ २४ ॥  
 शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः ॥  
 पठेत गुरुतः सम्यक्कर्म तद्दिष्टमाचरेत् ॥ २५ ॥  
 ततोऽभिवाद्य स्थविरान्गुरुं चैव समाश्रयेत् ॥  
 स्वाध्यायार्थं तदापन्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥ २६ ॥  
 नापक्षितोऽपि भावेत नाव्रजेत्ताडितोऽपि वा ॥  
 विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनं चार्कवीक्षणम् ॥ २७ ॥

तौय्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलंक्रियाम् ॥  
 अञ्जनोद्धर्तनादर्शस्त्राग्विलेपनयोषितः ॥ २८ ॥  
 वृथादनमसंतोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥  
 ईषच्चलितमध्याह्नेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥ २९ ॥  
 अलोलुपश्चरैर्द्रक्षं वृत्तिपूतमवृत्तिषु ॥  
 सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत् ॥ ३० ॥  
 कृतमाध्याह्निकोऽश्नीयादनुज्ञातो यथाविधि ॥  
 नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं भुक्त्वा चाचामितामियात् ॥ ३१ ॥  
 नान्यद्भिक्षितमादद्यादापन्नो द्रविणादिकम् ॥  
 अनिद्यामंत्रितः श्राद्धे पैत्रेऽद्याद्गुरुचोदितः ॥ ३२ ॥  
 एकाग्रमप्यविरोधे व्रतानां प्रथमाश्रमी ॥  
 भुक्त्वा गुरुमुपासीत कृत्वा संपुक्षणादिकम् ॥ ३३ ॥  
 समिधोऽग्निनावादधीत ततः परिचरेद्गुरुम् ॥  
 शयीत गुर्वनुज्ञातः प्रह्वश्च प्रथमं गुरोः ॥ ३४ ॥  
 एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतं चरेत् ॥  
 हितोपवादः प्रियवाकसम्यग्गुर्वर्थसाधकः ॥ ३५ ॥  
 नित्यमाराधयेदनमासमाप्तेः श्रुतिग्रहात् ॥  
 अनेन विधिनाधीतो वेदमंत्रो द्विजं नयेत् ॥ ३६ ॥  
 शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणां च सलोकताम् ॥  
 पयोऽमृताभ्यां मधुभिः साज्यैः प्रीणांते देवताः ॥ ३७ ॥



तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत् ॥  
यदंगं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ॥ ३८ ॥  
व्यतिक्रमादसंपूर्णमनहंकृतिराचरेत् ॥  
परत्रेह च तद्वद्वा अनधीतमपि द्विजम् ॥ ३९ ॥  
यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्ध्वतमाचरेत् ॥  
स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥  
उपकुर्वाणको यस्तु द्विजः पड्डिंश्वार्षिकः ॥  
केशांतकर्मणा तत्र यथोक्तचारितव्रतः ॥ ४१ ॥  
समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ॥  
ज्ञायात् गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥ ४२ ॥  
इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रमकांक्षया ॥  
प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसंभवाम् ॥ १ ॥  
अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम् ॥  
सवर्णामसमानार्णाममातृपितृगोत्रजाम् ॥ २ ॥  
अनन्यप्रार्विकां लब्ध्वा शुभलक्षणसंयुताम् ॥  
धृताधोवसनां गौरीं विख्यातदशधरूपाम् ॥ ३ ॥

रुपातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः ॥  
 दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोद्वहेत् ॥ ४ ॥  
 ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावे परो विप्रिः ॥  
 दातव्यैषा सदृक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ॥ ५ ॥  
 पितृतात्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिमातृषु ॥  
 पूर्याभावे परो दद्यात्सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ॥ ६ ॥  
 यदि सा दातृवैकल्यादजः पश्येत्कुमारिका ॥  
 भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ॥ ७ ॥  
 तुभ्यं दास्याम्यहमिति ग्रहीष्यामीति यस्तयोः ॥  
 कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दंडभाक् ॥ ८ ॥  
 त्यजन्नदुष्टां दंडयः स्याद् दूषयंश्चाप्यद्वेषिताम् ॥  
 ऊढायां हि सवर्णायामन्यां वा काममुद्वहेत् ॥ ९ ॥  
 तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात्प्रहीयते ॥  
 उद्वहेत्क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम् ॥ १० ॥  
 न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ॥  
 नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी ॥ ११ ॥  
 धर्मायैषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ॥  
 पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा ॥ १२ ॥  
 पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ॥  
 यावन्न विदते जायां तावदर्द्धो भवेत्पुमान् ॥ १३ ॥

नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ॥  
 गुर्वी सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ॥ १४ ॥  
 यतस्ततोन्वहं भूत्वा स्ववशो विभृयाच्च ताम् ॥  
 कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेष्मा गृहं वसेत् ॥ १५ ॥  
 स्वकृतं वित्तमासाद्य वैतानामि न हापयेत् ॥  
 स्मार्तं वैवाहिके वद्मो श्रौतं वैतानिकामिषु ॥ १६ ॥  
 कर्म कुर्यात्प्रतिदिनं विधिवत्प्रोतिपूर्वकः ॥  
 सम्यग्धर्मार्थकामेषु दंपतिभ्यामहर्निशम् ॥ १७ ॥  
 एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ॥  
 न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविविसाधनम् ॥ १८ ॥  
 भावतो ह्यातिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ॥  
 पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ॥ १९ ॥  
 उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् ॥  
 मार्जनेर्लेपनैः प्राप्य सामिशालं स्वभंगणम् ॥ २० ॥  
 शोधयेदमिकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥  
 प्रोक्षण्यैरिति तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥  
 द्वेद्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्विद्योजयेत् ॥  
 शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ॥ २२ ॥  
 महानसस्य पात्राणि बहिः प्रक्षाल्य सर्वथा ॥  
 मृद्धिश्च शोधयेच्चूर्त्वा तत्रामिं विन्यसेत्ततः ॥ २३ ॥

न केनचिद्विवेदञ्च अमलापविलापिनी ॥  
 न चापि व्ययशोला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ॥ ३३ ॥  
 प्रमादोन्मादरोपेर्प्यावंचनं चातिमानिताम् ॥  
 पैशुन्यहिंसाविद्वेषमदाहंकारधूर्तताः ॥ ३४ ॥  
 नास्तिक्यं साहसं स्तेयं दंभान्साध्वी विवर्जयेत् ॥  
 एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवतम् ॥ ३५ ॥  
 यशः शमिह यात्येव परत्र च सलोकताम् ॥  
 योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते ॥ ३६ ॥  
 रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् ॥  
 सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितातर्गुहै वसेत् ॥ ३७ ॥  
 एकांचराश्रुता दीना ज्ञानालंकारवर्जिता ॥  
 मौनिन्यधोमुखीचक्षुःपाणिपद्मिरचंचला ॥ ३८ ॥  
 अशनीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने ॥  
 स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥  
 स्नायीत च त्रिरात्रांति सचैलमुदिते रवौ ॥  
 विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ ४० ॥  
 कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥  
 रजोदर्शनतो याः स्यू रात्रयः षोडशर्तवः ॥ ४१ ॥  
 ततः पुंवीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥  
 चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥

जीवंती चेत्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वधुः ॥  
 सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ॥ ५३ ॥  
 तदेवानुक्रमात्कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥  
 जाताः सुरक्षिताः पापात्पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥ ५४ ॥  
 ये यजन्ति पितृन्यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमदोदयैः ॥  
 मृतानामभिहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥  
 दाहयेदविलंबेन भार्या चात्र ब्रजेत सा ॥ ५५ ॥  
 इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् ॥  
 त्रिविधं तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्पावधार्यताम् ॥ १ ॥  
 यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् ॥  
 आलोक्य मंगलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥ २ ॥  
 कृतशौचो निषेव्याग्नीन्दन्तान्प्रक्षाल्य वारिणा ॥  
 स्नात्वापास्य द्विजः संध्यां देवार्दांश्चैव तर्पयेत् ॥ ३ ॥  
 वेदवेदांगशास्त्राणि इतिहासानि चाम्यसेत् ॥  
 अध्यापयेच्च सच्छिष्यान्सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥ ४ ॥  
 अलब्धं प्रापयेद्धृद्ध्वा क्षणमात्रं समापयेत् ॥  
 समर्थो हि समर्थेन नाविज्ञातः कचिद्वसेत् ॥ ५ ॥

सरित्सरःसु वापीषु गतं प्रस्रवणादिषु ॥  
 स्नायीत यावदुद्धृत्य पंचपिंडानि वारिणा ॥ ६ ॥  
 तीर्थाभावेऽप्यशक्तो वा स्नायात्तोयेः समाहृतैः ॥  
 गृहांगणगतस्तत्र यावदंबरपीडनम् ॥ ७ ॥  
 ज्ञातमण्डैवतेः कुर्यात्पावनैश्चापि मार्जनम् ॥  
 मंत्रैः प्राणांस्त्रिराचम्य सौरैश्चार्कं विलोकयेत् ॥ ८ ॥  
 तिष्ठन्निश्च्युत्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत् ॥  
 ऋचां च यजुषां साम्नामथर्वागिरसामपि ॥ ९ ॥  
 इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः ॥  
 शक्त्या सम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १० ॥  
 स यज्ञदानतपसामाखिलं फलमाप्नुयात् ॥  
 तस्माद्दहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥ ११ ॥  
 धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तितः पठेत् ॥  
 कृतस्वाध्यायः प्रथमं तर्पयेच्चाथ देवताः ॥ १२ ॥  
 जान्वाच्य दक्षिणां दर्भैः प्रागग्रैः सयवैस्त्रिलैः ॥  
 एकैकांजलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥ १३ ॥  
 समजानुदयो ब्रह्मसूत्रहार उद्विग्नमुखः ॥  
 तिर्यग्दर्भैश्च वामाग्रैर्यवैस्त्रिलविभिश्चितैः ॥ १४ ॥  
 अंभोभिरुत्तरक्षिप्तैः कनिष्ठामूलनिर्गतैः ॥  
 द्वाभ्यां द्वाभ्यामंजलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥ १५ ॥

दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वाच्य द्विगुणैः कुशैः ॥  
 तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भादिनिःसृतैः ॥ १६ ॥  
 दक्षिणांसोपवातः स्यात्क्रमेणांजलिभिस्त्रिभिः ॥  
 संतर्पयेद्विव्यपितृंस्तत्परांश्च पितृन्स्वकान् ॥ १७ ॥  
 मातृमातामहांस्तद्वत्त्रिनेवं हि त्रिभिस्त्रिभिः ॥  
 मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ॥ १८ ॥  
 तानेकांजलिदानेन तर्पयेच्च पृथक्पृथक् ॥  
 असंस्कृतप्रमाता ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ॥ १९ ॥  
 वस्त्रनिष्पीडितांभोभिस्तेषामाप्यायनं भवेत् ॥  
 अतर्पितेषुं पितृषु वस्त्रं निष्पीडयेच्च यः ॥ २० ॥  
 निराशाः पितरस्तस्य भवंति सुरमानुषैः ॥  
 पयोदर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥ २१ ॥  
 सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापिवृथा विना ॥  
 अन्यचित्तेन यदत्तं यदत्तं विधिवर्जितम् ॥ २२ ॥  
 अनासनस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते ॥  
 एवं संतर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पयन्ति च ॥ २३ ॥  
 ब्रह्मविष्णुशिवादित्यामित्रावरुणनामभिः ॥  
 पूजयेद्भक्षितैर्मन्त्रैर्जलमंत्रोक्तदेवताः ॥ २४ ॥  
 उपस्थाय रविं काष्ठां पूजयित्वा च देवताः ॥  
 ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीवविष्णूनां निहतांहसाम् ॥ २५ ॥

तत्तन्मन्त्रैश्च सत्कारं नमस्कारैः स्वनामभिः ॥  
 कृत्वा मुखं समालभ्य स्नानमेवं समाचरेत् ॥ २६ ॥  
 ततः प्रविश्य भवनमारस्ये द्रुताशने ॥  
 पाक्यज्ञाश्च चतुरो विदध्याद्विधिवद्दिनः ॥ २७ ॥  
 अनाहितावसथ्यामिरादायात्रं घृतश्रुतम् ॥  
 शाकले न पिधानेन जुहुयाद्धौकिकेऽनले ॥ २८ ॥  
 व्यस्ताभिव्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः परम् ॥  
 षडभिर्देवकृतस्येति मंत्रविद्विर्यवाक्रमय ॥ २९ ॥  
 प्राजापत्यं स्विष्टकृतं हुत्वैवं द्वादशाहुतीः ॥  
 ओंकारपूर्वः स्वाहातस्त्यागः स्विष्टविधानतः ॥ ३० ॥  
 भविर्दर्भान्समास्तीर्य बलिकर्म समाचरेत् ॥  
 विश्वेभ्यो देवेभ्य इति सर्वेभ्यो भूतेभ्य एव च ॥ ३१ ॥  
 भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित् ॥  
 दद्याद्वलित्रयं चाग्रे पितृभ्यश्च स्वधानमः ॥ ३२ ॥  
 पात्रनिर्णेज्जनं वारि वायव्यां दिशि निःक्षिपेत् ॥  
 उद्धृत्य षोडशप्रासमात्रमन्नं घृतोक्षितम् ॥ ३३ ॥  
 इदमन्नं मनुष्येभ्यो हंत्युक्त्वा समुत्सृजेत् ॥  
 गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापि शक्तिः ॥ ३४ ॥  
 षड्भ्योऽन्नमन्त्रं ह दद्यात्पितृयज्ञविधानतः ॥  
 वेदादीनां पठे त्विचिदल्पं ब्रह्ममखासये ॥ ३५ ॥



ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्य भवनाद्दहिः ॥  
 काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्राक्षिपेद्भासमेव च ॥ ३६ ॥  
 उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद्यावन्मुहूर्तकम् ॥  
 अप्रमुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धः प्रतीक्षकः ॥ ३७ ॥  
 आगतं दूरतः श्रान्तं भोक्तुकामाकिंचनम् ॥  
 दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्चनैः ॥ ३८ ॥  
 पादधावनसंमानाभ्यंजनादिभिरर्चितः ॥  
 त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥ ३९ ॥  
 कालागतोऽतिथिर्दृष्ट्वेदपारो गृहागतः ॥  
 द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥ ४० ॥  
 विवाह्यस्नातकक्षमाभृदाचार्यसुहृद्विजः ॥  
 अर्घ्या भवंति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ॥ ४१ ॥  
 गृहागताय सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि ॥  
 भक्ष्योपकल्पयेदेकं दहाभागं विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥  
 विसर्जयेदनुव्रज्य सुवृत्तश्रोत्रियातिथिन् ॥  
 मित्रमातुलसंबन्धिचांधवान्समुपागतान् ॥ ४३ ॥  
 भोजयेद्गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति ॥  
 स्वादन्नमशन्नस्वादु ददन्नच्छत्यधोगतिम् ॥ ४४ ॥  
 गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु ॥  
 बभुक्षितेषु भुञ्जानो गृहस्थोऽश्नाति किल्बिषम् ॥ ४५ ॥

नाद्यादृशुषेन्नपाकाद्यंकदाचिदनिमंत्रितः ॥  
 निमंत्रितोऽपि निदेत मत्याख्यानं द्विजोऽहंति ॥ ४६ ॥  
 शूद्राभिशस्तवार्धुप्यवाग्दुष्टकूरतस्कराः ॥  
 क्रुद्धापविद्धवद्धोग्रधध्वंधनजीविनः ॥ ४७ ॥  
 शैलूषशौण्डिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः ॥  
 नमनास्तिकनिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥ ४८ ॥  
 कदर्पस्त्रीजितानार्यपरवादकृता नराः ॥  
 अनीशाः क्रीर्तिमंतोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥ ४९ ॥  
 शयनोसनसंसर्गकृतकर्मादिदूषिताः ॥  
 अभद्रवानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥  
 अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य यः स्यात्सतत्समः ॥ ५० ॥  
 नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः ॥  
 शूद्राणामप्यभीषां तु भुक्त्वात्र नैव दुष्यति ॥ ५१ ॥  
 धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ॥ ५२ ॥  
 स्ववृत्तोपार्जितं मेध्यमाकरस्थममाक्षिकम् ॥  
 अश्वलीढमगोघातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ॥ ५३ ॥  
 अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेव च ॥  
 अम्लानबाह्यमन्नाद्यमार्द्यं नित्यं सुसंस्कृतम् ॥  
 कृसरारूपसंयावपायसं शङ्कुलीति च ॥ ५४ ॥  
 नाभीयाद्वाङ्मणो मांसमनियुक्तः कथंचन ॥

क्रतौ श्राद्धे निपुक्तो वा अनश्वन्पतति द्विजः ॥ ५५ ॥  
 मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥  
 क्षत्रियो द्वादशोऽनं तत्क्रीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः ॥ ५६ ॥  
 द्विजो जग्ध्वा पृथामांसं हत्वाप्यविधिना पशून् ॥  
 निरयेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम् ॥ ५७ ॥  
 सर्वान्कामान्समासाद्य फलमश्वमखस्य च ॥  
 मुनिसाम्यमवाप्नोति गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः ॥ ५८ ॥  
 द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिष्याणि पयांसि च ॥  
 निर्दशासंभिसंबन्धिवत्सवंतीपयांसि च ॥ ५९ ॥  
 पलांडुं श्वेतशृङ्गाकं रक्तमूलकमेव च ॥  
 गृजनारुणशृङ्गासृगं तु गर्भफलानि च ॥ ६० ॥  
 अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैदवं चरेत् ॥  
 वाग्दूषितमविज्ञातमन्यपीडितकार्यपि ॥ ६१ ॥  
 भूतेभ्योऽन्नमदत्त्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत् ॥  
 हैमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात्सदा गृही ॥ ६२ ॥  
 अभावे साधुगन्धेषु लोधद्रुमलतासु च ॥  
 पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥ ६३ ॥  
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयो यद्भोक्तुमर्हति ॥ ६४ ॥  
 अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारिर्भुवि दद्याद्दलित्रयम् ॥  
 भूपतये भुवः पतये भूतानां पतये तथा ॥ ६५ ॥

- अपः प्राश्य ततः पश्चात्पंचप्राणादुतीः क्रमात् ॥  
 स्वाहाकारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥ ६६ ॥  
 अनन्यवित्तो भुंजीत चाग्न्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥  
 आर्तमेरन्नमश्रीयादक्षुण्णं पात्रमुत्सृजेत् ॥ ६७ ॥  
 लच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेकं भुवि क्षिपेत् ॥ ६८ ॥  
 आचांतः साधुसंगेन सद्विद्यापठनेन च ॥  
 घृतवृद्धकथाभिश्च शेषाहमतिवाहयेत् ॥ ६९ ॥  
 सायं संध्यामुपासीत ह्रत्वाग्निं भृत्यसंयुतः ॥  
 आपोशानक्रियापूर्वमग्नीयादन्वहं द्विजः ॥ ७० ॥  
 सायमप्यतिथिः पूज्यो होमकालागतोऽनिशम् ॥  
 श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपूजितः ॥ ७१ ॥  
 नातिवृत्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥  
 अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीत शयने शुभे ॥  
 शक्तिमानुदिते काले स्नानं संध्यां न हापयेत् ॥ ७२ ॥  
 ब्राह्मे मुहुर्ते चोत्थाय चिंतयेद्दितमात्मनः ॥  
 शक्तिमान्मतिमान्नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ७३ ॥  
 इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

- इति व्यासकृतं शास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ॥  
 आश्रमे यानि पुण्यानि मोक्षधर्माश्रितानि च ॥ १ ॥

गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ॥  
 सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥ २ ॥  
 गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः ॥  
 नित्यजापो च होमी च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥  
 स्वदारे यस्य संतोषः परदारनिवर्तनम् ॥  
 अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥ ४ ॥  
 परदारान्परद्रव्यं हस्ते यो दिने दिने ॥  
 सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥ ५ ॥  
 गृहेषु सवनीयेषु सर्वतीर्थफलं ततः ॥  
 अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भागेने लिप्यते ॥ ६ ॥  
 प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानां च तर्पणम् ॥  
 न पापं संस्पृशेत्तस्य बलिभिक्षां ददाति यः ॥ ७ ॥  
 पादोदकं पादधृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥  
 यो ददातिब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥ ८ ॥  
 विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥  
 तावत्पुष्करपात्रेषु पियंति पितरोऽमृतम् ॥ ९ ॥  
 यत्फलं कपिलादाने कार्त्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे ॥  
 तत्फलं हृषयः श्रेष्ठा विप्राणां पादशोधने ॥ १० ॥

स्वागमेनामयः प्रीता आसेनेन शतप्रतुः ॥  
 पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ ११ ॥  
 मातापित्रोः परं तीर्थं गंगा गावो विशेषतः ॥  
 ब्राह्मणात्परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥  
 इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः ॥  
 तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥ १३ ॥  
 गंगाद्वारं च केदारं सन्निहृत्यं तथैव च ॥  
 एतानि सर्वतीर्थानिकृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥  
 वर्णानामाश्रमाणां च चातुर्वर्ण्यस्य भो द्विजाः ॥  
 दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा ध्यासेन भाषितम् ॥ १५ ॥  
 यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिनेदिने ॥  
 तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥ १६ ॥  
 यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ॥  
 अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥ १७ ॥  
 किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः ॥  
 यद्दर्दयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥ १८ ॥  
 अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ॥  
 नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १९ ॥  
 यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये ॥  
 यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥ २० ॥

- जीवंति जीविते यस्य विप्रमित्राणि बाधकाः ॥  
 जीवितं सफलं तस्य आत्मार्यं को न जीवति ॥ २१ ॥  
 पशवोऽपि हि जीवंति केवलान्मोदरभराः ॥  
 किं कायेन सुगुप्तेन बलिना चिरजीविना ॥ २२ ॥  
 ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ॥  
 इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥ २३ ॥  
 अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ॥  
 दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुंचति ॥ २४ ॥  
 प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न स मृतः ॥  
 अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ॥ २५ ॥  
 अनाहूतेषु यदत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ॥  
 भविष्यति युगस्यांतस्तस्यांतो न भविष्यति ॥ २६ ॥  
 मृतवत्सा यथा गौश्च कृष्णा लोभेन दुह्यते ॥  
 परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥ २७ ॥  
 अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते ॥  
 पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनंतकम् ॥ २८ ॥  
 मातापितृषु यदद्याद्भ्रातृषु श्वशुरेषु च ॥  
 जायापत्येषु यदद्यात्सौजन्यतः स्वर्गसंक्रमः ॥ २९ ॥  
 पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते ॥  
 भगिन्यां शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ ३० ॥

अहन्यदनि दातव्यं ब्राह्मणेषु मुनीश्वराः ॥  
 आगमिष्यति यत्पात्रं तत्पात्रं तारविष्यति ॥ ३१ ॥  
 किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ॥  
 पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्राग्रं यस्य नोदरे ॥ ३२ ॥  
 यस्य यैव गृहे मूर्खो दूरं चापि गुणान्वित ॥  
 गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ३३ ॥  
 देवदव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ॥  
 कुलान्यकुलतां याति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ३४ ॥  
 ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविचर्जिते ॥  
 ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि ह्रियते ॥ ३५ ॥  
 सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ॥  
 भोजने चैव दाने च हन्यान्निपुरुषं कुलम् ॥ ३६ ॥  
 यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥  
 यश्च विप्रोऽग्निधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३७ ॥  
 ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ॥  
 यश्च विप्रोऽग्निधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३८ ॥  
 ब्राह्मणेषु च यदन्नं यच्च वैश्वानरे हुतम् ॥  
 तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥ ३९ ॥  
 सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥  
 सहस्रगुणमाचार्ये ह्यनन्तं वेदपात्रे ॥ ४० ॥



ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मंत्रसंस्कारवर्जितः ॥  
 जातिमात्रोपजीवी च स भवेद्ब्राह्मणः संभः ॥ ४१ ॥  
 गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च ॥  
 नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणश्रुवः ॥ ४२ ॥  
 असिहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ॥  
 सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य्यं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥  
 इष्टिभिः पशुबंधैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ॥  
 आग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येन चेष्टं स इष्टवान् ॥ ४४ ॥  
 मीमांसते च यो वेदान्पट्वाभिरंगैः सविस्तरैः ॥  
 इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः ॥ ४५ ॥  
 ब्राह्मणा येन जीवंति नान्यो वर्णः कथंचन ॥  
 ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥ ४६ ॥  
 ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि दैवतम् ॥  
 प्रत्यक्षं चैव लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥ ४७ ॥  
 ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निष्कर्करमकंटकम् ॥  
 वापयेत्तत्र बीजानि सा कृषिः सार्वकामिकी ॥ ४८ ॥  
 सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे दापयेद्धनम् ॥  
 सुक्षेत्रे च सुपात्रे च क्षिप्तं नैव हि दुष्यति ॥ ४९ ॥  
 विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गृहमागते ॥  
 क्रीडंत्योपधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥ ५० ॥

नष्टशीचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते ॥

दीपमानं रुदत्पत्रं भपाद्वै दुष्कृतं कृतम् ॥ ५१ ॥

वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमापि भोजयेत् ॥

न च मूर्ख निराहारं पद्मात्रमुपवासिनम् ॥ ५२ ॥

यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठन्ति भो द्विजाः ॥

तानि तस्य प्रयोज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥ ५३ ॥

यस्य देहे सदाभ्रन्ति हव्यानि त्रिदिवीकसः ॥

कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ ५४ ॥

यद्भुक्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः ॥

दातुः फलमसंख्यातं प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥ ५५ ॥

हस्त्यश्वरथयानानि केचिदिच्छन्ति पण्डिताः ॥

अहं नेच्छामि मुनयः कस्येतः सर्वसंपदः ॥ ५६ ॥

वेदलांगलकृष्टेषु द्विजश्रेष्ठेषु सत्सु च ॥

यत्पुरा पातितं बीजं तस्यैताः सस्यसंपदः ॥ ५७ ॥

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ॥

वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥ ५८ ॥

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनाच्च च पण्डितः ॥

न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ॥ ५९ ॥

इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः ॥

हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः ॥ ६० ॥

यद्येकपक्षपां विषमं ददाति स्नेहाद्गयाद्वा यदि वार्यहेतोः ॥  
 वेदेषु दृष्टंष्टुषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥ ६१ ॥  
 ऊखरे वापितं वीजं भित्रभाण्डेषु गोदुहम् ॥  
 द्रुतं भस्मनि हव्यं च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥ ६२ ॥  
 मृतसूतकपुष्टांगो द्विजः शूद्रान्नभोजने ॥  
 अहमेवं न जानामि कां योनिं स गमिष्यति ॥ ६३ ॥  
 शूद्रान्नोदरस्थेन यदि कश्चिन्निषेत् यः ॥  
 स भवेत्सूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥ ६४ ॥  
 गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्तजन्मानि सूकरः ॥  
 श्वानश्च सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ६५ ॥  
 अमृतं ब्राह्मणान्नैव दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च ॥  
 वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत् ॥ ६६ ॥  
 यश्च भुङ्क्तेऽथ शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ॥  
 इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते ॥ ६७ ॥  
 यस्य शूद्रा पचेत्रित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ॥  
 वर्जितः पित्रदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥ ६८ ॥  
 भाण्डसंकरसंकीर्णा नानासंकरसंकराः ॥  
 योनिसंकरसंकीर्णा निरयं याति मानवाः ॥ ६९ ॥  
 पंक्तिभेदो वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ॥  
 आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥

इदं व्यासमतं नित्यमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥

एतदुक्ताचारवतः पतनं नैव विद्यते ॥ ७१ ॥

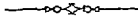
इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति व्यासस्मृतिः समाप्ता ॥ १२ ॥



॥ श्रीः ॥

## शङ्खस्मृतिः १३.



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शंखस्मृतिप्रारंभः ॥  
स्वयंभुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ॥  
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखः शास्त्रमकल्पयत् ॥ १ ॥  
यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया ॥  
प्रतिग्रहं चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत् ॥ २ ॥  
दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ॥  
क्षत्रियस्य च वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥  
क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ॥  
कृपिगोरक्षबाणिज्यं विशश्च परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥  
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वाशिल्पानि बाध्यथ ॥  
क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥  
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥  
तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौजिवन्धनम् ॥ ६ ॥  
आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ॥  
ब्राह्मणक्षत्रियविशां मौजीवन्धनजन्मनि ॥ ७ ॥  
वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणेः ॥  
याउद्वेदे न जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥ ८ ॥  
इति श्रीशंखस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

गर्भस्य स्फुटताज्ञानं निषेकः परिकीर्तितः ॥  
 पुरा तु स्पन्दनात्कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥ १ ॥  
 षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो जाते वै जातकर्म च ॥  
 आंशीचे च व्यतिक्रान्ति नामकर्म विधीयते ॥ २ ॥  
 नामधेयं च कर्तव्यं वर्णानां च समाक्षरम् ॥  
 मांगल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्यवलान्वितम् ॥ ३ ॥  
 वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥  
 शर्मातं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मातं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥  
 धनातं चैव वैश्यस्य दासान्तं चात्यजन्मनः ॥  
 चतुर्थे मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥  
 षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ॥  
 गर्भाष्टमेऽन्धे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥  
 गर्भादकादशे राज्ञो गर्भाद्वादशमे विशः ॥  
 षोडशाब्दानि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ॥ ७ ॥  
 विंशतिः सचतुष्का तु वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥  
 नातिवर्तेत सावित्रीमत ऊर्ध्वं निवर्तते ॥ ८ ॥  
 विज्ञातव्यास्त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥  
 सावित्रीपतिता ब्राह्म्याः सर्वधर्मबाहिष्कृताः ॥ ९ ॥

मौंजीज्याबंधनानां तु क्रमान्मौंज्यः प्रकीर्तिताः ॥  
 मार्गवैयात्रवास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणाम् ॥ १० ॥  
 पर्णपिप्पलविल्वानां क्रमादंडाः प्रकीर्तिताः ॥  
 केशदेशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ॥ ११ ॥  
 अवक्रास्सत्वचः सर्वे अनग्न्येधास्तथैव च ॥  
 वस्त्रोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ॥ १२ ॥  
 आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥  
 भैक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १३ ॥  
 इति श्रीशंखस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥  
 आचारमधिकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ १ ॥  
 स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥  
 भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥ २ ॥  
 माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयास्सदा नृणाम् ॥  
 क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यैते नादृतास्त्रयः ॥ ३ ॥  
 प्रयतः कल्य उत्थाय स्नातो हुतहुताशनः ॥  
 कुर्वीत प्रणतो भक्त्या गुरुणामभिवादनम् ॥ ४ ॥  
 अनुज्ञातस्तु गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ॥

कृत्वा ब्रह्मानलिं पश्यन्गुरोर्वदनमानतः ॥ ५ ॥

ब्रह्मावसाने प्रारंभे प्रणवं च प्रकीर्तयेत् ॥

अनध्यायेत्पध्ययनं वर्जयेच्च प्रपन्नतः ॥ ६ ॥

चतुर्दशीं पंचदशीमष्टमीं राहुसूतकम् ॥

उल्कापातं महीकंपमाशौचं ग्रामविष्टयम् ॥ ७ ॥

इंद्रप्रयाणं श्वहतं सर्वसंघातनिस्वनम् ॥

वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान्विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

नार्थीपीताभिषुक्तोऽपि यानगो न च नौगतः ॥

देवायतनचल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ॥ ९ ॥

भैक्ष्यचर्या तथा कुर्याद्ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥

गुरुणा चाप्यनुज्ञातः प्रारंभीयात्प्राङ्मुखः शुचिः ॥ १० ॥

हितं प्रियं गुरोः कुर्यादहंकारविवर्जितः ॥

उपास्य पश्चिमां संध्यां पूजयित्वा हुताशनम् ॥ ११ ॥

अभिवाद्य गुरुं पश्चाद्गुरोर्वचनकृद्भवेत् ॥

गुरोः पूर्वं समुत्तिष्ठेच्छयीत चरमं तथा ॥ १२ ॥

मधु मांसोजनं श्राद्धं गीतं नृत्यं च वर्जयेत् ॥

हिंसा परापवादं च स्त्रीलीलां च विशेषतः ॥ १३ ॥

मेखलामजिनं वंडं धारयेच्च विशेषतः ॥

अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १४ ॥



एवं व्रतं तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः ॥

गुरवे च धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

विदेत विधिवद्भार्यामसमानार्पणोत्रजाम् ॥

मातृतः पंचर्मी चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥ १ ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्पः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥

गांधर्वो राक्षसश्चैव पेशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २ ॥

एभ्यो धर्म्यास्तु चत्वारः पूर्व ये परिकीर्तिताः ॥

गांधर्वो राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य तु शस्यते ॥ ३ ॥

संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ॥

यज्ञस्थायत्विजे दैव आदायार्पस्तु गोद्वयम् ॥ ४ ॥

प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ॥

आसुरो द्रविणादानाद्रांधर्वः समयान्मिथः ॥ ५ ॥

राक्षसो गुह्रहरणापेशाचः कन्यकाच्छलात् ॥

तिस्रस्तु भार्या विप्रस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ॥ ६ ॥

एकैव भार्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता ॥

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या विप्रभार्याः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥

क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ॥

वैश्या च भार्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ॥८॥  
 आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजन्मना ॥  
 तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९ ॥  
 तपस्वी यज्ञशौलस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥  
 ध्रुवं शूद्रत्वमायाति शूद्रश्राद्धे त्रयोदशे ॥ १० ॥  
 नोपते तु सपिण्डत्वं येषां शूद्रः कुलोद्भवः ॥  
 सर्वे शूद्रत्वमायाति यदि स्वर्गजितश्च ते ॥ ११ ॥  
 सपिण्डीकरणं कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम् ॥  
 श्राद्धद्वादशकं कृत्वा श्राद्धे प्राप्ते त्रयोदशे ॥ १२ ॥  
 सपिण्डीकरणं चाहर्हेन्न च शूद्रः कथंचन ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्या विवर्जयेत् ॥ १३ ॥  
 पाणिग्राह्यस्सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥  
 वैश्या प्रतोदमादद्याद्धेदेन त्वग्रजन्मनः ॥ १४ ॥  
 सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥  
 सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या प्रजावती ॥ १५ ॥  
 लालनीया सदा भार्या ताडनीया तथैव च ॥  
 ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥ १६ ॥  
 इति शंखस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

पंचसूना गृहस्थस्य जुह्वी पेपण्युपस्करः ॥  
 कण्डनी चोदकुंभश्च तस्य पापस्य शांतये ॥ १ ॥  
 पंचयज्ञविधानं तु गृही नित्यं न हापयेत् ॥  
 पंचयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ॥ २ ॥  
 देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ॥  
 ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पंचयज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥  
 होमो देवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिंडक्रिया स्मृतः ॥  
 स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ४ ॥  
 वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ॥  
 गृहस्थस्य प्रसादेन जीवंत्येते यथाविधि ॥ ५ ॥  
 गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तपते तपः ॥  
 ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥ ६ ॥  
 यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥  
 अतिथिस्तद्देवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥ ७ ॥  
 न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ॥  
 नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ ८ ॥  
 न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः ॥  
 राजा स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥ ९ ॥

एतैरेव गुणैर्गुक्तं धर्मान्वितधनं तथा ॥

याजयीत सदा विप्रो ब्राह्मस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तथा चानुगतो वनम् ॥

अमीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥ २ ॥

यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥

तेनैव पूजयेन्नित्यमतिथिं समुपागतम् ॥ ३ ॥

ग्रामादाहृत्य वाश्रीपादष्टौ आसान्समाहितः ॥

स्वाध्यायं च तथा कुर्याज्जटाश्च विभृयात्तथा ॥ ४ ॥

तपसा शोपयेन्नित्यं स्वकंचैव कलेवरम् ॥

आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥ ५ ॥

प्रावृष्याकाशशायी च नक्ताशी च सदा भवेत् ॥

चतुर्थकालिको वा स्यात्पञ्चकालिक एव वा ॥ ६ ॥

वृक्षैर्वापि नयेत्कालं ब्रह्मचर्यं च पालयेत् ॥

एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्यायः ७.

कृत्वोष्टं विधिवत्पश्चात्सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥  
 आत्मन्यमीन्समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ १ ॥  
 विधूमे न्यस्तमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने ॥  
 अतीते पात्रसंपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥  
 सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ॥ २ ॥  
 न व्यथेच्च तथाऽलाभे यथालब्धेन घर्तयेत् ॥  
 न स्वादयेत्तथैवान्नं नाशनीयात्कस्यचिद्गृहे ॥ ३ ॥  
 मृन्मयालावुपात्राणि यतीनां च विनिर्दिशेत् ॥  
 तेषां संमार्जनाच्छुद्धिरद्विश्चैव प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥  
 कौपीनाच्छादनं वासो विभृपादव्यथश्चरन् ॥  
 शून्यागारनिकेतः स्पाद्यत्र सापंगृहो मुनिः ॥ ५ ॥  
 दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥  
 सत्पूतं वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ६ ॥  
 सयंभूतसमो मैत्रः समलोष्टाश्मकांचनः ॥  
 ध्यानयोगरतां भिक्षुः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ७ ॥  
 जन्मना यस्तु निर्मुक्तो मरणेन तथैव च ॥  
 आधिभि र्प्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ८ ॥  
 अशुचित्वं शरीरस्य पिपापिपात्रिपर्ययः ॥  
 गर्भवासे च वसते तस्मान्मुच्येत नान्यथा ॥ ९ ॥

जगदेतन्निराक्रंदं निःसारकमनर्थकम् ॥

भोक्तव्यमिति निर्दिष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥

प्राणायामैर्दहेहोपान्धारणाभिश्च किल्विषम् ॥

प्रत्याहारेण संसर्गान्व्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ १२ ॥

मनसः संयमस्तज्जीर्धारणेति निगद्यते ॥

संहारश्चेंद्रियाणां च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥

हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्य दर्शनम् ॥

ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् ॥ १४ ॥

हृदिस्था देवतास्सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥

हृदि ज्योतींषि सूर्यश्च हृदि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥

ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्विष्णुं पश्येद्बृदिस्थितम् ॥ १६ ॥

हृद्यर्कश्चंद्रमाः सूर्यः सोममध्ये हुताशनः ॥

तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥ १७ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥

तेजोमयं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ १८ ॥

वासुदेवस्तमोऽधानां पर्णेऽपि पिधीयते ॥

अज्ञानपटसंवीतैरिन्द्रियैर्विषयेच्छुभिः ॥ १९ ॥

रुद्रान्प्रपद्ये वरदान्सर्वानप्सुसदस्तथा ॥  
 सर्वानप्सुसदश्चैव प्रपद्ये प्रणतः स्थितः ॥ ५ ॥  
 देवमप्सुसदं वह्निं प्रपद्येऽधनिषूदनम् ॥  
 आपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ॥ ६ ॥  
 रुद्रश्चामिश्र सर्पाश्च वरुणश्चाप एव च ॥  
 शमयन्त्वाशु मे पापं मां रक्षन्तु च सर्वशः ॥ ७ ॥  
 इत्येवमुक्त्वा कर्तव्यं ततः संमार्जनं जले ॥  
 आपोहिष्ठेति तिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः ॥ ८ ॥  
 हिरण्यवर्णेति वदेदामिश्र तिसृभिस्तथा ॥  
 शत्रोदेवीति च तथा शन्न आपस्तथैव च ॥ ९ ॥  
 इदमापः प्रवहत तथा मंत्रमुदीरयेत् ॥  
 एवं मंत्रान्समुच्चार्य छंदोसि ऋषिदेवताः ॥ १० ॥  
 अथमर्पणसूक्तस्य संस्मरन्प्रयतः सदा ॥  
 छंद आनुष्टुभं तस्य ऋषिश्चैवाथमर्पणः ॥ ११ ॥  
 देवता भाववृत्तान्तु पापघ्नस्य प्रकीर्तितः ॥  
 ततोऽंभासि निमग्नस्तु त्रिः पठेदथमर्पणम् ॥ १२ ॥  
 यथाश्चमेधः क्रतुराद् सर्वपापप्रणाशनः ॥  
 तथाथमर्पणं सुक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥  
 अनेन स्नात्वा अम्मध्ये स्नातवान्धौतवाससा ॥  
 परिवर्तितवासास्तु तीर्थतोरमुपस्पृशेत् ॥ १४ ॥

उदकस्याप्रदानाच्च स्नानशार्दी न पीडयेत् ॥

अनेन विप्रिना स्नातस्तीर्थस्य फलमश्नुते ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

### दशमोऽध्यायः १०.

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ॥

कायं कानिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥ १ ॥

अंगुष्ठमूले च तथा प्राजापत्यं विचक्षणैः ॥

अंगुल्यग्रे स्मृतं दिव्यं पित्र्यं तर्जनिमूलकम् ॥ २ ॥

प्राजापत्येन तीर्थेन त्रिः प्राश्नीयाज्जलं द्विजः ॥

द्विः प्रमृज्य मुखं पश्चात्खान्याद्विः समुपस्पृशेत् ॥ ३ ॥

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥

तालुगाभिस्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ४ ॥

अंतर्जानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः ॥

उदङ्मुखो वा प्रयतो दिशश्चानवलोकयन् ॥ ५ ॥

अद्विः समुद्धताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥

बहिना चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥

तर्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ॥

अंगुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ॥ ७ ॥

अंगुष्ठानामिकायोगे श्रवणौ समुपस्पृशेत् ॥



कनिष्ठांगुष्ठयोगेन स्पृशेत्स्कंधद्वयं ततः ॥ ८ ॥  
 सर्वाङ्गमेव योगेन नाभिं च हृदयं तथा ॥  
 संस्पृशेच्च तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः ॥ ९ ॥  
 त्रिः प्राश्नीयाद्यदंभस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ॥  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥ १० ॥  
 गंगा च यमुना चैव प्रीयते परिमार्जनात् ॥  
 नासत्यदसौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ॥ ११ ॥  
 स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयेते शशिभास्करो ॥  
 कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयेते अनिलानलौ ॥ १२ ॥  
 स्कंधयोः स्पर्शनादस्य प्रीयेत सर्वदेवताः ॥  
 मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥  
 विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्तशिखो द्विजः ॥  
 अप्रक्षालितपादस्तु आर्चातोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १४ ॥  
 वह्निर्जानुरुपस्पृश्य एकहस्तार्पितैर्जलैः ॥  
 सोपानकस्तथा तिष्ठन्नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥  
 आचम्य च पुरा प्रोक्तं तीर्थसंमार्जनं तु यत् ॥  
 उपस्पृशेत्ततः पश्चान्मंत्रेणानेन धर्मतः ॥ १६ ॥  
 अंतश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ॥  
 त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम् ॥ १७ ॥

आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम् ॥  
उदुत्यंजातवेदसमिति मंत्रेण निःक्षिपेत् ॥ १८ ॥  
एष एव विधिः प्रोक्तः संध्यायाश्च द्विजातिषु ॥  
पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥ १९ ॥  
ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं वायु शक्तितः ॥  
ऋषयो दीर्घसंध्यत्वादीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥ २० ॥  
सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् ॥  
येषां जपैश्च होमैश्च पूयंते मानवाः सदा ॥ २१ ॥  
इति श्रीशंखस्मृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

### एकादशोऽध्यायः ११.

अथमर्पणं देववृत्तं शुद्धवत्यश्च तरुसमाः ॥  
कूष्माण्डयः पावमान्यश्च सावित्र्यश्च तथैव च ॥ १ ॥  
अभीष्टदृष्टपदा चैव स्तोमानि व्याहृतीस्तथा ॥  
भारुंडानि च सामानि गायत्री चौशनं तथा ॥ २ ॥  
पुरुषवृत्तं च भापं च तथा सोमव्रतानि च ॥  
अञ्जिगं बार्हस्पत्यं च चाक्सूक्तममृतं तथा ॥ ३ ॥  
शतरुद्रियमथर्वशिर स्त्रिसुपर्णमहाव्रतम् ॥  
गोसूक्तमश्वसूक्तं च इंद्रसूक्तं च सामनी ॥ ४ ॥

घोण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्निव्रतं वामदेवव्रतं च ॥  
एतानि गीतानि पुनरिति जन्तुजातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ॥५॥

इति श्रीशरस्मृतवेदादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्यायः १२.

इति वेदपवित्राण्यभिहितानि एभ्यस्सावित्री विशिष्यते ॥  
नास्त्यघमर्पणात्परमंतर्जलेन सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृति-  
समं हुतम् ॥ कुशशप्यामासीनः कुशोत्तरीयो वा कुशप-  
वित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा अक्षमालामुपादाय  
देवताध्यायी जपं कुर्यात् ॥ सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्ष-  
रुद्राक्षपुत्रजीवकानामन्यतमानादाय मालां कुर्यात् ॥ कुशग्रंथं  
कृत्वा धामहस्तोपायनैर्वा गणयेत् आदौ देवतामर्पं छंदः  
स्मरेत् ततः सप्रणवसव्याहृतिकामादावन्ते च शिरसा गायत्री-  
मावर्तयेत् ॥ अथास्याः सवितादेवता ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री  
छंदः ॐ ऋारप्रणवाद्याः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः  
ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यमिति व्याहृतयः ॐ आपो ज्योती  
रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरः ॥ भवन्ति चात्र  
श्लोकाः ॥

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥ १ ॥

शतजप्ता तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी ॥  
 सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत् ॥ २ ॥  
 दशसाहस्रजप्ता तु सर्वकल्मषनाशिनी ॥  
 सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥  
 सुरापश्च विशुद्ध्येत लक्षजप्यात्र संशयः ॥ ३ ॥  
 प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ॥  
 अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ ४ ॥  
 संव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ॥  
 अपि भ्रूणहनं मासात्पुनंत्यहरहः कृताः ॥ ५ ॥  
 हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥  
 सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला ॥ ६ ॥  
 शान्तिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥  
 हंतुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा ॥ ७ ॥  
 श्रीकामस्तुः तथा पद्मैर्विल्वैः कांचनकामुकः ॥  
 ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ॥ ८ ॥  
 घृतप्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सुसमाहितः ॥  
 गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥  
 पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥  
 अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ॥ १० ॥  
 गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥

गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥ ११ ॥

हस्तेत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्गवे ॥

तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥ १२ ॥

गायत्रीजप्यनिरतं हव्यकथ्येषु भोजयेत् ॥

तस्मिन् तिष्ठते पापमञ्चिदुरिव पुष्कर ॥ १३ ॥

जप्येनेव तु संसिद्धयेद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥

कुर्यादन्यत्र वा कुर्यान्मन्त्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १४ ॥

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥

नोच्चैर्जाप्यं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥ १५ ॥

सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥

गायत्रीजाप्यनिरतो मोक्षोपायं च विंदति ॥ १६ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ॥

गायत्री तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

### त्रयोदशोऽध्यायः १३.

स्नातः कृतजप्यस्तदनु प्राङ्मुखो दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन  
तर्पयेत् ॥ अथ तर्पणविधिः ॥ ॐ भगवंतं शेषं तर्पयामि ।

कालामिरुद्धं तु ततो रुक्मभौमं तथैव च ॥ श्वेतभौमं ततः  
प्रोक्तं पातालानां च सप्तमम् ॥ १ ॥ जंबूद्वीपं ततः प्रोक्तं

शाकद्वीपं ततः परम् ॥ गोमेदपुष्करे तद्वच्छाकाख्यं च ततः  
परम् ॥ २ ॥ शार्वरं ततः स्वधामानं ततः हिरण्यरोमाणं ततः  
कल्पस्थायिनो लोकांस्तर्पयेत् ॥ लवणोदं ततः दधिमण्डोदं  
ततः सुरोदं ततः घृतोदं ततः क्षीरोदं ततः इक्षूदं ततः  
स्वादूदं ततः इति सप्तसमुद्रकम् प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेनोदकांज-  
लीन् दद्यात् पुष्पाणि च तथा भक्त्या ॥ अथ कृतापसव्यो  
दक्षिणामुखोऽस्तर्जानुः पित्र्येण पितॄणां यथाश्राद्धं प्रकाममुदकं  
दद्यात् ॥ सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौदुंबरेण खड्गपात्रेणा-  
न्यपात्रेण वोदकं पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात् ॥ पित्रे पितामहाय  
प्रपितामहाय मात्रे मातामहाय प्रमातामहाय मात्रे मातामह्यै  
प्रमातामह्यै सप्तमान्पुरुषान् पितृपक्षे यावतां नाम जानीयात्  
पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा गुरुणां मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात् ॥  
मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संबंधिबांधवानां कुर्यात् ॥ तेषां  
कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥ भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥

विना सौवर्ण्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलेन च ॥

विना दर्भैश्च मंत्रैश्च पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ १ ॥

सौवर्णरजताभ्यां च सङ्गेनीदुंबरेण च ॥

दत्तमक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ २ ॥

हेम्ना तु सह यदत्तं क्षीरेण मधुना सह ॥

तदप्यक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ ३ ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥

पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥

ज्ञातः संतर्पणं कृत्वा पितॄणां तु तिलाभसा ॥

पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणाति च पितॄंस्तथा ॥ ५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

### चतुर्दशोऽध्यायः १४.

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मेवित् ॥

पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था वैडालवतिकारतया ॥

कर्मांगा अतिरिक्तांगा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ २ ॥

गुरुणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ॥

गुरुणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ३ ॥

अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः ॥

शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ४ ॥

षडंगवित्रिसुपर्णा बह्वृत्तो ज्येष्ठसामगः ॥

त्रिणाचिकेतः पंचामित्राह्वर्णः पंक्तिपावनः ॥ ५ ॥

ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ॥

ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ६ ॥

ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ॥

अथर्वागिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ७ ॥

नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकांचनः ॥

ध्यानशीलो हि यो विद्वान्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ८ ॥

द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ त्रींश्च पित्र्ये वोदङ्मुखौस्तथा ॥

भोजयेद्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्र वा ॥ ९ ॥

भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् ॥

दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चाद्ब्रह्मो तु तत्क्षिपेत् ॥ १० ॥

उच्छिष्टसन्निधौ कार्यं पिडानिर्वपणं बुधैः ॥

अभावे च तथा कार्यमभिकार्यं यथाविधि ॥ ११ ॥

श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जितः ॥

उच्छमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ १२ ॥

अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठैकेभ्यश्च पंडितः ॥

भोजयेद्विविधान्विप्रान्गंधमाल्यसमुज्ज्वलान् ॥ १३ ॥

यत्किञ्चित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव वा ॥

अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिडमूले कदाचन ॥ १४ ॥

उग्रगंधान्यगंधानि चैत्यवृक्षभवानि च ॥

पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ १५ ॥

तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥

ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम् ॥ १६ ॥

दशां विवर्तयेत्प्राज्ञो यद्यनाहतवस्त्रजा ॥



घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥ १७ ॥  
 धूपार्थं गुग्गुलं दद्याद्घृतयुक्तं मधूलकटम् ॥  
 चंदनं च तथा दद्यात्पिप्पलां च कुंकुमं शुभम् ॥ १८ ॥  
 भूतणं सुरसं शिथुं पालकं सिंधुकं तथा ॥  
 कूष्मांडालानुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥ १९ ॥  
 पिप्पलीमरिचं चैव तथा वै पिंडमूलकम् ॥  
 कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं तु विवर्जयेत् ॥ २० ॥  
 राजमाषान्मसूरांश्च चणकान्कोरूद्रूपकान् ॥  
 लोहितांश्चक्षुनिर्यासाच्छ्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥ २१ ॥  
 आम्रमामलकीमिथुं मृद्धीकादधिदाडिमान् ॥  
 विदारीश्चैव रंभाद्या दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नतः ॥ २२ ॥  
 धाना लाजान्मधुयुतान्सत्तूञ्छर्करया तथा ॥  
 दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृंगाटकविसेतकान् ॥ २३ ॥  
 भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान् ॥  
 अभिवाद्य पुनर्विमाननुव्रज्य विसर्जयेत् ॥ २४ ॥  
 निमंत्रितस्तु यः श्राद्धं मैयुनं सेवते द्विजः ॥  
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ २५ ॥  
 कालशाकं सशल्कं च मांसं वार्ध्वाणिसस्य च ॥  
 खड्गमांसं तथानंतं यमः प्रोवाच धर्मवित् ॥ २६ ॥  
 यद्ददाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा ॥

प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २७ ॥  
 गंगायमुनयोस्तीरे अयोध्यामरकंटके ॥  
 नर्मदायां गयातीर्थे सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २८ ॥  
 वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुंगे हिमालये ॥  
 सप्तवेण्यपिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥  
 म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ॥  
 न श्राद्धमाचरेत्पाज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥ ३० ॥  
 हस्तिच्छायासु यदत्तं यदत्तं राहुदर्शने ॥  
 विषुवत्ययने चैव सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ ३१ ॥  
 प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ॥  
 प्राप्य श्राद्धं प्रकर्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥ ३२ ॥  
 प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ॥  
 नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ३३ ॥  
 इति श्रीशंखस्मृतौ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

### पञ्चदशोऽध्यायः १५.

जनने मरणे चैव सपिंडानां द्विजोत्तमः ॥  
 व्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ १ ॥  
 सपिंडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥  
 नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुद्ध्यति ॥ २ ॥

सप्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुद्ध्यति ॥  
 मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमामोति नांतरा ॥ ३ ॥  
 रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्यावे विशुद्ध्यति ॥  
 अजातदंतवाले तु सद्यः शीघ्रं विधीयते ॥ ४ ॥  
 अहोरात्रात्तथा शुद्धिर्वाले त्यक्ततूडके ॥  
 तथैवानुपनीते तु द्यहच्छुद्ध्यति ब्राधवाः ॥ ५ ॥  
 अनूढानां तु फन्यानां तथैव शूद्रजन्मनाम् ॥  
 अनूढभार्यः शूद्रस्तृषां शब्दत्सरात्परम् ॥ ६ ॥  
 मृत्युं समधिगच्छेन्मासात्तस्यापि ब्राधवाः ॥  
 शुद्धिं समधिगच्छेद्युर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥  
 पितृवैशमनि या फन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥  
 तस्यां मृतायां नाशीघ्रं फदाचिदपि शाम्यति ॥ ८ ॥  
 हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं प्रजेत् ॥  
 प्रसवे मरणे तज्जमाशीघ्रं नोपशाम्यति ॥ ९ ॥  
 समानं खल्वशीघ्रं तु प्रथमेन समापयेत् ॥  
 असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥  
 देशांतरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवो ॥  
 यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ११ ॥  
 अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥  
 तथा संवत्सरेतीते स्नात एव विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥  
 परध्वांसु च स्त्रीषु व्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते ॥ १३ ॥  
 मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते ॥  
 गृहे दत्तासु कन्यासु मृतासु तु व्यहस्तथा ॥ १४ ॥  
 निवासराजनि प्रेते जाते दाहित्रके गृहे ॥  
 आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥ १५ ॥  
 मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यत्विग्वाधेषु च ॥  
 सव्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥ १६ ॥  
 एकरात्रिं त्रिरात्रं च षड्रात्रं मासमेव च ॥  
 शूद्रे सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १७ ॥  
 त्रिरात्रमथ षड्रात्रं पक्षं मासं तथैव च ॥  
 वैश्ये सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १८ ॥  
 सपिंडे क्षत्रिये शुद्धिः षड्रात्रं ब्राह्मणस्य तु ॥  
 वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥  
 सपिंडे ब्राह्मणे वर्णाः सर्वे एवाविशेषतः ॥  
 दशरात्रेण शुध्येषुरित्याह भगवान्यमः ॥ २० ॥  
 भृग्वग्न्यनशनां भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ॥  
 पतितानां च नाशौचं शस्त्रवियुद्धताश्च ये ॥ २१ ॥  
 यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुण्डीक्षिताः ॥  
 नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये ॥ २२ ॥

यन्तु भुंक्ते पराशीये वर्णा सोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥

अशीयशुद्धी शुद्धिश्च तस्याप्युक्ता मनीषिभिः ॥२३॥

पराशीये नरो भुक्ता कृमियोनी प्रजायते ॥

भुक्तान्नं द्रियते यस्य तस्य योनी प्रजायते ॥ २४ ॥

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ॥

प्रतापेडं क्रियावर्जमाशीये विनिवर्तते ॥ २५ ॥

इति श्रीशङ्खस्मृतौ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

### षोडशोऽध्यायः १६.

मृन्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुद्ध्यति ॥

मध्येर्मूत्रैः पुरीषैर्वा घृथैर्नः पूयशोणितैः ॥ १ ॥

संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥

एतरेव तथा स्पृष्टं ताम्रसीवर्णराजतम् ॥ २ ॥

शुद्ध्यत्पावर्तितं पश्चादप्यथा केवलाभसा ॥

अम्लोदकेन ताम्रस्य सीसस्य त्रपुणस्तथा ॥ ३ ॥

क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य लाहस्य च विनिर्दिशेत् ॥

मुक्तामग्निशालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ४ ॥

अन्नानां चैव भांडानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥

शाकवर्जं मूलफलद्विदलानां तथैव च ॥ ५ ॥

मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥

टण्णाभसा तथा शुद्धिं सज्जहानां विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

शयनासनयानानां सगूर्पशकटस्य च ॥  
 शुद्धिः संप्रोक्षणाद्यज्ञे करकेन योस्तथा ॥ ७ ॥  
 मार्जनाद्वेश्मनां शुद्धिः क्षितेः शोयस्तु तक्षणात् ॥  
 संमार्जितेन तोयेन वाससां शुद्धिरिष्यते ॥ ८ ॥  
 बहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्ग्रान्यादीनां विनिर्दिशेत् ॥  
 प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणाञ्च तक्षणात् ॥ ९ ॥  
 सिद्धार्थकानां कल्केन शृंगदंतमयस्य च ॥  
 गोवालैः फलपात्राणामस्थां शृंगवतां तथा ॥ १० ॥  
 निर्यासानां गुडानां चलवणानां तथैव च ॥  
 कुसुंभकुंकुमानां च ऊर्णां कर्पासयोस्तथा ॥ ११ ॥  
 प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवानन्यमः ॥  
 भूमिस्थमुदकं शुद्धं शुचिं तोयं शिलागतम् ॥ १२ ॥  
 वर्णगंधरसैर्दुष्टैर्वर्जितं यदि तद्भवेत् ॥  
 शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदेव सुखाकरम् ॥ १३ ॥  
 शुद्धं प्रसारितं पण्यं शुद्धे चाऽजाश्वयोर्मुखे ॥  
 मुखवर्जं तु गौः शुद्धा मार्जार आश्रमे शुचिः ॥ १४ ॥  
 शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमंडलुः ॥  
 आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च ॥ १५ ॥  
 नारीणां चैव वंत्सानां शकुनीनां शुभं मुखम् ॥  
 रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचि ॥ १६ ॥

शुद्धा भर्तृशत्रुर्धेहि स्नानेन स्त्री रजस्यला ॥

द्वये फर्मणि पित्र्ये च पंचमेदनि शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

रथ्याकर्ममतांपिन घृषणाद्येन वाप्यत्र ॥

नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ १८ ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा स्नात्वा भोक्तुमनास्तथा ॥

भुक्त्वा क्षुत्वा तथा सुप्या पीत्वा चाभ्राज्यगाह्य च ॥ १९ ॥

रथ्यामाक्रम्य वाचामेद्वासो विपरिधाय च ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं च लेपंगंधापहं द्विजः ॥ २० ॥

उद्धृतेर्नाभस्ता शीघ्रं मृदा चैव समाचरेत् ॥

पाथी च मृत्तिकाः सप्त लिंगे द्वे परिकीर्तिते ॥ २१ ॥

एकस्मिन्विंशतिहस्ते द्वयोर्द्वेयाश्चतुर्दश ॥

तिस्रस्तु मृत्तिका ज्ञेयाः कृत्वा नखविशोधनम् ॥ २२ ॥

तिस्रस्तु पादयोर्ज्ञेयाः शीघ्रकामस्य सर्वदा ॥

शीघ्रमेतद्गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ २३ ॥

त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥

मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिषर्वं पूर्यते यथा ॥ २४ ॥

इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

नित्यं त्रिपवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने ॥  
 अधःशायी जलाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥  
 ग्रामं विशेष्य भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयत् ॥  
 एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥ २ ॥  
 हेमस्तेर्या सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥  
 व्रतनैतेन शुद्ध्यन्ते महापातकिनस्त्वमे ॥ ३ ॥  
 यांगस्थं क्षत्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम् ॥  
 एतदेव व्रतं कुर्यादात्रेयीविनिषूदकः ॥ ४ ॥  
 कूटसाक्ष्यं तथैवोक्ता निक्षेपमपहृत्य च ॥  
 एतदेव व्रतं कुर्यात्त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥ ५ ॥  
 आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च ॥  
 हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ ६ ॥  
 वनस्थं च द्विजं हत्वा पार्थिवं च कृतागसम् ॥  
 एतदेव व्रतं कुर्याद्विगुणं च विशुद्ध्ये ॥ ७ ॥  
 क्षत्रियस्य च पादोनं वधेऽर्द्धं वैश्यघातने ॥  
 अर्द्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥ ८ ॥  
 पादं तु शूद्रहत्यायामुदकपागमने तथा ॥



गोवधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तथा ॥ ९ ॥  
 पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान्मासं कृत्वा विचक्षणः ॥  
 आरण्यानां वधे तद्वत्तदर्थं तु विधीयते ॥ १० ॥  
 हत्वा द्विजं तथा सर्पजलेशयविलेशयान् ॥  
 सप्तरात्रं तथा कुर्याद्व्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥  
 अनर्गां तु शतं हत्वा साक्षां दशशतं तथा ॥  
 ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्पूर्णं संवत्सरं नरः ॥ १२ ॥  
 यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् ॥  
 तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १३ ॥  
 अपहृत्य तु वर्णानां भुवं प्राप्य प्रमादतः ॥  
 प्रायश्चित्तं बन्धप्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं चरेत् ॥ १४ ॥  
 गोजाश्वस्यापहरणे मणीनां रजतस्य चः ॥  
 जलापहरणे चैव कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ १५ ॥  
 तिलानां धान्यवस्त्राणां मद्यानामामिषस्य च ॥  
 संवत्सरार्द्धं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ १६ ॥  
 तृणेषु रुद्राष्टक्राणां रसानाम पहारकः ॥  
 मासमेकं व्रतं कुर्याद्व्रतानां सर्पिषां तथा ॥ १७ ॥  
 लवणानां गुडानां च मूलानां कुसुमस्य च ॥

मासार्द्धं तु व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १८ ॥  
 लोहानां वैदलानां च सूत्राणां चर्मणां तथा ॥  
 एकरात्रं व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १९ ॥  
 भुक्त्वा पलांडुं लशुनं मद्यं च करकाणि च ॥  
 नारं मलं तथा मांसं विद्वराहं खरं तथा ॥ २० ॥  
 गौधेयकुंजरोष्ट्रं च सर्वं पांचनखं तथा ॥  
 कव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ २१ ॥  
 भक्ष्याः पंचनखास्त्वेते गोधाकच्छपशल्लकाः ॥  
 खड्गश्च शशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद्भ्रतम् ॥ २२ ॥  
 हंसं मद्गुरकं काकं काकोलं खंजरीटकम् ॥  
 मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्चलाकं शुकसारिके ॥ २३ ॥  
 चक्रवार्कं पुवं कोकं मंडूकं भुजगं तथा ॥  
 मासमेकं व्रतं कुर्यादेतच्चैव न भक्षयेत् ॥ २४ ॥  
 राजीवान्सिंहतुंडांश्च शकुलांश्च तथैव च ॥  
 पाठीनरोहितौ भक्ष्यौ मत्स्येषु परिकीर्तितौ ॥ २५ ॥  
 जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रनखविष्टिरान् ॥  
 रक्तपादाञ्जालपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥  
 तित्तिरं च मयूरं च लावकं च कपिंजलम् ॥  
 वार्धीणसं वर्तकं च भक्ष्यानाह यमस्तथा ॥ २७ ॥

चर्मकारस्य वेनस्य क्लीबस्य पातितस्य च ॥

"रुक्मकारस्य धूर्तस्य तथा वार्धुषिकस्य च ॥ ३७ ॥

कदर्पस्य नृशंसस्य वेश्यायाः कितवस्य च ॥

गणात्रं भूमिपालात्रमत्रं चैव श्वजीविनाम् ॥ ३८ ॥

मौजिकात्रं सूतिकात्रं भुक्त्वा मासं व्रतं चरेत् ॥

शूद्रस्य सततं भुक्त्वा पण्मासान् व्रतमाचरेत् ॥ ३९ ॥

वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा त्रीन्मासान् व्रतमाचरेत् ॥

क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत् ॥ ४० ॥

ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रतं चरेत् ॥

अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥

मद्यभाङ्गताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत् ॥

शूद्रोच्छिष्टाशने मासं पक्षमेकं तथा विशः ॥ ४२ ॥

क्षत्रियस्य तु सप्तरात्रं ब्राह्मणस्य तथा दिनम् ॥

अथ श्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥ ४३ ॥

परिवित्तिः परिवित्ता यया च परिविदति ॥

व्रतं संवत्सरं कुर्युर्दातृयाजकपंचमाः ॥ ४४ ॥

काकोच्छिष्टं गवाघ्नानं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ॥ ४५ ॥

दूषितं केशकीटैश्च भूषिकालांगलेन च ॥

मलिकामशकेनापि त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ४६ ॥

वृथाकृसरसंयावपायसाष्टपशकुलीः ॥

भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ ४७ ॥  
 नील्या चैव क्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ॥  
 त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्यात्पुंश्चलीदशनक्षतः ॥ ४८ ॥  
 पादप्रतापनं कृत्वा चार्द्धं कृत्वा तथाप्ययः ॥  
 कुंशः प्रमृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ४९ ॥  
 नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥  
 त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याच्छिञ्चत्वा गुल्मलतास्तथा ॥ ५० ॥  
 अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥  
 पलाशस्य द्विजश्रेष्ठास्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५१ ॥  
 वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदृष्टिषे ॥  
 भुक्त्वात्रं ब्राह्मणः पश्चात्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५२ ॥  
 क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणः ॥  
 संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छिञ्चत्वा पिप्पलपादपम् ॥ ५३ ॥  
 दिवा च मैथुनं कृत्वा स्नात्वा नमस्तथाभिसि ॥  
 नम्रां परस्त्रियं दृष्ट्वा दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५४ ॥  
 क्षिप्त्वामावशुचि द्रव्यं तदेवाभिसि मानवः ॥  
 मासमेकं व्रतं कुर्यादुपकुब्ध्य तथा गुरुम् ॥ ५५ ॥  
 पीतावशेषं पानीयं पीत्वा च ब्राह्मणः कवित् ॥  
 त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्विमहस्तेन वा पुनः ॥ ५६ ॥

एकपेक्षं युषाविष्टेषु विषमं यः प्रयच्छति ॥  
 यश्च यावदसौ पक्षं कुर्यानु ब्राह्मणो व्रतम् ॥ ५७ ॥  
 धारयित्वा तुलां चैव विषमं कारयेद्बुधः ॥  
 सुरालवणमद्यानां दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५८ ॥  
 मांसस्य विक्रयं कृत्वा कुर्याच्चैव महाव्रतम् ॥  
 विक्रीय पाणिना मद्यं तिलानि च तथाचरेत् ॥ ५९ ॥  
 हुंकारं ब्राह्मणस्पोक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥  
 दिनमेकं व्रतं कुर्यात्प्रयतः सुसमाहितः ॥ ६० ॥  
 प्रेतस्य प्रेतकार्याणि कृत्वा च धनहारकः ॥  
 वर्णानां यद्व्रतं प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत् ॥ ६१ ॥  
 कृत्वा पापं न गूहेत गूहमानं विवर्द्धते ॥  
 कृत्वा पापं बुधः कुर्यात्पर्षदानुमतं व्रतम् ॥ ६२ ॥  
 तस्करश्चापदाकीर्णं बहुव्याधमृगे घने ॥  
 न व्रतं ब्राह्मणः कुर्यात्प्राणबाधभयात्सदा ॥ ६३ ॥  
 सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति ॥  
 व्रतैः कृच्छ्रैश्च दानैश्च इत्याह भगवान्पमः ॥ ६४ ॥  
 शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥  
 शरीरात्स्रवते धर्मः पर्वतात्सलिलं यथा ॥ ६५ ॥

आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य ब्राह्मणैः सह ॥  
 प्रापश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कदाचन ॥ ६६ ॥  
 इति श्रीशाङ्गिणे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

### अष्टादशोऽध्यायः १८.

अप्यहं त्रिषवगर्नायी स्नाने स्नानेऽधमर्पणम् ॥  
 निमग्नस्त्रिः पठेदप्सु न भुञ्जीत दिनत्रयम् ॥ १ ॥  
 वीरासनं च तिष्ठेत्त गां दद्याच्च पयस्विनीम् ॥  
 अधमर्पणमित्येतद्व्रतं सर्वाधनाशनम् ॥ २ ॥  
 अप्यहं सायं अप्यहं प्रातरुपहमद्यादयाचितम् ॥  
 अप्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्व्रतम् ॥ ३ ॥  
 अप्यहमुष्णं पिवेत्तोयं अप्यहमुष्णं घृतं पिवेत् ॥  
 अप्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुमक्षरूपहं भवेत् ॥ ४ ॥  
 तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमृदाहतम् ॥  
 द्वांदशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥  
 विधिनोदकसिद्धान्नं समभ्रीयात्प्रयत्नतः ॥  
 सक्तून्हि सोदकान्मासं कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ॥ ६ ॥  
 विल्वैरामलकैर्वापि पद्माक्षैरथवा शुभैः ॥  
 मासेन लोकैस्त्रीन्कृच्छ्रः कथ्यते बुद्धिसत्तमैः ॥ ७ ॥  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥

एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रसांतपनं स्मृतम् ॥ ८ ॥  
 एतैस्तु ज्येष्ठमभ्यस्तैर्महासांतपनं स्मृतम् ॥ ९ ॥  
 पिण्याकं वामतक्रांबुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥  
 उपवासांतराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ॥ १० ॥  
 गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः ॥  
 व्रतं तु वार्द्धिकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥ ११ ॥  
 आसं चंद्रकलानृद्ध्या प्राशनीयाद्वर्द्धयन्सदा ॥  
 द्वासयेच्च कलाहानी व्रतं चांदायणं स्मृतम् ॥ १२ ॥  
 मुंडास्त्रिषवणत्तायी अधःशायी जितेंद्रियः ॥  
 स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्पारिभाषणम् ॥ १३ ॥  
 पवित्राणि जपच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तिः ॥  
 अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥ १४ ॥  
 पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः संतारिता नराः ॥  
 गतपापा दिवं यांति नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥  
 शंखप्रोक्तामेदं शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तस्त्वर्गलोके महीयते ॥ १६ ॥  
 इति श्रीशंखीये धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इति शंखस्मृतिः समाप्ता ॥ १३ ॥

## अथ लिखितस्मृतिः १४.



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ लिखितस्मृतिः ॥  
 इष्टापूर्ते तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥  
 इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥  
 एकाहमपि कर्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम् ॥  
 कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्विन्दुषी भवेत् ॥ २ ॥  
 भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः ॥  
 ताल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानां प्ररोपणे ॥ ३ ॥  
 वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥  
 पतितान्छुद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ४ ॥  
 अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥  
 आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥  
 इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते ॥  
 अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वेदिके ॥ ६ ॥  
 यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोषेषु तिष्ठति ॥  
 तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥



देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलिम् ॥  
 असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलांजलिम् ॥ ८ ॥  
 एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥  
 मुच्यते प्रेतलोकात् पितृलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥  
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ॥  
 यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥  
 वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ॥  
 हसन्ति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ११ ॥  
 गयाशिरे तु यत्किंचिन्नाम्नो पिंडं तु निर्वपेत् ॥  
 नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥  
 आत्मनो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः ॥  
 यन्नाम्ना पातयेत्पिंडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १३ ॥  
 लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा ॥  
 लांगूलशिरसा चैव स वै नीलवृषः स्मृतः ॥ १४ ॥  
 नवश्राद्धं त्रिपक्षे च द्वादशस्वेव मासिकम् ॥  
 पणमासौ चाब्दिकं चैव श्राद्धान्येतानि षोडश ॥ १५ ॥  
 यस्यैतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश ॥  
 पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतेरपि ॥ १६ ॥  
 सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ॥  
 मातापित्रोः पृथक्कुयादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥ १७ ॥

( ३४६ ) . . अष्टादशस्मृतयः ।

वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मातापित्रोस्तु सन्ततम् ॥  
अदेवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ १८ ॥  
संक्रान्तावुपरागे च पर्वण्यपि महालये ॥  
निर्वाप्यास्तु त्रयः पिंडा एकतस्तु क्षयेऽहनिः ॥ १९ ॥  
एकोद्विष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते द्विजः ॥  
अकृतं तद्विजानीयात्स मातापितृघातकः ॥ २० ॥  
अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा यदि ॥  
सर्पिंडीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥ २१ ॥  
त्रिदंडग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥  
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणन्तु विधीयते ॥ २२ ॥  
यस्य संवत्सरादर्वाक्सर्पिंडीकरणं स्मृतम् ॥  
प्रत्यहं तत्सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥ २३ ॥  
पत्या चैकेन कर्तव्यं सर्पिंडीकरणं स्त्रियः ॥  
पितामह्यापि तत्तस्मिन्सत्येवन्तु क्षयेऽहनि ॥  
तस्यां सत्यां प्रकर्तव्यं तस्याः श्वश्वेति निश्चितम् ॥ २४ ॥  
विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ॥  
एकत्वं सा गता भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके ॥ २५ ॥  
स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी उद्वाहात्सप्तमे पदे ॥  
भर्तृगोत्रेण कर्तव्या दानांपिंडोदकक्रिया ॥ २६ ॥  
द्विमातुः पिंडदानं तु पिंडे पिंडे द्विनामतः ॥

षण्णां देयास्त्रयः पिंडा एवं दाता न मुह्यति ॥ २७ ॥  
 अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शरीरेः पंक्तिदूषणेः ॥  
 अदोषं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ २८ ॥  
 अमौकरणशेषन्तु पितृपात्रे प्रदापयेत् ॥  
 प्रतिपाद्य पितृणां च न दद्याद्वैश्वदैविके ॥ २९ ॥  
 अनम्रिको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्वणम् ॥  
 तत्र मातामहानां च कर्तव्यमुभयं सदा ॥ ३० ॥  
 अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ॥  
 तेभ्य एव प्रदातव्यमेकोदिष्टं न पार्वणम् ॥ ३१ ॥  
 यस्मिन्राशौ गते सूर्ये विपत्तिः स्याद्विजन्मनः ॥  
 तस्मिन्नहनि कर्तव्या दानपिंडोदकक्रियाः ॥ ३२ ॥  
 वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्तव्यमधिके न तु ॥  
 अधिमासे तु पूर्वं स्याच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥ ३३ ॥  
 स एव हेयो दिष्टस्य येन केन तु कर्मणा ॥  
 अभिघातान्तरं कार्यं तत्रैवाहःकृतं भवेत् ॥ ३४ ॥  
 शालामौ पचते अन्नं लौकिकेनापि नित्यशः ॥  
 यस्मिन्नेव पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ॥ ३५ ॥  
 वैदिके लौकिके वापि नित्यं हुत्वा ह्यतंद्रितः ॥  
 वैदिके स्वर्गमाप्नोति लौकिके हंति किल्बिषम् ॥ ३६ ॥  
 अमौ व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा मंत्रेस्तु शाकलैः ॥

संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्रीयादनमिमान् ॥ ३७ ॥  
 उच्छेदणं तु नोत्तिष्ठेद्यावद्विमविसर्जनम् ॥  
 ततो गृहचलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३८ ॥  
 दर्भाः कृष्णाजिनं मंत्रा ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥  
 नैते निर्मास्यतां यान्ति योक्तव्यास्ते पुनः पुनः ॥ ३९ ॥  
 पानमाचमनं कुर्यात्कुशपाणिस्तदाद्रिजः ॥  
 भुक्त्वा नोच्छिद्यतां याति एष एव विविधः सदा ॥ ४० ॥  
 पान आचमने चैव तर्पणं दैविकं सदा ॥  
 कुशहस्तो न दुष्येत यथा पाणिस्तथा कुशः ॥ ४१ ॥  
 चामपाणी कुशान्कृत्वा दक्षिणेन उपस्पृशेत् ॥  
 विनाचामन्ति ये मूढा रुचिरेणाचमन्ति ते ॥ ४२ ॥  
 नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रेषु ये कृताः ॥  
 पवित्रास्ताम्बिजानीयाद्यथा कायस्तथा कुशाः ॥ ४३ ॥  
 पिंडे कृतास्तु ये दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ॥  
 मूत्रोच्छिद्यपुरीषं च तेषां त्यागो विधीयते ॥ ४४ ॥  
 दैवपूर्वं तु यच्छ्राद्धमदैवं चापि यद्वेत् ॥  
 ब्रह्मचारी भवेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धं तु पितृकम् ॥ ४५ ॥  
 मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनंतरम् ॥  
 ततो मातामहानां च वृद्धी श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ ४६ ॥  
 ऋतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो धूरिलोचनी ॥

पुरुरवा आर्द्रवाश्च विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥  
 आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥  
 ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ ४८ ॥  
 इष्टिश्राद्धं क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यश्च दैविके ॥ ४९ ॥  
 कालः कामोऽग्निकाय्येषु अधरे धूरिलोचनौ ॥  
 पुरुरवा आर्द्रवाश्च पार्व्वणेषु नियोजयेत् ॥ ५० ॥  
 यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥  
 नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ॥ ५१ ॥  
 अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥  
 अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥ ५२ ॥  
 मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥  
 द्वितीये तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुःपितुः ॥ ५३ ॥  
 मृन्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितॄन् ॥  
 अन्नदाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥  
 अलाभे मृन्मयं दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥  
 घृतेन प्रोक्षणं कार्य्यं मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥ ५५ ॥  
 श्राद्धं कृत्वापरश्राद्धे यस्तु भुञ्जीत विह्वलः ॥  
 पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ५६ ॥  
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति ॥  
 भवन्ति पितरस्तस्य तन्मांसं पांसुभोजनाः ॥ ५७ ॥

पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमथुनम् ॥  
 दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत् ॥ ५८ ॥  
 अध्वगामी भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः ॥  
 कर्मकृज्जायते दासः स्त्रीगमने च सुकरः ॥ ५९ ॥  
 दशकृत्वः पिवेदापः सार्विज्या चाभिमंत्रिताः ॥  
 ततः सन्ध्यामुपासीत शुद्धचेत तदनन्तरम् ॥ ६० ॥  
 मार्द्रवांसास्तु यत्कुर्याद्वहिर्जानु च यत्कृतम् ॥  
 सर्वं तन्निष्कलं कुप्याज्जपं होमं प्रतिग्रहम् ॥ ६१ ॥  
 चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥  
 पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्पण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ६२ ॥  
 कनाब्दिके द्विरात्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥  
 शावे मासं तु भुक्ता वा पादकृच्छ्रं विधीयते ॥ ६३ ॥  
 सर्पाविप्रहतानां च शृंगिदांष्टिसरोस्रपैः ॥  
 आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेपां न कारयेत् ॥ ६४ ॥  
 गोभिर्हतं तथोद्वहं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥  
 तैस्पृशन्ति च ये विप्रा गोजाश्वाश्च भवन्ति ते ॥ ६५ ॥  
 अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये ॥  
 तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयन्ति मतुराह प्रजापतिः ॥ ६६ ॥  
 ज्यहमुष्णं पिवेदापरुहमुष्णं पयः पिवेत् ॥  
 ज्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ६७ ॥

गोभू हिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥

यन्मुदिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६८ ॥

उद्यताः सह धावन्ते यद्येको धर्मधातकः ॥

सर्व्वे ते शुद्धिमृच्छन्ति स एको ब्रह्मघातकः ॥ ६९ ॥

पतितान्नं यदा भुंक्ते भुंक्ते चंडालवेश्मनि ॥

स मासार्धं चरेद्द्वारि मासं कामकृतेन तु ॥ ७० ॥

यो येन पतितेनैव स्पर्शं स्नानं विधीयते ॥

तैनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७१ ॥

ब्रह्महा च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥

महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पंचमः ॥ ७२ ॥

ज्जेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥

कुर्वन्त्यनुग्रहं ये च तत्पापं तेषु गच्छति ॥ ७३ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टो ब्राह्मणस्तु कदाचन ॥

तत्क्षणात्कुरुते स्नानमाचामेन शुचिर्भवेत् ॥ ७४ ॥

कुब्जवामनपंढरेषु गङ्गदेषु जडेषु च ॥

जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ ७५ ॥

क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा ॥

योगशास्त्राभिपुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ ७६ ॥

पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ॥

विक्रीणीत गजं चाश्वं गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥ ७७ ॥

पादेद्भरोमवपनं द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥  
 तृतीये तु शिखावर्जं चतुर्थे तु शिखावपः ॥ ७८ ॥  
 चण्डालोदकसंस्पर्शं स्नानं येन विधीयते ॥  
 तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७९ ॥  
 चण्डालस्पृष्टभांडस्थं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥  
 तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ८० ॥  
 यदि नोत्क्षिप्यते तोयं शरीरे तस्य जीर्यति ॥  
 प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांत्तपनं चरेत् ॥ ८१ ॥  
 चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्रियः ॥  
 तदर्थं तु चरेद्देश्यः पार्दं शूद्रे तु दापयेत् ॥ ८२ ॥  
 रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना सूकरवायसैः ॥  
 तपोष्य रजनीमेक्षां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥  
 अज्ञानतः स्नानमात्रमानाभेस्तु विशेषतः ॥  
 अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यात्तदीपस्पर्शने मतम् ॥ ८४ ॥  
 बालश्चैव दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥  
 सदा एव विशुद्ध्येत नाशौचं नोदकक्रिया ॥ ८५ ॥  
 शावसूतक उत्पन्ने सूतके तु यदा भवेत् ॥  
 शावेन शुद्ध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥ ८६ ॥  
 षष्ठेन शुद्ध्येतकाहं पंचमे द्व्यहमेव तु ॥  
 चतुर्थे सप्तरात्रं स्याद्विपुरुषे दशमेऽहनि ॥ ८७ ॥



मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नामिभिः ॥  
 आ दाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतान्निको विधिः ॥ ८८ ॥  
 आमं मांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥  
 अन्यभाण्डस्थिता ह्येते निष्कांताः शुचयः स्मृताः ॥ ८९ ॥  
 मार्जनीरजसा सक्ते स्नानवस्त्रघटोदके ॥  
 नवांभसि तथा चैव हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ९० ॥  
 दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिषु सक्तुषु ॥  
 धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥ ९१ ॥  
 यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥  
 तत्रतत्र तिलैर्होमं गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ९२ ॥  
 इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ १४ ॥  
 इति लिखितस्मृतिः समाप्ता ॥ १४ ॥

## अथ दक्षस्मृतिः १५.

### प्रथमाऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ दक्षस्मृतिप्रारंभः ॥  
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदां वरः ॥  
 पारगः सर्वविद्यानां दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ १ ॥

उत्पत्तिः प्रलपश्चैव स्थितिः संहार एव च ॥  
 आत्मा चात्मज्ञे तिष्ठेत आत्मा ब्रह्मण्यवस्थितः ॥ २ ॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥  
 एतेषां तुं हितार्थाय दक्षः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ३ ॥  
 जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समा वयः ॥  
 स हि गर्भसमो ज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥ ४ ॥  
 भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये ऋतानृते ॥  
 अस्मिन्वाले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥ ५ ॥  
 उपनीते तु दोषोस्ति क्रियमाणेर्विगर्हितः ॥  
 अप्राप्तव्यवहारोऽसौ बालः षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥  
 स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्देवव्रतानि च ॥  
 ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो भवेद्गृही ॥ ७ ॥  
 द्विविधो ब्रह्मचारी स्यादुपकुर्वाणको ह्यथ ॥  
 द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेव व्रते स्थितः ॥ ८ ॥  
 यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः ॥  
 न यतिर्न वनस्थश्च स सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ९ ॥  
 अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः ॥  
 आश्रमेण विना तिष्ठन्मागश्चितीयते हि सः ॥ १० ॥

त्रयाणामानुलोम्यं हि प्रातिलोम्यं न विद्यते ॥

प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तमः ॥ १२ ॥

मेखलाजिनदंडैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ॥

गृहस्थो दानवेदाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥

त्रिदंडेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥

यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती वनाश्रमी ॥ १४ ॥

उक्तं कर्म क्रमो नोक्तो न काल ऋषिभिः स्मृतः ॥

द्विजानां च हितार्थाय दक्षस्तु स्वयमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इति द्वाक्षे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्विजेन दिने दिने ॥

तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ १ ॥

उदयास्तमितं यावन्न विप्रः क्षणिको भवेत् ॥

नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥ २ ॥

संध्याद्यं वैश्वदेवांतं स्वकं कर्म समाचरेत् ॥

स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुरुते द्विजः ॥ ३ ॥

अज्ञानादथवा लोभात्स तेन पतितो भवेत् ॥

दिवसस्याद्यभागे तु कर्म तस्योपदिश्यते ॥ ४ ॥

द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पंचमे तथा ॥  
 षष्ठे च सप्तमे चैव अष्टमे च पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥  
 विभागेष्वेपु यत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥  
 उपःकाले च सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् ॥ ६ ॥  
 ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥  
 अत्यन्तमालिनः कायो नवाच्छिद्रसमान्वितः ॥ ७ ॥  
 स्रवत्येष दिवा रात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥  
 क्लियांति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च ॥ ८ ॥  
 अंगानि समंतां यांति उत्तमान्पधमैः सह ॥  
 नानास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ॥ ९ ॥  
 अस्नात्वा नात्रोर्क्किञ्चिन्नपहोमादिकं द्विजः ॥  
 प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ॥ १० ॥  
 सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥  
 उपस्युषसि यत्स्नानं संध्यायामुदिते रवौ ॥ ११ ॥  
 प्राजापयेन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥  
 प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ॥ १२ ॥  
 सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥ १३ ॥  
 गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः ॥  
 आरोग्यमायुश्च मनोत्तुरुद्धदुःस्वप्नघातश्च तपश्च मेधा ॥ १४ ॥  
 स्नानादनंतरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते ॥

अनेन तु विधानेन स्वाचांतः शुचितामियात् ॥ १५ ॥  
 प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च त्रिः पिबेदंबु वीक्षितम् ॥  
 संवृत्यांगुष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ १६ ॥  
 संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥  
 ततः पादौ समभ्युक्ष्य अंगानि समुपस्पृशेत् ॥ १७ ॥  
 अंगुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादुपस्पृशेत् ॥  
 अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ॥ १८ ॥  
 कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥  
 सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद्वाहूचाग्रेण संस्पृशेत् ॥ १९ ॥  
 संध्यायां च प्रभाते च मध्याह्ने च ततः पुनः ॥ २० ॥  
 हृद्भाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥  
 वैश्यः प्राशितपात्राभिर्जिह्वागांभिः स्त्रियोत्रिजाः ॥ २१ ॥  
 संध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥  
 स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ॥ २२ ॥  
 संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥  
 यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥ २३ ॥  
 संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते ॥  
 स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते ॥ २४ ॥  
 ऋत्विक्पुत्रो गुरुभ्राता भागिनेयोऽथ विद्वपतिः ॥  
 एभिरेव हुतं यत्तु तद्भुतं स्वयमेव तु ॥ २५ ॥

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥  
 नरकः पीडने तस्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत् ॥ ३६ ॥  
 स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते ॥  
 जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरंभराः ॥ ३७ ॥  
 बह्वर्थं जीव्यते कैश्चित्कुटुंबार्थं तथा परैः ॥  
 आत्मार्थेन्यो न शक्नोति स्वोदरेणापि दुःखितः ॥ ३८ ॥  
 दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥  
 अदत्तदाना जायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥ ३९ ॥  
 यददासि विशिष्टेभ्यो यज्जुहोषि दिने दिने ॥  
 तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥ ४० ॥  
 चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् ॥  
 तिलपुष्पकुशादीनि स्नानं चाकृत्रिमे जले ॥ ४१ ॥  
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ॥  
 तेषां मध्ये तु यन्नित्यं तत्पुनर्विद्यते त्रिधा ॥ ४२ ॥  
 मलापकर्षणं पश्चान्मंत्रवत्तु जले स्मृतम् ॥  
 संध्यास्नानमुभाभ्यां तु स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥  
 मार्जनं जलमध्ये तु प्राणायामो यतस्ततः ॥  
 उपस्थानं ततः पश्चाद्वायत्रीजप उच्यते ॥ ४४ ॥  
 सविता देवता यस्य मुखममिस्त्रिपात्तथा ॥  
 विश्वामित्र ऋषिश्छंदो गायत्री सा विशिष्यते ॥ ४५ ॥

पंचमे तु तथा भागे संविभागो यथार्थतः ॥  
 पितृदेवमनुष्याणां कीटानां चोपदिश्यते ॥ ४६ ॥  
 देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्पग्भिश्चोपजीव्यते ॥  
 गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥ ४७ ॥  
 प्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते ॥  
 सीदमानेन तेनैव सीदंतीहेतरे त्रयः ॥ ४८ ॥  
 मूलत्राणे भवेत्सकंधः स्कन्धाच्छाखेति पल्लवाः ॥  
 मूलैर्नैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥ ४९ ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणोपो गृहाश्रमी ॥  
 राज्ञा चान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च सर्वदा ॥ ५० ॥  
 गृहस्थोपि क्रियापुक्तो गृहेण न गृही भवेत् ॥  
 नचैव पुत्रदारेण स्वकर्मपरिवर्जितः ॥ ५१ ॥  
 अहुत्वा च तथा ऽजप्त्वा अदत्त्वा यश्च भुजते ॥  
 देवार्दानामृणी भूत्वा दरिद्रश्च भवेन्नरः ॥ ५२ ॥  
 एक एव हि भुंक्तेन्नमपरोक्षेन भुज्यते ॥  
 न भुज्यते स एवैको यो भुंक्ते तु समांशकम् ॥ ५३ ॥  
 विभागशीलो यो नित्यं क्षमायुक्तो दयालुकः ॥  
 देयतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः ॥ ५४ ॥  
 दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ॥  
 गुणा यस्य भवेत्येते गृहस्थो मुख्य एव सः ॥ ५५ ॥

संविभागं ततः कृत्वा गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥  
 भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ॥ ५६ ॥  
 इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठं वा संतमं नयेत् ॥  
 अष्टमे लोकयात्रा तु बहिःसंध्या ततः पुनः ॥ ५७ ॥  
 होमं भोजनकृत्यं च यच्चान्यद्गृहकृत्यकम् ॥  
 कृत्वा चैवं ततः पश्चात्स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ॥ ५८ ॥  
 प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् ॥  
 यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५९ ॥  
 नैमित्तिकानि कर्माणि निपतन्ति यथायथा ॥  
 तथातथा तु कार्याणि न कालस्तु विधीयते ॥ ६० ॥  
 यस्मिन्नेव प्रयुञ्जानो यस्मिन्नेव प्रलीयते ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वाध्यायं च समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥  
 सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत् ॥  
 भुञ्जानश्च शयानश्च ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ६२ ॥  
 इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

सुधा नव गृहस्थस्य ईषदानानि वै नव ॥  
 नव कर्माणि च तथा विकर्माणि नवेव- तु ॥ १ ॥



प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि पुनर्नव ॥  
 सफलानि नवान्यानि निष्फलानि तथा नव ॥ २ ॥  
 अदेयानि नवान्यानि वसुंजातानि सर्वदा ॥  
 नवका नव निर्दिष्टा गृहस्योन्नतिकारकाः ॥ ३ ॥  
 सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ॥  
 मन्त्रधुर्मुखं ज्ञाचं सौम्यं दत्त्वा चतुष्टयम् ॥ ४ ॥  
 अभ्युत्थानमिहागच्छ पृच्छालापः प्रियान्वितः ॥  
 उपासनमनुव्रज्या कार्याण्येतानि नित्यशः ॥ ५ ॥  
 ईषद्दानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ॥  
 पादशौचं तथान्यंगं आश्रयः शयनानि च ॥ ६ ॥  
 किंचिद्दद्याद्यथाशक्ति नास्यानश्रन्गृहे वसेत् ॥  
 मृज्जलं चार्थिने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥ ७ ॥  
 संध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥  
 वैश्वदेवं क्षमातिथ्यमुद्धृतं चापि शक्तितः ॥ ८ ॥  
 पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् ॥  
 गुरुमातृपितृणां च संविभागो यथार्हतः ॥ ९ ॥  
 एतानि नव कर्माणि विकर्माणि तथा पुनः ॥ १० ॥  
 अनृतं पारदार्यं च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥  
 अगम्यागमनापेयपानं स्तेयं च हिंसनम् ॥ ११ ॥  
 अश्रोतकर्माचरणं भैत्रधर्मश्चिह्नकृतम् ॥

नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ १२ ॥

पैशुन्यमनृतं माया कामः क्रोधस्तथाऽप्रियम् ॥

द्वेषो दंभः परद्रोहः प्रच्छन्नानि तथा नव ॥ १३ ॥

आयुषित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रो मेथुर्नभेषजे ॥

तपो दानापमानौ च नव गोप्यानि सर्वदा ॥ १४ ॥

प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रयाः ॥

कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहःपापमकुत्सनम् ॥

“प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा” ॥ १५ ॥

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ॥

दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं तत्सफलं भवेत् ॥ १६ ॥

धूतं वंदिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे ॥

चाटुचारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥ १७ ॥

सामान्यं याचितं न्यास आविर्दाराश्च तद्धनम् ॥

अन्वाहितं च निक्षेपं सर्वस्वं चान्वये सति ॥ १८ ॥

आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ॥

यो ददाति स मूर्खस्तु प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ १९ ॥

१ एतानि नव पैशुन्यादीन्यापि विकर्माण्येव—( इति—मिलित्वा—त्रिक-  
‘मार्ज्यष्टादश ) ‘प्रच्छन्नानि’ इत्येतस्याग्रिम-संरच्यैः सहाभिसंबंधात् ।

२ प्रायोग्यं नाम अधमणोक्तमर्गेण ऋणदानम् ।

३ “रहस्येतानि वर्जयेत्” एतावदेव पाठः प्रकाश्यानीतिर्गर्भं प्रक्षिप्तम् ।

( ३६४ ) : अष्टादशस्मृतयः ।

नवनवकवेत्तारमनुष्ठानपरं नरम् ॥

इह लोके परत्रापि नीतिस्तं नैव मुच्यते ॥ २० ॥

यथैवात्मा परस्तद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता ॥

सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथा परे ॥ २१ ॥

सुखं वा यदि वौ दुःखं यत्किञ्चिक्रियते परे ॥

यत्कृतं तु पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥ २२ ॥

न क्लेशेन विना द्रव्यं विना द्रव्येण न क्रिया ॥

क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्जहीने कुतः सुखम् ॥ २३ ॥

सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ॥

तस्माद्धर्मः सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥

दानं हि विधिना देयं काले पात्रे गुणान्विते ॥ २५ ॥

समद्विगुणसाहस्रमानन्त्यं च यथाक्रमम् ॥

दाने फलविशेषः स्याद्धिंसायां तावदेव तु ॥ २६ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥

सहस्रगुणमाचार्य्ये त्वनन्तं वेदपारगे ॥ २७ ॥

विधिहीने यथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ॥

न केवलं तद्विनश्येच्छेषमप्यस्य नश्यति ॥ २८ ॥

व्यसनप्रतिकारार्थं कुटुम्बार्थं च याचते ॥

एवमन्विष्य दातव्यमेन्यथा न फलं भवेत् ॥ २९ ॥  
 मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः ॥  
 यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ ३० ॥  
 यच्छ्रेयो नामिहोत्रेण नामिष्टोमेन लभ्यते ॥  
 तच्छ्रेयः प्राप्नुयाद्विप्रो विप्रेण स्यापितेन वै ॥ ३१ ॥  
 यद्यदिष्टतमं लोके यच्चात्मदयितं भवेत् ॥  
 तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ३२ ॥  
 इति श्रीदक्षे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदि च्छंदानुवर्तिनी ॥  
 गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वंशानुगा ॥ १ ॥  
 यातु धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ॥ २ ॥  
 प्राकाम्ये वर्तमाना या स्नेहान्न तु निवारिता ॥  
 अवस्था सा भवेत्पश्चाद्यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥ ३ ॥  
 अनुकूला नवागदुष्टा दक्षा साध्वी प्रियंवदा ॥  
 आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी ॥ ४ ॥  
 अनुकूलकलत्रो यः स्वर्गस्तस्य इहैव हि ॥

१ सर्वदानेध्वय विधिः—इति पाठः ।

२ चेच्छानुसारिणी—इति पाठः ।

प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥ ५ ॥  
 स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् ॥  
 रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तदा कष्टतरं नु किम् ॥ ६ ॥  
 गृहवासः सुखार्थो हि पत्नीमूलं च तत्सुखम् ॥  
 सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी ॥ ७ ॥  
 दुःखायान्या सदा खिन्ना चित्तभेदः परस्परम् ॥  
 प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ८ ॥  
 जलौका इव ताः सर्वा भूषणाच्छादनाशनेः ॥  
 सुभृतापि कृता नित्यं पुरुषं ह्यपकर्षति ॥ ९ ॥  
 जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तत्स्विनी ॥  
 इतरा तु धनं वित्तं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ॥ १० ॥  
 साशंका वालभावे तु यौवनेऽभिमुखी भवेत् ॥  
 तृणवन्मन्यते नारी वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥ ११ ॥  
 अनुकूला त्ववाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ॥  
 एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥ १२ ॥  
 महदृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा ॥  
 भर्तुः प्रीतिकरी या तु भार्या सा चेतरा जरा ॥ १३ ॥  
 शिष्यो भार्या शिशुर्भाता पुत्रो दासः समाश्रितः ॥  
 यस्पैतानि विनीतानि तस्य लोके हि गौरवम् ॥ १४ ॥  
 प्रथमा धर्मपत्नी तु द्वितीया रतिवर्द्धिनी ॥

दृष्टमेव फलं तत्र नादृष्टमुपपद्यते ॥ १५ ॥  
 धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् ॥  
 दोषे सति न दोषः स्यादन्याभार्या गुणान्विता ॥ १६ ॥  
 अदुष्टाऽपतितां भार्या यौवने यः परित्यजेत् ॥  
 स जीवनांते स्त्रीत्वं च वंध्यत्वं च समाप्नुयात् ॥ १७ ॥  
 दरिद्रं व्याधितं चैव भर्तारं यावमन्यते ॥  
 शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥ १८ ॥  
 मृते भर्तारि या नारी समारोहेद्भुताशनम् ॥  
 सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥ १९ ॥  
 व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते विलात् ॥  
 तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ २० ॥  
 चण्डालप्रत्येवसितपरिव्राजकंतापसाः ॥  
 तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैस्सह वासयेत् ॥ २१ ॥  
 इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

उक्तं शौचमशौचं च कार्यं त्याज्यं मनोविभिः ॥  
 विशेषार्थं तयोः किंचिद्वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥  
 शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ॥

( ३६८ ). अष्टादशस्मृतयः ।

शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥२॥

शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथांतरम् ॥ ३ ॥

अशौचाद्धि वरं बाह्यं तस्मादाभ्यन्तरं वरम् ॥

उभाभ्यां तु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥ ४ ॥

एकालिंगे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा ॥

उभयोः सप्त दातव्या मृदस्तिष्ठस्तु पादयोः ॥ ५ ॥

गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु यथाक्रमम् ॥

द्विगुणं त्रिगुणं चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥

अर्द्धप्रसूतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ॥

द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्तिता ॥ ७ ॥

लिंगे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्वा पूर्यते यथा ॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८ ॥

त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥

दातव्यमृदकं तावन्मृदभावो यथा भवेत् ॥ ९ ॥

मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुंभशतेन च ॥

न शुद्ध्यन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः ॥ १० ॥

मृदा तोयेन शुद्धिः स्यान्न क्लेशो न धनव्ययः ॥

यस्य शौचेऽपि शैथिल्यं चित्तं तस्य परीक्षितम् ॥ ११ ॥

अन्यदेव दिवा शौचमन्यद्रात्रौ विधीयते ॥  
 अन्यंदापदि निर्दिष्टं ह्यन्यदेव ह्यनापदि ॥ १२ ॥  
 दिवा कृतस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते ॥  
 तदर्धमातुरस्याद्भुस्त्वरायां त्वर्द्धमध्वनि ॥ १३ ॥  
 दिवा यद्विहितं कर्म तदर्धं च निशि स्मृतम् ॥  
 तदर्धं चातुरे काले पथि शूद्रवदाचरेत् ॥ १४ ॥  
 न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचे शुद्धिमभीप्सता ॥  
 प्रायश्चित्तेन युज्येत विहिताऽतिक्रमे कृते ॥ १५ ॥  
 इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### • पष्ठोऽध्यायः ६.

अशौचं तु प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युनिमित्तकम् ॥  
 यावज्जीवं तृतीयं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥  
 सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥  
 षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ २ ॥  
 मरणांतं तथा चान्यदश पक्षास्तु सूतके ॥  
 उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥  
 ग्रन्थार्थतो विजानाति वेदमंगैः समन्वितम् ॥  
 सकल्पं सरहस्यं च क्रियावांश्चेन्न सूतकी ॥ ४ ॥  
 राजर्षिर्वग्दीक्षितानां च बाले देशांतरे तथा ॥



प्रतिनां सत्रिणां चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥  
 एकाहस्तु समाख्यातो योमिवेदसमन्वितः ॥  
 हीने हीनतरे चैव द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ ६ ॥  
 जातिविमो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥  
 वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥  
 अस्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्त्वा हुत्वा च भुञ्जते ॥  
 एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥ ८ ॥  
 व्याधितस्य कर्दर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥  
 क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ९ ॥  
 व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥  
 श्रद्धात्यागाविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १० ॥  
 न सूतकं कदाचित्स्याद्यावज्जीवं तु सूतकम् ॥  
 एवंगुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥  
 सूतके मृतके चैव तथा च मृतसूतके ॥  
 एतत्संहतशौचानां मृताशौचेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥  
 दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ॥  
 दशाहातु परं शौचं विमोर्हति च धर्मवित् ॥ १३ ॥  
 दानं च विधिना देयमशुभाचारकं हि तत् ॥  
 मृतकांते मृतो यस्तु सूतकांते च सूतकम् ॥ १४ ॥  
 एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥

उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥ १५ ॥

चतुर्येहानि कर्तव्यमास्थिसंचयनं द्विजैः ॥

ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥ १६ ॥

वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः ॥

दशषट्त्रयहमेकाहः प्रसवे सूतके भवेत् ॥ १७ ॥

स्वस्थकाले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्तितम् ॥

आपद्रुतस्य सर्वस्य सूतकेपि न सूतकम् ॥ १८ ॥

यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ म्रियेत वा ॥

पूर्वसंकल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र विद्यते ॥ १९ ॥

यज्ञकाले विवाहे च देवयागे तथैव च ॥

हूयमाने तथा चाग्नौ नाशौचं नापि सूतकम् ॥ २० ॥

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

लोका वशीकृता येन येन चात्मा वशीकृतः ॥

इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ॥

तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगो योग उच्यते ॥ २ ॥

मैत्रीक्रियामुदे सर्वा सर्वप्राणिव्यवस्थिता ॥

ब्रह्मलोकं नयत्याशु धातारमिव धारणा ॥ ३ ॥

नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रन्थार्चितनात् ॥  
 ग्रन्थैर्ज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्य चिद्भवेत् ॥ ४ ॥  
 नच पथ्याशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ॥  
 नच शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन भवति क्वचित् ॥ ५ ॥  
 न मंत्रमौनकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ॥  
 लोकयात्रानियुक्तस्य योगो भवति कस्याचित् ॥ ६ ॥  
 अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात् ॥  
 पुनःपुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ७ ॥  
 आत्मचिन्ताविनोदेन शौचेन क्रीडनेन च ॥  
 सर्वभूतसमत्वेन योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ८ ॥  
 यश्चात्मनि रतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव च ॥  
 आत्मानन्दस्तु सततमात्मन्येव सुभावितः ॥ ९ ॥  
 रतश्चैव सुतृष्टश्च संतुष्टो नान्यमानसः ॥  
 आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिद्ध्यति ॥ १० ॥  
 सुप्तोऽपि योगयुक्तश्च जाग्रच्चापि विशेषतः ॥  
 ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ११ ॥  
 अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ॥  
 ब्रह्मभूतः स एवेह दक्षपक्ष उदाहृतः ॥ १२ ॥  
 विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विन्दति ॥  
 यत्रेन विषयासक्तिं तस्माद्योगी विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

विषयेंद्रियसंयोगं केचिद्योगं वदन्ति वै ॥  
 अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपण्डितैः ॥ १४ ॥  
 आत्मनो मनसश्चैव संयोगं तु ततः परम् ॥  
 उक्तानामधिका ह्येते केवलं योगवञ्चिताः ॥ १५ ॥  
 वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥  
 एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ १६ ॥  
 कपायमोहविक्षेपलज्जाशंकादिचेतसः ॥  
 व्यापारास्तु समाख्यातास्ताञ्जित्वा वशमानयेत् ॥ १७ ॥  
 कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्रामः पष्ठस्तत्र महत्तरः ॥  
 देवासुरैर्मनुष्यैश्च स जेतुं नैव शक्यते ॥ १८ ॥  
 बलेन परराष्ट्राणि गृह्णञ्छूरस्तु नोच्यते ॥  
 जितो येनेन्द्रियग्रामः स शूरः कथ्यते बुधैः ॥ १९ ॥  
 बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ॥  
 मनस्येवेंद्रियाण्यत्र मनश्चात्मनि योजयेत् ॥ २० ॥  
 सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ॥  
 एतद्ध्यानं तथा ज्ञानं शेषस्तु ग्रंथविस्तारः ॥ २१ ॥  
 त्यक्त्वा विषयभोगास्तु मनो निश्चलतां गतम् ॥  
 आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्तितः ॥ २२ ॥  
 चतुर्णां सन्निकर्षेण फलं यत्तदशाश्वतम् ॥  
 द्वयोस्तु सन्निकर्षेण शाश्वतं ध्रुवमक्षयम् ॥ २३ ॥

यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति निरुच्यते ॥  
 कथ्यमानं तथा न्यस्य हृदये नाधितिष्ठति ॥ २४ ॥  
 स्वयंवेद्यं च तद्ब्रह्म कुमारी मैथुनं यथा ॥  
 अयोगी नैव जानाति जात्यंधो हि यथा घटम् ॥ २५ ॥  
 नित्याभ्यसनशीलस्य सुसंवेद्यं हि तद्भवेत् ॥  
 तत्सूक्ष्मत्वादर्निर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २६ ॥  
 बुधास्त्वाभरणं भावं मनसालोचनं तथा ॥  
 मन्यन्ते स्त्री च भूर्खश्च तदेव बहु मन्यते ॥ २७ ॥  
 सत्वोत्कटाः सुरास्तेपि विषयेण वशीकृताः ॥  
 प्रमोदिभिः क्षुद्रसत्त्वैर्मनुष्यैरत्र का कथा ॥ २८ ॥  
 तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्तव्यं दंडधारणम् ॥  
 इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ॥ २९ ॥  
 न स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः ॥  
 वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥ ३० ॥  
 ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक् ॥  
 स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ ३१ ॥  
 संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥  
 एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३२ ॥

त्रिदंडव्यपदेशेन जीवंति बहवो नराः ॥

यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदंडो हि स स्मृतः ॥ ३३ ॥

नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कथंचन ॥

एतैः सर्वैः सुसंपन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥ ३४ ॥

पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मेन तिष्ठति ॥

श्वपदेनांकयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥ ३५ ॥

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चैव मिथुनं स्मृतम् ॥

त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥ ३६ ॥

नगरं हि न कर्तव्यं ग्रामो वा मिथुनं तथा ॥

एतन्नयं तु कुर्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः ॥ ३७ ॥

राजवार्तादि तेषां तु भिक्षावार्ता परस्परम् ॥

स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं सन्निकर्षादसंशयम् ॥ ३८ ॥

लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः ॥

एते चान्ये च बहवः भ्रमं चास्तु तपस्विनाम् ॥ ३९ ॥

ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकांशशीलता ॥

भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोपपद्यते ॥ ४० ॥

यस्मिन्देशे भवेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ॥

सोपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यस्य बांधवः ॥ ४१ ॥

तपोभिर्यं वशीभूता व्याधितावसथावहाः ॥

• वृद्धा रोगगृहीताश्च ये चान्ये विकलेंद्रियाः ॥ ४२ ॥

नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुर्नावसथार्हणः ॥

स दूषयति तत्स्थानं वृद्धादीन्पीडयत्यपि ॥ ४३ ॥

नीरुजश्च युवा चैव ब्रह्मचर्याद्विनश्यति ॥

ब्रह्मचर्याद्विनष्टश्च कुलं गोत्रं च नाशयेत् ॥ ४४ ॥

यस्य त्वावसथे भिक्षुर्मैथुनं यदि सेवते ॥

तस्यावसथनाथस्य मूलान्यपि निकृंतति ॥ ४५ ॥

आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्तमपि विश्रमेत् ॥

किं तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्यो हि जायते ॥ ४६ ॥

संचितं यद्गृहस्थेन पापमामरणातिकम् ॥

स निर्देहति तत्सर्वमेकरात्रोपितो यतिः ॥ ४७ ॥

ध्यानयोगपरिश्रान्तं यस्तु भोजयते यतिम् ॥

अखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४८ ॥

द्वैतं चैव तथाद्वैतं द्वैताद्वैतं तथैव च ॥

न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत्पारमार्थिकम् ॥ ४९ ॥

नाहं नैव तु संबंधो ब्रह्मभावेन भावितः ॥

ईदृशायां त्ववस्थायामवाप्यं परमं पदम् ॥ ५० ॥

द्वैतपक्षः समाख्यातो ये द्वैते तु व्यवस्थिताः ॥

अद्वैतानां प्रवक्ष्यामि यथा धर्मः सुनिश्चितः ॥ ५१ ॥

अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो विपश्यति ॥

अतः शास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरः ॥ ५२ ॥

दक्षशास्त्रे यथा प्रोक्तमाश्रमप्रतिपालनम् ॥

अधीयते तु ये विप्रास्ते यांति परलौकताम् ॥ ५३ ॥

य इदं पठते भक्त्या शृणुयादपि यो नरः ॥

स पुत्रपौत्रपशुमान्कीर्तिं च समवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

श्रावयित्वा त्विदं शास्त्रं श्राद्धकालेऽपि यो द्विजः ॥

अक्षय्यं भवति श्राद्धं पितृन्श्चैवोपतिष्ठते ॥ ५५ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति दक्षस्मृतिः समाप्ता ॥ १५ ॥





॥ श्रीः ॥

## अथ गौतमस्मृतिः १६.



प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ गौतमस्मृतिप्रारंभः ॥ वेदो  
धर्ममूलं तद्विदां च स्मृतिशीले दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः ॥ साहसं  
च महतां न तु दृष्टोऽर्थो वरदौर्बल्यान्न तुल्यबलविरोधे  
विकल्पाः । उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे नवमे पंचमे वा काम्यं  
गर्भादिः संख्या वर्षाणां तद्वितीयजन्म तद्यस्मात्स आचार्यो  
वेदानुवचनाच्च एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोः आषोडशा-  
द्ब्राह्मणस्य पतिता सावित्री द्वाविंशते राजन्यस्य अधिका या  
वैश्यस्य । मौंजीज्यामौर्वीसौज्यो मेखलाः क्रमेण कृष्ण-  
रुक्मस्ताजिनानि वासांसि शाणक्षीमचीरकुतपाः सर्वेषां  
कार्पासं चाविकृतं काषायमप्येके, वार्सं ब्राह्मणस्य मांजिष्ठ-  
हारिदे इतरयोर्बल्वपालाशौ ब्राह्मणस्य दंडौ आश्वत्थपैलवौ  
शेषे यज्ञियो वा सर्वेषाम् । अपीडितायूपचक्राः सवल्कला  
मूर्द्धललाटनासाग्रप्रमाणाः मुंडजटिलशिखाजटाश्च । द्रव्यहस्त  
वच्छिष्टोऽनिधायानामेत् ॥

द्रव्यशुद्धिःपरिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णजनानि तैजसमार्ति-  
कदारवतांतवानां तैजसवदुपलमणिशंखशुक्तीनां दारुवदस्थि-  
भूम्योः आवपनं च भूमेः । चैलवद्रज्जुविदलचर्मणाम्  
उत्सर्गो वात्यतोपहतानाम् ।

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत् । शुचौ देश  
आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्वंतरा कृत्वा यज्ञोपवीत्यामणिवं-  
धनात्पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतो हृदयस्पृशस्त्रिश्रतुर्ध्वाऽपआचामेत् ।  
द्विः परिमृज्यात्पादौ चाभ्युक्षेत् । खानि चोपस्पृशेच्छीर्ष-  
ण्यानि मूर्द्धनि च दद्यात् । सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा च पुन  
दंतश्लिष्टेषु दंतवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात् । प्राक् च्युतेरित्येके ।  
च्युतेष्वास्राववद्विद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ न मुख्या विभुष  
उच्छिष्टं कुर्वन्ति ताश्चेदंगे निपतन्ति । लेपगंधापकर्पणे शौच-  
ममेध्यस्य तदद्भिः पूर्वं मृदा च मूत्रपुरीषरेतोविस्त्रंसनाभ्य  
वहारसंयोगेषु च यत्र आम्रापो विदध्यात् ।

पाणिना सव्यमुपसंगृह्यांगुष्ठमधीहि भो इत्यामंत्रयेत् गुरुः ।  
तत्र चक्षुर्मनःप्राणोपस्पर्शनं दर्भैः प्राणायामास्त्रयः पंचदश  
मात्राः प्राक्कूलेष्वासनं च ॐ पूर्वा व्याहतयः पंचसप्तांताः  
गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातर्ब्रह्मानुवचने चाद्यंतयोरनुज्ञात.  
उपविशेत् । प्राङ्मुखो दक्षिणतः शिष्य उदङ्मुखो वा सावित्री

चानुवचनमादितो ब्रह्मण आदाने ॐकारस्यान्यत्रापि ।  
 अंतरागमने पुनरुपसदने श्वनकुलमंडूकसर्पमार्जारानां  
 व्यहमुपवासो विप्रवासश्च प्राणायामा घृतप्राशनं चेतरेषां  
 श्मशानाभ्यध्ययने चैवम् ॥ १ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

१ प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षः अहुतो ब्रह्मचारी यथो-  
 पपादमूत्रपुरीषो भवति नास्याचमनकल्पो विद्यते अन्यत्रा-  
 पमार्जनप्रधावनावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शनादशौचम् ॥ न  
 स्त्वेवैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुंज्यात् न ब्रह्माभिव्याहारेदन्यत्र  
 स्वधानिनयनात् ॥

उपनयनादिनियमः ॥ उक्तं ब्रह्मचर्यम् अग्नीन्धनभैक्षचरणे  
 सत्यवचनम् ॥ अपामुपस्पर्शनमेक आगोदानादि । बहिः  
 संध्यार्थं तिष्ठेत्पूर्वामासीतोत्तरां सज्योतिंष्याज्योतिषो दर्श-  
 नाद्वाग्यतो नादित्यमीक्षयेत् चर्जयेन्मधुमांसगंधमाल्यादि वा  
 स्वमाजनाभ्यंजनयानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवाद-  
 नस्त्रानदंतधावनहर्षनृत्नगीतपरिवादभयानि ।

गुरुदर्शने कंठप्रावृतावसक्थिकापाश्रयणपादप्रसारणानि  
 निष्ठीवितहसितजृम्भितास्फोटनानि स्त्रीप्रेक्षणालंभने मैथुन-

शंकायां द्यूतं हीनसेवामदत्तादानं हिंसा आचार्यतत्पुत्रस्त्री-  
दीक्षितनामानि शुष्कां वाचं मद्यं नित्यं ब्राह्मणः अधः-  
शय्याशायी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी वागुदरकर्मसंयतः  
नामगोत्रे गुरोः संमानतो निर्दिशेत् ॥ अर्चिते श्रेयसि  
चैवम् ॥ शय्यासनस्थानानि विहाय प्रतिश्रवणमभिक्रमं  
वचनादूष्टेन अधःस्थानासनस्तिर्यग्वा तत्सेवायां गुरुदर्शने  
चोत्तिष्ठेत् । गच्छंतमनुव्रजेत् कर्म विज्ञाप्याख्यायाऽऽहूताध्यायी  
युक्तः प्रियहितयोस्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम्, नोच्छिष्टाशनस्त्रपन-  
प्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि विप्रोप्योपसंग्रहणं  
गुरुभार्याणां तत्पुत्रस्य च नैके युवतीनाम् ॥ व्यवहारप्राप्तेन  
सार्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तं पतितवर्जमादिमध्यातिषु  
भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपवर्त्येण आचार्यज्ञातिगुरुस्वै-  
च्छालाभेऽन्यत्र तेषां पूर्वं परिहरेत् निवेद्य गुरवेऽनुज्ञातो  
भुंजीत । असंनियौ तद्भार्यापुत्रसब्रह्मचारिसद्व्यः । वाग्य-  
तस्तृप्यन्नलोलुप्यमानस्सन्निधायोदकं स्पृशेत् ।

शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्याम्,  
अन्येन घ्नन् राज्ञा शास्यः । द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्य्यं  
चरेत् । प्रतिद्वादश सर्वेषु ग्रहणांतं वा । विद्याति गुरुरर्थेन  
निमन्त्र्य कृतानुज्ञातस्य वा स्नानम् । आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणां  
मातेत्येके ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ १

## तृतीयोऽध्यायः ३.

तस्याश्रमाविकल्पमेके ब्रुवन्ते । ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्व्र-  
 खानस इति । तेषां गृहस्थो योनिरप्रजननत्वादितरेषाम् ।  
 तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्वमात्रं गुरोः कर्मशेषेण  
 जपेत् । गुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे सब्रह्मचारिण्यसौ  
 वा एवं वृत्तो ब्रह्मलोकमेवामोति जितेंद्रियः । उत्तरेषां चैत-  
 दविरोधी अनिचयो भिक्षुः ऊर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु  
 भिक्षार्थी ग्राममियात् । जघन्यमनिवृत्तं चरेत् ॥ निवृत्ताशी-  
 र्वाक्चक्षुःकर्मसंपतः कौपीनाच्छादनार्थं वासो विभ्रयात् ।  
 प्रहीणमेके निणेंजनाविप्रयुक्तमौषधीवनस्पतीनामंगमुपाददीत  
 न द्वितीयामपहर्तुं रात्रिं ग्रामे वसेत् । मुंडः शिखी वावर्ज्ये-  
 ण्जीववधसमीभूतेषु हिंसानुग्रहयोरनारंभो वैखानसो वने  
 मूलफलाशी तपःशीलः श्रावणकेनाग्निमाधाय अग्राम्यभाजी  
 देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्ज  
 भैक्ष्यमप्युपयुंजीत न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ग्रामं च न प्रविशेत्  
 जटिलश्चीराजिनवासाः नातिसांवत्सरं भुंजीत ऐकाश्रम्यं  
 त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थस्य गार्हस्थस्य ॥

इति श्रीगर्तमीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विदेतानन्यपूर्वा यवीयसीम्  
असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबंधुभ्यो जीविनश्च  
मातृबंधुभ्यः पंचमात् ॥

ब्राह्मो विद्याचारित्रबंधुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृतां  
संयोगमंत्रः । प्राजापत्ये सह धर्मं चरतामिति । आर्षे  
गोमिथुनं कन्यावते दद्यात् । अंतर्वेष्टात्विजे दानं दैवः ।  
अलंकृत्येच्छन्त्याः स्वयं संयोगो गांधर्वः । वितेनानतिस्त्री-  
मतामासुरः । प्रसह्यादानाद्राक्षसः । असंविज्ञानोपसंगमनात्पै-  
शाचः । चत्वारो धर्म्याः प्रथमाः षडित्येके ॥ अनुलोमानं-  
तैरैकांतरव्यंतरासु जाताः सवर्णाविष्टोग्रनिषाददौष्यंतपारशवाः  
प्रतिलोमासु सूतमागधायोगवक्षत्तृवैदेहकचंडालाः ब्राह्मण्य-  
जीजनत्पुत्रान् वर्णेभ्य आनुपूर्व्यात् ब्राह्मणसूतमागधचंडा-  
लान् तेभ्य एव क्षत्रिया भूर्धावसिक्तक्षत्रियधीवरपुल्कसान्  
तेभ्य एव वैश्या भृज्जकंटकमाहिष्यवैश्यवैदेहान् तेभ्य एव  
पारशवयवनकरणशूद्रान् शूद्रेत्येके । वर्णांतरगमनमुत्कर्षा-  
पकर्षाभ्यां सप्तमेन पंचमेन चाचार्याः सृष्ट्यंतरजातानां च  
प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः शूद्रायां च असमानायां च  
शूद्रात्पतितवृत्तिः अंत्यः पापिष्ठः ॥

( ३८४ ) अष्टादशस्मृतयः ।

पुनन्ति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानार्थादश दैवांदशैव प्राजा-  
पत्यादश पूर्वान्दशापरानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रा ब्राह्मीपुत्राः ॥  
इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

। ऋतावुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिपिद्वर्जम् ॥ देवपितृमनुष्य-  
भृतर्पिपूजकः नित्यस्वाध्यायः पितृभ्यश्चोदकदानम् । यथो-  
त्साहमन्यद्भार्थादिरभिर्दायादिर्वा तस्मिन् गृह्याणि देवपितृ-  
मनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च वलिकर्म्माभावमिधन्वंतरिर्विश्वदेवाः  
मंजापतिः स्विष्टकृदिति होमः दिग्देवताभ्यश्च यथा  
स्वदारेषु मरुद्भ्यो गृहदेवताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्ये अद्भ्य  
उदकुम्भे आकाशायेत्यंतरिक्षे नक्तंचरेभ्यश्च सायं स्वस्तिवाच्य  
भिक्षादानमश्वपर्वं तु ददातिषु चैवं धर्मेण समद्विगुणसाहस्रा-  
नंत्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्चोत्रियवेदपारगेभ्यः गुर्व-  
र्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वानि-  
तेषु द्रव्यसंविभागौ बहिर्वेदिभिक्षमाणेषु कृतामितरेषु प्रति-  
श्रुत्याप्पधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ॥ क्रुद्धहृष्टभीतार्तलुब्ध-  
बालस्थविरमूढमतोन्मत्तवाक्यान्यनृतान्यपातकानि । भोज-  
येत्पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणीसुवासिनीस्थविरान्जघ-  
न्याश्च आचार्यपितृसखीनां च निवेद्य वचनाक्रियाः ऋत्वि-

गाचार्यश्चशुरपितृमातुलानामुपस्थाने मधुपर्कः संवत्सरे पुन-  
र्यज्ञविवाहयोरर्वाक् राज्ञश्च श्रोत्रियस्य अश्रोत्रियस्यासनोदके  
श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नाविशेषांश्च अकारयेत् नित्यं वा  
संस्काराविशिष्टं मध्यतोन्नदानं वैद्ये साधुवृत्ते विपरीतेषु तृणो-  
दकभूमिः स्वागतं ततः पूज्यानत्याशश्च शय्यासनावसथानु-  
ब्रज्योपासनानि संहक्श्रेयसोः समानानि अल्पशोपि हीने ।  
असमानग्रामोतिथिरेकरात्रिको धिवृक्षसूर्योपस्थायी कुशला-  
नामयारोग्याणामनुप्रभोऽथ शूद्रस्याब्राह्मणस्यानतिथिरब्राह्म-  
णो यज्ञे संवृत्तश्चेत् भोजनं तु क्षत्रियस्योर्ध्वं ब्राह्मणेभ्यः अ-  
न्यान् भृत्यैः सहानृशंसार्थमानृशंसार्थम् ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

पादोपसंग्रहणं गुरुसमवायेऽन्वहम् । अभिगम्य तु विप्रो-  
प्य मातृपितृतद्वंधूनां पूर्वजानां विद्यागुरुणां च सन्निपाते  
परस्य स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादोऽज्ञसमवाये स्त्रीपुंयो-  
गेऽभिवादतोऽनियममेकेनाविप्रोप्य स्त्रीणाममातृपितृव्यभा-  
र्याभगिनीनां नोपसंग्रहणं भ्रातृभार्याणां श्वश्वाश्च ऋत्विक्छू-  
शुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिवाद्याः



तथान्यः पूर्वः पौरोऽशीतिकावरः शूद्रोऽप्यपत्यसेमेन अवरो-  
प्यार्यः शूद्रेण नाम चास्य वर्जयेत् ॥

राज्ञश्चाजपः प्रेक्ष्यः भोभवन्निति वयस्यः समानेऽहनि  
जातो दशवर्षवृद्धः पौरः पंचभिः कलाधरः श्रोत्रियधारण-  
स्त्रिभौ राजन्यवैश्यकर्मविद्याहीनाः दीक्षितश्च प्राकृक्रियात्  
वित्तबंधुर्मनातिविद्यावयांसि सामान्यानि परबलीयांसि  
श्रुतं तु सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च ॥

चक्रिदशमीस्याणुग्राह्यवधून्जातकराजभ्यः पथोदानं राज्ञा  
तु श्रोत्रिपाप श्रोत्रियाय ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पट्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्याब्राह्मणाद्विद्योपयोगोऽनुगमनं  
शुश्रूषा । समाप्तेर्ब्राह्मणो गुरुः याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः सर्वे-  
षां पूर्वः पूर्वो गुरुः तदभावे क्षत्रवृत्तिः तदभावे वैश्यवृत्तिः  
तस्यापण्यं गंधरसकृतान्नतिलशाणक्षौमाजिनानि रक्तनिर्णिके  
वाससी क्षीरं च सविकारं मूलफलपुष्पोषधमधुमांसतृणो-  
दकापध्यानि पशवश्च हिंसासंयोगे पुरुषवशा कुमारी वेह-  
तश्च नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके विनिम-  
यस्तु रसानां रसैः पशूनां च न लवणाकृताज्योस्तिलानां च

समेनामेन तु पकस्य संप्रत्यये सर्वधातुवृत्तिरशक्तावशूद्रेण  
तदप्येके प्राणसंशयेतद्वर्णसंकराभक्ष्यनियमस्तु प्राणसंशये  
ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म वैश्यकर्म ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

### अष्टमोऽध्यायः ८.

द्वौ लोके धृतवृत्तौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः । तयोश्चतु-  
र्विधस्य मनुष्यजातस्यांतःसंज्ञानां चलनपतनसर्पणानामा-  
यत्तं जीवनं प्रसूतिरक्षणमसंकरो धर्मः । स एष बहुश्रुतो  
भवाति लोकवेदवेदांगवित् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्त-  
दपेक्षस्तद्वृत्तिः चत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्व-  
भिरतः षड्सु वासामयाचारिकेष्वभिविनीतः षड्भिः परि-  
हार्यो राज्ञा वध्यश्चावध्यश्चादंड्यश्चावहिष्कार्यश्चापरिवाह्यश्चा-  
परिहार्यश्चेति ।

गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनं जातकर्मनामकरणात्रमाशन  
चौलोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि ज्ञानं सहधर्मचारिणीसं-  
योगः पंचानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां  
च अष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजीति सप्त-  
पाकयज्ञसंस्था अम्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ आग्रहायणं  
चातुर्मास्यानि निरुदपशुबंधसौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञसंस्थाः

अग्निष्टोमोत्पग्निष्टोम उक्थः षोडशो वाजपेयातिरात्रोऽतोऽर्याम  
इति सप्त सोमसंस्थाः इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः । अथा-  
ष्टावात्मगुणाः दया सर्व्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचमनायासो  
मंगलमकार्ष्ण्यमस्पृहेति । यस्मैते न चत्वारिंशत्संस्काराः  
न चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च  
गच्छति ॥ यस्य तु खलु संस्काराणामेकदेशोऽप्यष्टावात्म-  
गुणाः अथ स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति  
गच्छति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

### नवमोऽध्यायः ९.

स विधिपूर्व्वं स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थ-  
धर्मान् प्रयुञ्जान इमानि धृतान्यनुकर्षेत् स्नातकः नित्यं शुचिः  
सुगन्धिः स्नानशीलः सति विभवेन जीर्णमलवद्वासाः स्यात् ।  
न रक्तमुल्बणमन्यधृतं वा वासो विभृयात् । न सगुपानहौ  
निर्णिक्तमशक्तौ न रुद्धश्मश्रुरकस्मात्राग्निमपश्च युगपद्धारयेत् ।  
नापोऽमेध्यैः संसृजेत् । नांजलिना पिबेत् । न तिष्ठन्  
उद्धृतेनोदकेनाचामेत् । न शूद्राशुच्येकपाण्यावर्जितेन न  
वाग्वर्णिं विप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रतिपश्यन् वा मूत्रपुरी-  
षामेध्यान्युदस्येत् नैता देवताः प्रति पादौ प्रसारयेत् । न

पर्णलोष्टाश्मभिर्मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यात् । न भस्मकेशनख  
तुपकपालामेध्यान्याधितिष्ठेन्न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह  
संभाषेत संभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् । ब्राह्मणेन वा सह  
संभाषेत । अधेतुं धेनुभव्येति ब्रूयात् । अभद्रं भद्रमिति  
कपालं भगालमिति मणिधनुरितीन्द्रधनुः । गां धयंतीं परस्मै  
नाचक्षीत । न चैनां वारयेत् । न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति  
विलंबेत् । न च तस्मिन् शयने स्वाध्यायमधीयीत । न  
चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेत् । नाकल्पां नारीमभि-  
रमयेत् । न रजस्वलां न चैतां श्लिष्येत् न कन्याम् । अग्नि-  
मुखोपधमनविगृह्यवादवहिर्गन्धमाल्यधारणपापीयसावलेखन-  
भार्यासहभोजनांजनावेक्षणकुद्धारप्रवेशनपादधावनासंदिग्ध-  
भोजननदीबाहुतरणवृक्षवृषभोराहणावरोहणप्राणनाव्यवस्थां  
च विवर्जयेत् । न संदिग्धां नावमाधिरोहेत् । सर्व्वत एव  
आत्मानं गोपायेत् । न प्रावृत्य शिरोहनि पर्य्यटेत् । प्रावृत्य  
रात्रौ मूत्रोच्चारं च न भूमावनंतर्द्धाय नाराच्चावसथान्न भस्म-  
करीषकृष्टच्छायापथिकाम्येषुभे मूत्रपुरीषे दिवा कुर्यात् ।  
उदङ्मुखः संध्ययोश्च रात्रौ दक्षिणामुखः पालाशमासनं  
पादुके दंतधावनमिति च वर्ज्जयेत् । सोपानत्कश्चाशनासन-  
शयनाभिवादननमस्कारान् वर्ज्जयेत् । न पूर्वाह्नमध्यन्दिना-  
पराह्णानफलान् कुर्याद्वा. यथाशक्ति धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु च

धर्म्मोत्तरः स्यात् । न नम्रां परयोपितमीक्षेत न पदासनमाक-  
 षेत् । न शिश्नोदरपाणिपादवाक्चक्षुश्चापलानि कुर्यात् ।  
 छेदनभेदनविलेखनविमर्दनास्फोटनानि नाकस्मात्कुर्यात् ॥  
 नोपरिवत्सतंत्रां गच्छेत् । न जलंकुलः स्यात् । न यज्ञमवृत्तो  
 गच्छेत् । दर्शनाय तु कामम् । न भक्ष्यानुत्संगे भक्षयेत् ।  
 न रात्रौ प्रेष्याहृतमुद्धृतस्नेहविलेपनपिण्याकमथितप्रभृतीनि  
 चात्तवीर्याण्यश्नीयात् । सायंप्रातस्त्वन्नमभिपूजितमर्निदन्  
 भुंजीत । न कदाचिद्वात्रौ नमः स्वपेत् स्नायाद्वा । यच्चात्म-  
 वंतो वृद्धाः सम्पत्विनीता दंभलोभमोहवियुक्ता वेदविद  
 आचक्षते तत्समाचरेत् ॥ योगक्षेमार्थमीश्वरमधिगच्छेत् ।  
 नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्म्मिकेभ्यः प्रभूतैधोदकयवसकुशमाल्यो-  
 पनिष्क्रमणमार्घ्यजनभूपिष्ठमनलसमृद्धं धार्म्मिकाधिष्ठितं  
 निकेतनमावसितुं यतेत । प्रशस्तमंगल्यदेवतायतनचतुष्पथा-  
 दीन् प्रदक्षिणमावर्तेत । मनसा वा तत्समग्रमाचारमनुपालये-  
 दापत्कल्पः सत्यधर्म्मार्घ्यवृत्तः शिष्टाध्यापकः शौचशिष्टः  
 श्रुतिनिरतः स्यात् । नित्यमहिंस्रो मृदुदृढकारी दमदानशील  
 एवमाचारो मातापितरौ पूर्वापरांश्च संवद्धान् दुरितेभ्यो  
 मोक्षीष्यन् स्नातकः शश्वद्वह्मलोकात्र च्यवते न च्यवते ॥

प्रथमःपाठकः ॥ १ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम् । ब्राह्मणस्याधिकाः  
प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः सर्व्वेषु नियमस्तु आचार्यज्ञातिप्रि-  
यगुरुधनविद्यानिधमेषु ब्राह्मणः संप्रदानमन्यत्र यथोक्तान्  
कृपिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदं च राज्ञोधिकं रक्षणं सर्व्व-  
भूतानां न्याय्यदंडत्वं विभृयात् ॥ ब्राह्मणान् श्रोत्रियान्  
निरुत्साहांश्चाब्राह्मणानकरांश्चोपकुर्वाणांश्च योगश्चविजये भये  
विशेषेण चर्या च रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च  
न दोषो हिंसायामाहवे अन्यत्र व्यश्वसारथ्यायुधकृतांजलि-  
प्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षादिरूढदूतगोब्राह्मणवा-  
दिभ्यः क्षत्रियश्चेदन्यस्तमुपजीवेत्तद्वृत्तिः स्यात् जेतालभेत  
सांग्रामिकं वित्तं वाहनं तु राज्ञ उद्धारश्चापृथक् जये अन्यत्तु  
यथार्हं भाजयेद्राजा राज्ञे बलिदानं कर्षकैः दशममष्टमं षष्ठं  
वा पशुहिरण्ययोःप्येके पंचाशद्भागं विंशतिभागः शुल्कः  
पण्ये मूले फलमधुमांसपुष्पौषधतृणेंधनानां षष्ठं तद्रक्षणध-  
र्मित्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यात् । अधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो  
मासिमास्यंकैकं कर्म कुर्युः । एतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः ।  
नौचक्रिवंतश्च भक्तं तेभ्योपि दद्यात् । पण्यं वणिग्भिरथापच-

येन देयम् । प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रवृत्तः विख्याप्य  
 राज्ञा संवत्सरं रक्ष्यभूर्द्धमाधिगंतुश्चतुर्थं राज्ञः शेषम् । स्वामी  
 रिक्याक्यसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं  
 क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः निध्याधिगमो राजधनं  
 न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य अब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके ।  
 चौरहतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् । कोशाद्रा दद्यात् ।  
 रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्रापणादा समावृत्तेर्वा । वैश्यस्याधिकं  
 कृषिवणिक्पाशुपाल्यं कुसीदं शूद्रश्चतुर्थो वर्णः एकजातिस्त-  
 स्यापि सत्यमक्रोधमशौचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालनमेवैके  
 श्राद्धकर्म भृत्यभरणं स्वदारतुष्टिः परिचर्या चोत्तरेषां वृत्तिं  
 लिप्सेत जीर्णान्युपानच्छत्रवासः कूर्चान्युच्छिष्टप्राशनं शिल्प-  
 वृत्तिश्च । यं चायमाश्रयते भर्तव्यस्तेन क्षीणोपि तेन चोत्तर-  
 स्तदर्थोऽस्य निचयः स्यात् । अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः ।  
 पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके । सर्व्वे चोत्तरोत्तरं परिचरेयुः ।  
 आर्यानार्ययोर्व्यतिक्रमे कर्मणः साम्यं साम्यम् ॥

इति श्रीगौतमायै धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

### एकादशोऽध्यायः ११.

राजा सर्व्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्ज्जं साधुकारी स्यात् । साधुवादी  
 प्रप्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः । शुचिर्जितेन्द्रियो गुणव-

त्सहायोपायसंपन्नः समः प्रजासु स्यात् हितं चासां कुर्वीत  
तमुपर्यासीनमधस्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेप्येनं मन्ये-  
रन् । वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् । चलतश्चैनान्स्वधर्मे  
एव स्थापयेत् । धर्मस्थोऽशभाग्भवतीति विज्ञायते । ब्राह्मणं  
च पुरो दधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयःशीलसंपन्नं न्यायवृत्तं  
तपस्विनम् । तत्प्रसूतः कर्माणि कुर्वीत ब्रह्मप्रसूतं हि  
क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते ।

यानि च दैवोत्पातचिंतकाः प्रब्रूयुस्तान्यादिषेत् तदधी-  
नमपि ह्येके योगक्षेमं प्रतिजानते । शांतिपुण्याहस्वस्त्ययना-  
युष्यमंगलयुक्तान्याभ्युदायिकानि विद्वेषणसंवलनाभिचारादि-  
षद्वृद्धिपुक्तानि च शालामौ कुर्यात् । यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि ।  
तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यंगान्युपवेदाः पुराणं देश-  
जातिकुलधर्माश्चाभ्रापैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिक्पशु-  
पालकुसीदकारवः स्वेस्वे वर्गे तेभ्यो यथाधिकारमर्थान्  
प्रत्यवहृत्य धर्मभ्यवस्थान्यायाधिगमे तर्कोभ्युपायः तेनाभ्यूह्य  
यथास्थानं गमयेत् । विप्रतिपत्तौ त्रैविद्यमृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य  
निष्ठां गमयेत् । तथाह्यस्य निःश्रेयसं भवति । ब्रह्म क्षेत्रेण  
संपृक्तं देवपितृमनुष्यान् धारयतीति विज्ञायते ।

दंडो दमनादित्याहुस्तेनादांतान् दमयेत् वर्णाश्चाश्रमाश्च



स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्य फलमनुभूय ततः शंषेण विशिष्टदेशजा-  
तिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्तसुखमेवसो जन्म प्रतिपद्यन्ते ।  
विष्वं चो विपरीतानश्यन्ति तानाचार्योपदेशो दंडश्च पालयते ।  
तस्मात् राजाचार्यावनिद्यावनिधौ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्र एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्यायः १२.

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्या-  
मंगं भोक्ष्यो येनोपहन्यात् । आर्यस्यभिगमने लिंगोद्धारः  
स्वप्रहरणं च गोप्ता चेद्वधोधिकः । अथाहास्य वेदमुपशृण्वत-  
स्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिष्करणम्, उदाहरणे जिह्वाच्छेदः धारणे  
शरीरभेदः । आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्द्वयः शतम् ।  
क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रोशे दंडपारुष्ये द्विगुणम् ॥ अध्यर्द्धं वैश्यः ।  
ब्राह्मणः क्षत्रिये पंचाशत् तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किञ्चित् ब्राह्मण-  
राजन्यवत् । क्षत्रियवैश्यौ अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य  
द्विगुणोत्तराणीतरेषाम् । प्रतिवर्णं विदुषोत्तिक्रमे दंडभूयस्त्वम् ।  
पलहरितधान्यशाकादाने पंचकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामि-  
दोषः पालसंयुक्ते तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः  
पंचमापा गवि पटुष्ट्रसरे अश्वमहिष्योर्दश अजाविषु द्वौ द्वौ

सर्व्वविनाशे शतं शिष्टावरणे प्रतिपिद्धसेवायां च नित्यं चेल-  
पिंडादूर्ध्वं स्वहरणं गोग्न्यर्थे तृणमेधोवीरुद्धनस्पतीनां च  
पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृत्तानाम् ॥

कुसीदवृद्धिर्द्धर्म्या विंशतिः पंचमासिकी मासं नातिसां-  
वत्सरीमेके चिरस्थाने द्वेगुण्यं प्रयोगस्य मुक्ताभिर्न वर्द्धते  
दित्सतोवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिता कायिकाशिकाऽ-  
धिभोगाश्च कुसीदं पशूपलोमजक्षेत्रशतवाह्येषु नापि पंचगु-  
णम् । अजडापोगंडधनं दशवर्षमुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुः न  
श्रोत्रियप्रव्रजितराजपुरुषैः पशुभूमिस्त्रोणामनतिभोगः रिक्थ-  
भाजि ऋणं प्रतिकुर्युः प्रातिभाव्यवणिकुल्लुमद्यदूतदंडान्  
पुत्रानध्याभवेयुः निर्व्यं वाचितावक्रीताधयो नष्टाः सर्वा न  
निदिता न पुरुषापराधेन स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजान-  
मियात् कर्माचक्षाणः पृतो वधमोक्षाभ्यामन्नत्नेनस्वी राजा न  
शारीरो ब्राह्मणदंडः कर्मवियोगविख्यापनविवासनांककरणा-  
नि अप्रवृत्तौ प्रायश्चित्ती सः चोरसमः सचिवो मतिपूर्वं प्राति-  
गृहीताप्यधर्मसंयुक्ते पुरुषशक्त्यपराधानुबंधाविज्ञानादंडनि-  
योगः अनुज्ञानं वा वेदवित्समवायवचनात् वेदवित्समवाय-  
वचनात् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशोऽध्यायः १३.

विप्रातिपत्तौ साक्षिणि मिथ्यासत्यव्यवस्था बहवः स्युर-  
निदिताः स्वकर्मसु प्रात्ययिकां राज्ञां निःप्रीत्यनमितायाश्चा-  
न्यतरस्मिन्नपिशूदाः ब्राह्मणस्त्वब्राह्मणवचनादनवरोध्योऽनि-  
बद्धश्चेत् नासमवेतापृष्टाः प्रवृणुः अवचनेन्यथावचने च  
दोषिणः स्युः स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः अनिवद्भैरपि  
वक्तव्यं पीडाकृते निबन्धः प्रमत्तोक्ते च साक्षिसभ्यराजकर्तृषु  
दोषो धर्मतन्त्रपीडायाम् । शपर्येनैके सत्यकर्मणा तद्देवरा-  
जब्राह्मणसंसदि स्यात् ।

अब्राह्मणानां क्षुद्रपश्वनृते साक्षी दश हन्ति गोश्वपुरुषभू-  
मिषु दशगुणोत्तरान् । सर्वं वा भूमौ हरणे नरकः भूमि-  
वदप्सु भैयुनसंयोगेषु च पशुवन्मधुसर्पिपोः गोवदस्त्रहिर-  
ण्यधान्यब्रह्मसु यानेष्वश्ववत् मिथ्यावचने याप्यो दंडश्च  
साक्षी नानृतवचने दोषो जीपनं चेत्तदधीनं नतु पापीयसो  
जीपनं राजा प्राङ्निवाको ब्राह्मणो वा शास्त्रवित् प्राङ्निवाको  
मध्यो भवेत् । संवत्सरं प्रतीक्षेत प्रतिभायां धेन्वनहुत्स्त्रीमज-  
संयुक्तेषु शोचम् । आत्ययिके सर्वधर्मभ्यो गरीयः प्राङ्निवाके  
सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥

इति श्रीगौतमोये धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## चतुर्दशोऽध्यायः १४.

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिण्डानामेकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमेकमासं शूद्रस्य तच्चेदंतः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुद्धयेरन् । रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्च । युद्धप्रायोऽनाशकशस्त्राभिविषोदकोद्वंधनप्रपतनैश्चेच्छतां पिण्डनिवृत्तिः सप्तमे पंचमे वा जननेष्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रिः. संसने गर्भस्य त्र्यहं वा श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणी असपिण्डे योनिसंवंधे सहाध्यायिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसंपन्ने भेतोपस्पर्शने दशरात्रमशौचमभिसंधाय चेत् उक्तं वैश्यशूद्रयोः आर्तवीर्वा पूर्वयोश्च त्र्यहं वा आचार्यतत्पुत्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवम् । अवरश्चेद्वर्णः पूर्ववर्णमुपस्पृशेत् । पूर्वो वावरं तत्र शावोक्तम् आशौचे पतितचंडालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्पृष्ठ्युपस्पर्शने सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुद्ध्येत् । शवानुगमे शुनश्च यदुपहन्यादित्येके उदकदानसपिंडैः कृतचूडस्य तत्स्त्रीणां चानतिभाग एकेऽप्रत्तानाम् ।

अधःशय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्वे न मार्जयेरन् । न मांसं भक्षयेयुराप्रदानात् । प्रथमतृतीयसप्तमनवमेषूदकक्रिया

वाससां च त्यागः । अंत्ये त्वंत्यानां दंतजन्मादिमातापितृभ्यां तूष्ण्यां माता बालदेशांतरितप्रव्रजितासपिंडानां सद्यः शौचम् । राज्ञां च कार्यविरोधात् । ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थं स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

### पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् । पंचमीप्रभृति चापरपक्षस्य यथाश्राद्धं सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षेण गुणसंस्कारविधिरक्षस्य नवाचरान् भोजयेदयुजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् वाग्रूपवयःशलिसंपन्नान् । युवभ्यो दानं प्रथममेकं पितृवत् । न च तेन मित्रकर्म कुर्यात् । पुत्राभावे सपिंडा मातृसपिंडाः शिष्याश्च दद्यात्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ । तिलमाषघ्रीहिपवीतृकदानैर्मांसं पितरः प्रीणन्ति । मत्स्यहरिणरुरुशशकृम्वराहमेपमांसैः संवत्सराणि । गव्यपयःपायसैर्द्वादशवर्षाणि चार्माणसेन मांसेन कालशाकच्छागलोहखड्गमांसैर्मधुभिर्भैश्वानंत्यम् । न भोजयेत् स्तेनक्रीवपतिततद्भृत्तिनास्तिकवीरहाग्रेदिधिषूदिधिषूपतिस्त्रीप्रामयाजकाजपालोत्सृष्टाभिर्मद्यपकुचरकूटसाक्षिप्रातिहारिकानुपपत्तिर्यस्य च । कुंडाक्षी सोम

विक्रय्यगारदाहीगरदावकीर्णिगणप्रेष्यागम्यागामिहिंसपरि-  
वित्तिपरिवेत्तृपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्बालान् कुनाविश्या-  
वदंतश्चित्रिपौनर्भवकितवाजपराजप्रेष्यप्रातिरूपिकशूद्रापति-  
निराकृतिकिलासिकुसीदिवाणिकुशिल्पोपेजीविज्यावादित्रताल  
नृत्यगीतशोलान् पित्रा चाकामेन विभक्तान् ।

शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवंतं सद्यः  
श्राद्धी शूद्रातल्पगस्तत्पुत्ररौपे मासं नयति पितृन् तस्मात्  
तदहर्ब्रह्मचारी स्यात् ॥ श्वचंडालपतितोपेक्षणे दुष्टं तस्मात्  
परिश्रुते दद्यात् तिलैर्वा विकिरेत् । पंक्तिपावनौ वा शमयेत् ।  
पंक्तिपावनाः पडंगवित् ज्येष्ठसामगस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधु-  
स्त्रिसुपर्णः पंचामिः स्नातको मंत्रब्राह्मणवित् धर्मज्ञो ब्रह्मदे-  
यानुसंधान इति हविःपुत्रैव दुर्बलादीञ्छ्राद्ध एवैक एवैके ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

### षोडशोऽध्यायः १६.

श्रावणादिवार्षिकीं प्रोष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीतच्छदांसि  
अर्धपंचमासान् । पंचदक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टलोमा न  
मासं भुंजीत द्वेमास्यो वा नियमः ।

नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाण-  
भेरीमृदंगगर्जनार्तशब्देषु च श्वसृगालगर्भसंज्ञादे लोहिते-

चाससां च त्यागः । अंत्ये त्वंत्यानां दंतजन्मादिमातापि-  
तृभ्यां नूष्णीं माता बालदेशांतरितप्रव्रजितासपिंडानां सद्यः  
शौचम् । राज्ञां च कार्यविरोधात् । ब्राह्मणस्य च स्वाध्याया-  
निवृत्त्यर्थं स्वध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

### पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् । पंचमीप्रभृति  
चापरपक्षस्य यथाश्राद्धं सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने  
वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षेण्युणसंस्कारविधिरन्नस्य नवा-  
वरान् भोजयेदयुजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रोत्रियान्  
वाश्रूषवयःशीलसंपन्नान् । युवभ्यो दानं प्रथममेके पितृवत् ।  
न च तेन मित्रकर्म कुर्यात् । युवाभावे सपिंडा मातृसपिंडाः  
ऋष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ । तिलमाषव्रीहियवो-  
द्वकदानैर्मांसं पितरः प्रीणंति । मत्स्यहरिणरुरुशशकृर्म-  
षराहमेपमांसैः संवत्सराणि । गव्यपयःपायसैर्द्वादशवर्षाणि  
चार्वाणसेन मांसेन कालशाकच्छागलोहखड्गमांसैर्मधुमिश्रे-  
श्चानंत्यम् । न भोजयेत् स्तेनक्लीवपतिततद्दृत्तिनास्तिकवी-  
रहाश्रेदिधिषूदिधिषूपतिस्रीग्रामपाजकाजपालोत्सृष्टाप्रिमद्यप-  
कुचरघूदसाक्षिमातिहारिकानुपपत्तिर्यस्य च । कुंडाक्षी सोम

विक्रय्यगारदाहीगरदावकीर्णिगणप्रेष्यागम्यागामिहिंस्रपरि-  
धित्तिपरिवेचृपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्वालान् कुनास्त्रिया-  
चंदंतश्चित्रिपौनर्भवकितवाजपराजप्रेष्यप्रातिरूपिकशूद्रापति-  
निराकृतिकिलासिकुसीदिवाणिकशिल्पोपेजीविज्यावादित्रताल  
नृत्यगीतशीलान् पित्रा चाकामेन विभक्तान् ।

शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवंतं सद्यः  
श्राद्धी शूद्रातल्पगस्तत्पुत्ररोपे मासं नयति पितृन् तस्मात्  
तदहर्ब्रह्मचारी स्यात् ॥ श्वचंडालपतितोवेक्षणे दुष्टं तस्मात्  
परिश्रुते दद्यात् तिलैर्वा विकिरेत् । पंक्तिपावनौ वा शमयेत् ।

पंक्तिपावनाः षडंगवित् ज्येष्ठसामगस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधु-  
स्त्रिसुपर्णः पंचामिः स्नातको मंत्रब्राह्मणवित् धर्मज्ञो ब्रह्मदे-  
यानुसंधान इति हविःषु चैव दुर्बलादिञ्छ्राद्ध एवैक एवैके ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

### षोडशोऽध्यायः १६.

श्रावणादिवार्षिकीं प्रोष्ठपर्दी वोषाकृत्याधीयीतच्छदांसि  
अर्धपंचमासान् । पंचदक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टलोमा न  
मासं भुंजीत द्वेमास्यो वा नियमः ।

नाधीयीत चायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाण-  
भेरीमृदंगगर्जनार्तशब्देषु च श्वसृगालगर्भसंज्ञादे लोहितै-



द्रधनुर्नीहारेण अभ्यदर्शने चापतौ मूत्रित उच्चारिते निशास-  
 ध्योदके वर्षति चैके वलीकसंतानमाचार्यपरिवेषणे ज्योति-  
 पोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामांतम-  
 हापथाशौचेण प्रतिगंधांतःशवदिवाकीर्तिशूद्रसन्निधाने शुल्कके  
 चोद्गात्रे ऋग्यजुषं च सामशब्दे यावत् । आकालिकाः  
 निर्घातभूमिकंपरादुदर्शनोल्काः स्तनयिलुवर्षविद्युतश्च प्रादु-  
 ष्कृतामिषु अनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात् त्रिभागा-  
 दिप्रवृत्तौसर्वमुल्काविद्युत्समेत्येकेषां स्तनयितुरपराह्णे अपि  
 प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्धरात्रात् । अहश्चेत्सज्योतिः विषयस्थे च  
 राज्ञि भेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपाहितवेदसमाप्तिः  
 छर्दिश्राद्धमनुष्यंयज्ञभोजनेष्वहोरात्रमूजमावास्यायां च द्यहं  
 वा कार्तिकीफाल्गुन्यापाढीपौर्णमासीतिस्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्या-  
 ग्न्येके अभितो वार्षिकं सध्वं वर्षविद्युत्स्तनयिलुसंनिपाते  
 प्रस्पंदिन्यूध्वं भोजनादुत्सवे प्रार्थातस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तं  
 नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचिश्राद्धिनामाकालिकमकृतान्न-  
 श्राद्धिकसंयोगेपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरन्ति यावत्स्मरन्ति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पाठशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत प्रतिगृह्णी-  
यात् २। एधोदकपवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासनाव-  
सथयानपयोदधिधानाशफरिप्रियंगुस्रङ्गमार्गशाकान्यप्रणो-  
द्यानि सर्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यत् । वृत्तिश्चेत्  
नांतरेण शूद्रान्पशुपालक्षेत्रकर्मककुलसंगतकारयितृपरिचारका  
भोज्यान्ना वणिकृचाशिल्पी । नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नं  
रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतं भ्रूणघ्रावेक्षितं गवोपघातं  
भावदुष्टं शुक्तं केवलमदधि पुनः सिद्धं पर्युषितमशाकभ-  
क्ष्यस्नेहमांसमधूनि उत्सृष्टपुंश्चल्यभिश्चस्तानपदेश्यदंडिकत-  
क्षककदर्यवंधनिकाचिकित्सकमृगयुवार्युच्छिष्टभोजिगणविद्धि-  
षाणामपांक्तानां प्राक् दुर्बलान् वृथान्नानि च मनोत्थानव्य-  
पेतानि समासमाभ्यां विषमसमे यूजान्तरानर्चितश्च गोश्च  
क्षीरमनिर्दशायाः सूतके अजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेय-  
मौष्ट्रमेकशफं च स्यंदिनीयमसूसंधिनीनां च याश्च व्यपेतवत्साः  
पंचनखाश्चशल्यकशशकश्चाविद्गोधाखड्गकच्छपाः उभयतो-  
दत्केश्यलोभैकशफकलविकप्लवचक्रवाकहंसाः काककंकगृध्र-  
श्येना जलजा रक्तपादतुंडाः ग्राम्यकुरकुदसूकरौ धेन्यनडुहौ

च- आपन्नदावसन्नवृथामांसानि किसलयकयाकुलशुननिर्प्या-  
सलोहितौघश्वनाश्वनिचिदारुवकवलाकाःशुकद्वुष्टिद्विभमाभा-  
वनक्तंचरा अभक्ष्याः । भक्ष्याःप्रवुदाविष्किराजालपादाः  
मत्स्याश्चाविकृतावध्याश्च धर्मायैव्यालहतादृष्टदोषैवाकृमश-  
स्तान्यभ्युक्ष्योपयुंजीतोपयुंजीत ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

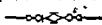
### अष्टादशोऽध्यायः १८.

अस्वतंत्रा धर्मे स्त्री नातिचरेद्रतारं वाक्चक्षुःकर्मसंयता  
यद्यपत्यलिप्सुर्देवरात् गुरुमसूताजर्तुमतीयात् पिंडगोत्ररू-  
पिसंबंधेभ्यः योनिमात्राद्वा नादेवरादित्येके । नातिद्वितीयं  
जनायितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्तस्य  
द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरेव । नष्टे भर्तारि षाड्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽ-  
भिगमनं प्रयोजिते तु निवृत्तिः प्रसंगात् तस्य द्वादशवर्षाणि  
ब्राह्मणस्य विद्यासंबंधे धातारि चैवं ज्यायसि यवीपान् कन्या-  
भ्युपयमनेषु षडित्येके । श्रीकुमार्यृतूनतीत्य स्वयं युज्येता-  
निदितेनोत्सृज्य पित्र्यानलंकारान् । प्रदानं प्रांगृतोरमयच्छन्  
दोषी प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके । द्रव्यादानं विवाहासिद्ध्यर्थं  
धर्मतंत्रप्रसंगे च शूद्रात् । अन्यत्रापि शूद्रात् बहुपशोर्ही-  
नकर्मणः शतगोरजाहिताग्नेः सदस्रगोर्वा सोमपात् सप्तमी

चाभुक्ता निचयाय अप्यहीनकर्मभ्यः आचक्षीते राज्ञा पृष्टस्तेन  
हि भर्तव्यः श्रुतशीलसंपन्नश्चेद्धर्मतंत्रपीडायां तस्यांकरणे  
दोषोऽदोषः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

द्वितीयः प्रपाठकः ॥



एकोनविंशोऽध्यायः १९.

उक्तो वर्णधर्मश्चाश्रमधर्मश्च ॥ अथ खल्वयं पुरुषो येन  
कर्मणा लिप्यते यथैतदयाज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणमवद्यवदनं  
शिष्टस्याक्रिया प्रतिषिद्धसेवनमिति च तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न  
कुर्यादिति भीमांसंते न कुर्यादित्याहुर्न हि कर्म क्षीयत  
इति कुर्यादित्यपरे पुनः स्तोमेनेष्टा पुनः सवनमायांतीति  
विज्ञायते । घ्रात्यस्तोमैश्चेष्टा तरति सर्व्व पाप्मानम् । तरति  
ब्रह्महत्यां योश्चमेधेन यजते । अग्निष्टुताभिशस्यमानं याजयेदिति  
च । तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुप-  
निषदो वेदांताः सर्व्वच्छंदःसुसंहिता मधून्यघमर्पणमथर्व-  
शिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहदथंतरे  
पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसा-  
म्नामन्यतमं बहिष्पवमानं कृष्मांडानि पावमान्यः सावित्री

चेति पावनानि । पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रस-  
 तपावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति च भेद्यानि ।  
 सर्वे शिलोच्चयाः सर्वा स्रवंत्यः पुण्या हृदास्तोथानि ऋषिनि-  
 वासागोष्ठपरिस्कन्दा इति देशाः । ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं  
 सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रतापःशायिताऽनाशक इति  
 तपांसि । हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिलघृतमन्त्रमिति देयानि ।  
 संवत्सरः पणमासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहः  
 षडहस्यहोहोरात्र इति कालाः एतान्येवानादेशे विकल्पेन  
 क्रियेरन्नेनासि गुरुणि गुरूणि लघुनि लघूनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ  
 चांद्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तं प्रायश्चित्तम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

### विंशोऽध्यायः २०.

अथ चतुःषष्टिषु यातनास्थानेषु दुःखान्यनुभूय तत्रेमानि  
 लक्षणानि भवंति ब्रह्महार्दकुष्ठी सुरापः श्यावदंतः गुरुतल्पगः  
 पंगुः स्वर्णहारी कुनखी शिवत्री वस्त्रापहारी हिरण्यहारी ददुरी  
 तेजोपहारी मण्डली ज्ञेहापहारी क्षयी तथा अजीर्णवानन्ना-  
 पहारी ज्ञानापहारी मूकः प्रतिहंता गुरोरपस्मारी गोघ्नो जात्यंधः  
 पिशुनः प्रतिनासः प्रतिवक्रस्तु सूचकः शूद्रोपाध्यायः श्वपा-  
 कस्त्रपुसीसचामरविक्रयी मद्यप एकशफविक्रयी मृगव्याधः

कुंडाशी मृतकचैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी नास्तिको  
 रंगोपजीव्यभक्ष्यभक्षी गंडरी ब्रह्मपुरुषतस्कराणां देशिकः  
 पिंडितः पंडो महापाथिको गंडिकश्चांडाली पुष्कसी गोष्ववकीर्णी  
 मध्वाग्नेर्हो धर्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्तकः खल्वाटः सगो-  
 त्रासमयरुयभिगामी श्लीपदी पितृमातृभगिनीरुयभिगाम्य-  
 विजितस्तेषां कुब्जकुंडपंडव्याधितव्यंगदारिद्र्याल्पायुषोऽल्पबु-  
 द्धिः चंडपंडशैलूपतस्करपरपुरुषप्रेष्यपरकर्मकराः खल्वा-  
 टवक्रांगसंकीर्णाः क्रूरकर्माणि क्रमशश्चांत्याश्चोपपद्यन्ते  
 तस्मात्कर्तव्यमेवेह प्रायश्चित्तं विशुद्धैर्लक्षणैर्जायन्ते धर्मस्य  
 धारणादिति धर्मस्य धारणादिति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

### एकविंशोऽध्यायः २१.

त्यजेत्पितरमपि राजघातकं शूद्रयाजकं शूद्रार्थयाजकं वेद-  
 विघ्नावकं ह्रदात् यश्चांत्यावसायिभिः सह संवसेदंत्यावसायिन्या  
 वा तस्य विद्यागुरुन्योनिसंबंधांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादीनि  
 प्रेतकर्माणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः दासः कर्मकरो  
 वा अवकरादमेध्यपात्रमानीय दासी घटान् पूरयित्वा दक्षिणा-  
 भिमुखः पदा विपर्यस्येदमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं तं

१ अन्यकास्य तुका कथेत्यपिशन्दार्थः ।

( ४०६ ) अष्टादशस्मृतयः ।

सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो  
योनिसंबंधाश्च वीक्षेरन् । अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशन्ति अत  
ऊर्ध्व तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन्सावित्रीमज्ञानपूर्व  
ज्ञानपूर्व चेन्निरात्रम् ।

यंस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्धयेत्तस्मिन् शुद्धे शातकुंभमयं प्रात्रं  
पुण्यतमात् द्विदात् परित्वा स्रवंतीभ्यो वा तत एनमप  
उपस्पर्शयेद्युः । अथास्मै तत्प्रात्रं दद्युस्तत्सं प्रतिगृह्य जपेत्  
शांता द्यौः शांता पृथिवी शांतं शिवमंतरिक्षं योरोचनस्तमिह  
गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिस्तरत्समंदीभिः पावमानोभिः कूष्मां-  
डैश्चाज्यं जुहुयात् । हिरण्यं ब्राह्मणाय वा दद्यात् गां  
चाचार्याय च यस्य च प्राणातिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्धयेत्  
तस्य सर्वाण्युदकादीनि भेतकर्माणि कुर्यरेतदेव शांत्युदकं  
सर्वेषूपपातकेषु सर्वेषूपपातकेषु ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

ब्रह्महसुरापयुरुतल्पगमावृत्पितृयोनिसंबंधगस्तेननास्तिकर्मे-  
दितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः ।  
पातकसंयोजकाश्च तैश्चावदं समाचरन् द्विजातिकर्मभ्यो हानिः  
पतनं परत्र चासिद्धिस्तामेकं नरकं त्रीणि प्रथमान्यनिर्देश्यानि ।

मनुः न स्त्रीष्वगुरुतल्पगः पततीत्येके । भ्रूणहनि हीनवर्ण-  
सेवायां च स्त्री पतति कौटसाक्ष्यं राजगामि पैशुनं गुरोरनृता-  
भिंशंसनं महापातकसमानि अपांकस्यानां प्राग्दुर्वलात् ।  
गोहंतृब्रह्मोज्झतन्मंत्रकृदवकीर्णपतितसावित्रिकेषूपपातकं या-  
जनाध्यापनाद्विगाचार्यौ पतनीयसेवायां च हेयौ अन्यत्र-  
हानात्पतति तस्य च प्रतिग्रहीत्येके न कर्हिचिन्मातापित्रो-  
रवृत्तिः दायं तु न भजेरन् ब्राह्मणाभिंशंसने दोषस्तावान्  
द्विरनेनासि दुर्वलर्हिंसायां चापि मोचने शक्तश्चेत् । अभि-  
वृद्ध्यावगूरुणं ब्राह्मणस्य वर्षशतमस्वर्ग्यं निपातने निर्धाते  
सहस्रं लोहितदर्शने यावतस्तत्प्रस्कंधं पांसून् संगृहीयात्सं-  
गृहीयात् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

### त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

प्रायश्चित्तमग्नौ सत्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिखच्छादितस्य लक्ष्येण वा  
स्याज्जन्यशस्त्रभृतां खट्वांगकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान्ब्रह्म-  
चारी भैक्ष्याय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्म्मचक्षाणः यथोपकामेत्सं-  
दर्शनादाप्यस्य स्नानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदकोपस्पर्श-  
नाच्छुद्धयेत् । प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य द्रव्यापचये  
वा ज्यवरं प्रति राज्ञोऽश्वमेधावभूथे वान्ययज्ञेऽप्यभिष्टुतं तश्चोत्सृष्ट-



( ४०८ ) अष्टादशस्मृतयः ।

श्वेद्राह्मणवधे हत्वापि आत्रेय्यां चैवं गर्भे चाविज्ञाते ब्राह्मणस्य  
राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्य्यमृषभैकसहस्राश्च गा  
दद्यात् वैश्ये त्रैवार्षिकमृषभैकशताश्च गा दद्यात् । शूद्रे संव-  
त्सरमृषभैकादशाश्च गा दद्यात् । अनात्रेय्यां चैवं गां च  
वैश्यवत् मंडूकनकुलकाकविट्पराहमूषिकाश्वाहिंसासु च ।  
अस्थिमतां सहस्रं हत्वा अनस्थिमतामनडुद्गारे च अपि  
वागस्थिमतामैकैकस्मिन् किंचिदद्यात् । पंडे च पला-  
लभारः सीसमापकश्च वराहे घृतघटः सर्पे लोहदंडः ब्रह्मबंध्वा  
च ललनायां जीवो वैशिके न किंचित् तत्पान्नधनलोभवधेषु  
पृथग्धर्पाणि द्वे परदारे श्रोणि श्रोत्रियस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गः  
यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिपिद्धमत्र योगे सहस्रवाक् चेत  
अग्न्युत्सादिनिराकृत्युपपातकेषु चैवं स्त्री चातिचारिणी गुप्ता  
पिंडं तु लभेत् । अमानुषीषु गोवर्जं स्त्रीकृते कूष्मण्डिर्घृतहोमो  
घृतहोमः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

### चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामांसिचक्षुः सुरामास्ये मृतः शुद्धयेत्  
जमत्या पाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रतिज्यहं तप्तानि सकृच्छ्र-  
स्ततोऽस्य संस्कारः मृत्रपुरीषरेतसां च प्राज्ञेन श्वापदो-

पृथ्वराणां चांगस्य ग्रामकुक्कुटशूकरयोश्च गंधाघ्राणे सुरापस्य  
प्राणायामो घृतप्राशनं च पूर्वैश्च दष्टस्य तल्पे लोहशयने  
गुरुतल्पगः शयीत । सूमीं वा ज्वलन्तीं चाश्लिष्येत् । लिंगं  
वा सवृषणमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणां प्रतीचीं दिशं व्रजेत् ।  
अजिह्वमाशरीरनिपातात् मृतः शुद्ध्येत् । सखीसयोनिसगो-  
त्राशिष्यभार्यासु स्नुषायां गवि च गुरुतल्पसमोऽवकर इत्येके  
श्वभिरादयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशं पुमांसं  
घातयेत् । यथोक्तं वा गर्दभेनावकीर्णो निर्ऋतिं चतुष्पथे  
यजते । तस्याजिनमूर्द्ध्वालं परिधाय लोहितपात्रः सप्तगृहान्  
भैक्षं चरेत् कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुद्ध्येत् । रेतःस्कंदने  
भये रोगे स्वप्नेर्माधनभैक्षचरणानि सप्तरात्रं कृत्वाज्यहोमः  
साभिसंधेर्वा रेतस्याभ्याम् ॥

सूर्याभ्युदित ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुञ्जानोभ्यस्तमिते च रात्रिं  
जपन् सावित्रीम्, अशुचिं दृष्ट्वादित्यमीक्षेत प्राणायामं कृत्वा  
अमेध्यप्राशने वा अभोज्यभोजनेनिष्पुरीषीभावः त्रिरात्रा-  
वरमभोजनं सप्तरात्रं वा, स्वयंशीर्णान्युपयुञ्जानः फलान्यन-  
तिक्रामन् प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दिनो घृतप्राशनं च आक्रो-  
शानृतर्हिंसासु त्रिरात्रं परमं तपः सत्यवाक्ये चेद्धारुणीभिः  
पावमानीभिर्होमः । विवाहमैथुनानिमातृसंयोगेष्वदोषमेके ।  
अनृतं चेत् न तु खलु गुर्वप्येषु यतः सप्त पुरुषानितश्च परतश्च

हन्ति । मनसापि गुरोस्तृतं 'वदन्नल्पेष्वप्यर्थेषु । अत्यावसा-  
यिनोगमने कृच्छ्राब्दः अमत्या द्वादशरात्रम्, उदक्पागमने  
त्रिरात्रं त्रिरात्रम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

### पंचविंशोऽध्यायः २५.

रहस्यं प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ह्रस्वं तरत्समंदीत्यप्सु  
जपेदप्रतिग्राह्यं प्रतिजिघृक्षन् प्रतिगृह्य वा अभोज्यं बुभुक्षमाणः  
पृथिवीमावपेत् ऋत्वंतरमण उदकोपस्पर्शनाच्छुद्धिर्मेके स्त्रीषु  
पयोव्रतो वा दशरात्रं धृतेन द्वितीयमद्विस्तृतीयं दिवादि-  
ध्वेकभक्तको जलक्लिन्नवासाः लोमानि नखानि त्वचं मांसं  
शोणितं स्नाप्यस्थिमज्जानमिति होम आत्मनोमुखे मृत्योरास्ये  
जुहोमीत्यंततः सर्वेषामेतत्प्रायश्चित्तं भ्रूणहत्यायाः । अथान्य  
उक्तो नियमः । अग्ने त्वं पारयेति महाव्याहृतिभिर्जुहुयात् ।  
कृष्मांडैश्चाज्यं तद्वत् एव वा ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुरुतल्पेषु  
प्राणायामैः । स्नातोऽधमर्पणं जपेत् । सममश्वमेधावभृथेन  
सावित्रीं वा सहस्रकृत्व आवर्तयन् पुनीते हेवात्मानमंतर्जले  
वाधमर्पणं त्रिरावर्तयन् पापेभ्यो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

पङ्क्तिविंशोऽध्यायः २६.

तदाहुः कतिधावकीर्णां प्रविशतीति । मरुतः प्राणेनेंद्रं बलेन  
बृहस्पतिं ब्रह्मवर्चसेनामिमेवेतरेण सर्वेणेति । सोमावास्यायां  
निश्यामिमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतेर्जुहेति कामावकी-  
र्णोऽस्यवकीर्णोऽस्मि कामाय स्वाहा ! कामाभिर्दुग्धोऽस्यभि-  
र्दुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति । समिधमाधायानुपर्युक्ष्य यज्ञ-  
वास्तुं कृत्वोपस्थाय समासिंचन्वित्येतया त्रिरुपतिष्ठेत् । त्रय इमे  
लोका एषां लोकानामभिजित्याभिक्रान्त्या इति । एतदैवैकपां  
कर्ममाधिकृत्ययोः पूत इव स्यात्स इत्थं जुहुयादित्यमनुमंत्रयेत्  
वरोदक्षिणेति । प्रायश्चित्तमविशेषात् अनार्जवपैशुनप्रतिपिद्धा-  
चारानाद्यप्राशनेषु शूद्रायां च रेतः सिकत्वा योनौ च दोषवाति  
कर्मण्यभिसंधिपूर्वेऽप्यङ्गिलाभिरुप उपस्पृशेद्धारुणीभिरन्यैर्वा  
पवित्रैः प्रतिपिद्धवाङ्मनसयोरपचारे व्याहृतयः संख्याताः  
पंच सर्वास्वपो वाचामेदहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहेति प्रातः  
रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनात्विति सायम् अष्टौ वा समिध-  
आदध्यादेवकृतस्येति हुत्वैवं सर्वस्मादेनसो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पङ्क्तिविंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामः । हविष्यान्प्रातराशान्भुक्त्वा

तिस्रो रात्रीर्नाशनीयात् । अथापरं ज्यहं नक्तं भुञ्जीत । अथापरं  
ज्यहं न कंचन याचेत् । अथापरं ज्यहमुपवसेत् । संतिष्ठेदहनि  
रात्रावासीत् क्षिप्रकामः सत्यं वदेत् । अनार्यैर्न संभाषेत् ।  
रौरवयौधाजिने नित्यं प्रयुञ्जीत । अनुसवनमुदकोपस्प-  
र्शनम् । आपोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयेत् ।  
हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिः॥ अथोदकतर्पणम्॥ ॐ  
नमो हमाय मोहमाय संहमाय धुन्वते तापसाय पुनर्वसेवे  
नमो नमो मौज्यायीर्म्याय वसुविंदाय सर्वविंदाय नमो  
नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमो नमो  
रुद्राय पशुपतये महते देवाय व्यंबकायैकचरायाधिपतये  
हराय शर्वायेशानाय शिवाय शांतायोग्राय वाजिने घृणिने  
कपर्दिने नमो नमः सूर्यायादित्याय नमो नमो नीलग्रीवाय  
शितिकंठाय नमो नमः कृष्णाय पिंगलाय नमो नमो ज्येष्ठाय  
श्रेष्ठाय वृद्धायैन्द्राय हरिकेशायोर्द्ध्वरेतसे नमो नमः सत्याय  
पावकाय पावकवर्णाय नमो नमः कामाय कामरूपिणे नमो  
नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तर्क्षिणाय तीक्ष्णरूपिणे  
नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायो-  
त्तमपुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चंद्रललाटाय  
नमो नमः कृत्तिवाससे पिनाकहस्ताय नमो नमः इति ।  
एतदेवादित्योपस्थानम् । एता एवाज्याहुतयः द्वादशरात्रस्यांते

चरुं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् । अग्नये स्वाहा  
सोमाय स्वाहा अग्नीषोमाभ्यांः स्वाहा इंद्राग्निभ्यामिन्द्राय  
विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति ॥  
अथ ब्राह्मणतर्पणम् ॥ एतेनैवातिकृच्छ्रोव्याख्यातः । याव-  
त्सकृदाददात् तावदग्नीयात् अब्भक्षस्तृतीयः स कृच्छ्राति-  
कृच्छ्रः प्रथमं चरित्वा शुचिः पूनः कर्मण्यो भवति । द्वितीयं  
चरित्वा यत्किंचिदन्यत् महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मा-  
त्प्रमुच्यते । तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते । अथै-  
तांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु स्नातो भवति सर्वदेवैर्ज्ञातो  
भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

### अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथातश्चांद्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं वर्त चरेत् ।  
श्रोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् । आप्यायस्वसंते पयांसि  
नवोनव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमौ हविषश्चानुमंत्रणम्  
उपस्थानं चंद्रमसोयदेवो देवहेडनामिति चतसृभिराज्यं जुहु-  
यात् । देवकृतस्येति चांते समिद्धिः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वस्तपः  
सत्यं यशः श्रीः रूपं गीरोजस्तेजः पुरुषो धर्मः शिव इत्ये-  
तैर्ग्रासानुमंत्रणं प्रतिमंत्रं मनसा नमः स्वाहेति वा सर्वग्रास

ममाणमास्याविकारेण चरुभैक्षसत्क्रुक्कणयावकपयोदधिपू-  
 तमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां  
 पंचदशग्रासान् भुक्तेकापचयेनापरपक्षमश्नोयात् अमावास्या-  
 यामुषोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षं, विपरीतमेकपाम् । एषचांद्रायणो-  
 मासो मासमेतमाप्त्वा विषापो विषाप्मा सर्वमेनो हंति  
 द्वितीयमाप्त्वा दश पूर्वान्दशापरान्नात्मानं चैकविंशं पंक्तींश्च  
 पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चंद्रमसः सलोकतामाप्नोत्याप्नोति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

### एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋक्यं भर्जेरन् निवृत्ते रजसि मातुर्जिविति  
 वेच्छति । सर्व्वं वा पूर्व्वजस्येतरान्विभृयात् पितृवत् । विभागे  
 तु धर्मवृद्धिं विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मिथुनमुभयतोदद्युक्तो  
 वृषो गोवृषः काणखोरकूटखंजा मध्यमस्थानेकांश्चेत् अविधा-  
 न्यायसी ग्रहमनोयुक्तं चतुष्पदां चैकैकं यवीयसः समं चेतत्  
 सर्व्वं द्यंशी वा पूर्व्वजः स्यात् । एकैकमितरेषाम् एकैकं वा  
 काम्यं, पूर्व्वः पूर्व्वो लभेत दशतः पशूनामेकशफो द्विपदानां  
 वृषभोधिको ज्येष्ठस्य ऋषभषोडशा ज्येष्ठिने यस्य समं वा  
 ज्येष्ठिने । येन यवीयसां प्रतिमातृ वा स्ववर्गे भागविशेषं  
 पितोत्सृजेत् । पुत्रिकामनपत्योभिं प्रजापतिं चेष्टास्मदर्थमथ

त्यमिति संवाद्य अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकेत्येकेषां तत्संशया-  
 न्नोपपच्छेदभ्रातृकां पिंडगोत्रपिसंबंधा ऋक्थं भजेरन् ।  
 स्त्री चानपत्यस्य बीजं वा लिप्सेत् । देवरवत्यामन्यतो-  
 जातमभागं स्त्रीधनं दुहितृणामप्रदानामप्रतिष्ठितानां च  
 भगिनीशुल्कं सोदराणामूर्द्धं मातुः पूर्वं चैके संसृष्टविभागः  
 प्रेतानां ज्येष्ठस्य संसृष्टिनि प्रेतेऽसंसृष्टिऋक्थभाक् । विभक्तजः  
 पित्र्यमेव स्वयमर्जितमवैद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात् अवैद्याः  
 समं विभजेरन् पुत्राः औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नाप-  
 विद्धा ऋक्थभाजः कानीनसहोदपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयंदत्त-  
 क्रीता गोत्रभाजः । चतुर्थांशिनश्चौरसाद्यभावे ब्राह्मणस्य ॥  
 राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यांशभाक् । ज्येष्ठांशहि-  
 नमन्यत् राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणीपुत्रेण  
 क्षत्रियाच्चेत्शूद्रापुत्रोप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेल्लभेत वृत्तिमूलमंतेवा-  
 सिविविना सवर्णापुत्रोप्यन्यायवृत्तो न लभेतैकेषां ब्राह्मणस्य  
 श्रोत्रिया अनपत्यस्य ऋक्थं भजेरन् । राजेतरेषां जडक्लीबी  
 भर्तव्यौ । अपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत् प्रतिलोमासूद-  
 कयोगक्षेमकृतात्रेष्वविभागः स्त्रीषु च संयुक्तासु अनाज्ञाते  
 दशावरैः शिष्टैरुहवाद्भिः अलुब्धैः प्रशस्तं कार्यं चत्वारश्चतुर्णां  
 पारगा वेदानां प्रागुत्तमास्त्रय आश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रय  
 एतान् दशावरान् परिषदिति आचक्षते । असंभवे चैतेषाम्



( ४१६ ) अष्टादशस्मृतयः ।

श्रोत्रियो वेदवित् शिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह । यतोयमप्रभावो  
भूतानां हिसानुग्रहयोगेषु धर्मिमणं विशेषेण स्वर्गलोकं धर्म-  
विदामोतिज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो धर्मः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति गौतमस्मृतिः समाप्ता ॥ १६ ॥



॥ श्रीः ॥

## अथ शातातपस्मृतिः १७.



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शातातपस्मृतिप्रारंभः ॥

प्रायश्चित्तविहीनानां महापातकिनां नृणाम् ॥  
नरकान्ते भवेज्जन्म चिह्नोक्तिशरीरिणाम् ॥ १ ॥  
प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिह्नं तत्पापसूचितम् ॥  
प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्तापवतां पुनः ॥ २ ॥  
महापातकजं चिह्नं सप्त जन्मानि जायते ॥  
उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम् ॥ ३ ॥  
दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चोपक्रमैः शमम् ॥  
जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥ ४ ॥  
पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये ॥  
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥ ५ ॥  
कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमहा ग्रहणी तथा ॥  
मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतिसारभगन्दरौ ॥ ६ ॥  
दुष्टघ्नं गंडमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ॥  
इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥ ७ ॥

जलोदरं यकृच्छीहाशूलरोगव्रणानि च ॥

श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलप्रहाः ॥ ८ ॥

रक्तार्बुदविसर्प्याद्या उपपापोद्भवा गदाः ॥

दंडापतानकश्चित्रवपुःकम्पविचर्चिकाः ॥ ९ ॥

वल्मीकपुंडरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः ॥

अशंआद्या नृणां रोगा आतिपापाद्भवन्ति हि ॥ १० ॥

अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते वर्णसंकरात् ॥

उच्यन्ते च निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात् ॥ ११ ॥

महापापेषु सर्व्व स्यात्तदर्धमुपपातके ॥

दद्यात् पापेषु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिवलाचलम् ॥ १२ ॥

अथ साधारणं तेषु गोदानादिषु कथ्यते ॥

गोदाने वत्सपुक्ता गौः सुशीला च पयस्विनी ॥ १३ ॥

वृषदाने शुभोऽनद्वाञ्छुक्त्वावरसकांचनः ॥

निवर्तनानि भूदाने दश दद्याद्विजातये ॥ १४ ॥

दशहस्तेन दंडेन त्रिंशदण्डं निवर्तनम् ॥

दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ १५ ॥

सुवर्णशतानिष्कं तु तदर्द्धार्द्धममाणतः ॥

अश्वदाने मृदुश्लक्ष्णमश्वं सोपस्करं दिशेत् ॥ १६ ॥

महिषीं माहिषे दाने दद्यात्स्वर्णापुधान्विताम् ॥

दद्याद्भजं महादाने सुवर्णफलसंयुतम् ॥ १७ ॥

लक्षसंख्याहणं पुष्पं प्रदद्यादेवतार्चने ॥  
दद्याद्विजसहस्राय मिष्टान्नं द्विजभोजने ॥ १८ ॥  
रुद्रं जपेच्छुक्लपुष्पैः पूजयित्वा च त्र्यम्बकम् ॥  
एकादश जपेद्बुधान्दशांशं गुग्गुलैर्घृतैः ॥ १९ ॥  
हुत्वाभिषेचनं कुर्यान्मंत्रैर्वरुणदेवतैः ॥  
शान्तिके गणशान्तिश्च ग्रहशान्तिकपूर्वकम् ॥ २० ॥  
धान्यदाने शुभं धान्यं खारीषष्टिमितं स्मृतम् ॥  
वस्त्रदाने पट्टवस्त्रद्वयं कर्पूरसंयुतम् ॥ २१ ॥  
दशपंचाष्टचतुर उपवेश्य द्विजान् शुभान् ॥  
विधाय वैष्णवीं पूजां संकल्प्य निजकाम्यया ॥ २२ ॥  
धेनुं दद्याद्विजातिभ्यो दक्षिणं चापि शक्तितः ॥  
अलंकृत्य यथाशक्ति वस्त्रालंकरणैर्द्विजान् ॥ २३ ॥  
याचेद्दंडप्रमाणेन प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥  
तेषामनुज्ञया कृत्वा प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ २४ ॥  
पुनस्तान्परिपूर्णार्थानर्चयेद्विधिबद्धिजान् ॥  
संतुष्टा ब्राह्मणा दद्युरनुज्ञां व्रतकारिणे ॥ २५ ॥  
जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥  
सर्वं भवति निश्छिद्रं यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥ २६ ॥  
ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥  
सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥ २७ ॥

उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थफलं तपः ॥  
 विप्रैस्सम्पादितं सर्वं सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥ २८ ॥  
 सम्पन्नमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥  
 प्रणम्य शिरसा धार्यमभिष्टोमफलं लभेत् ॥ २९ ॥  
 ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम् ॥  
 तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ३० ॥  
 तेभ्योऽनुज्ञामभिप्राप्य प्रगृह्य च तथाशिषः ॥  
 भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या भुञ्जीत सह बंधुभिः ॥ ३१ ॥

इति श्रीशांतातपीये कर्मविपाके साधारणविधिः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

### द्वितीयोऽध्यायः २.

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पांडकुष्ठी प्रजायते ॥  
 प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत स तत्पातकशान्तये ॥ १ ॥  
 चत्वारः कलशाः कार्प्याः पंचरत्नसमन्विताः ॥  
 पंचपल्लवसंयुक्ताः सितवस्त्रेण संयुताः ॥ २ ॥  
 अश्वस्थानादिमृद्युक्तास्तथिर्दक्षुपरिताः ॥  
 कषायपंचकोपेता नानाविधफलान्विताः ॥ ३ ॥  
 सर्वोपधिसमायुक्ताः स्थाप्याः प्रतिदिशं द्विजैः ॥  
 रौप्यमष्टदलं पद्मं मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥ ४ ॥

तस्योपरि न्यसेद्देवं ब्रह्माणं च चतुर्भुखम् ॥  
 पलाद्धार्द्धप्रमाणेन सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥ ५ ॥  
 अर्चैत्पुरुषमूक्तेन त्रिकालं प्रतिवासरम् ॥  
 यजमानः शुभैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैर्यथाविधि ॥ ६ ॥  
 पूर्वार्द्रिकुम्भेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः ॥  
 पठेयुः स्वस्ववेदांस्ते ऋग्वेदप्रभृतीञ्छनैः ॥ ७ ॥  
 दशांशेन ततो होमो ग्रहशांतिपुरःसरम् ॥  
 मध्यकुम्भे विधातव्यो घृताक्तैस्तिलहेमभिः ॥ ८ ॥  
 द्वादशाहमिदं कर्म समाप्य द्विजपुंगवः ॥  
 तत्र पीठे यजमानमभिर्षिंचेद्यथाविधि ॥ ९ ॥  
 ततो दद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम् ॥  
 ब्राह्मणेभ्यस्तथा देयमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥ १० ॥  
 आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥  
 प्रीताः सर्वे व्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥ ११ ॥  
 इत्युदीर्य मुहुर्भक्त्या तमाचार्य क्षमापयेत् ॥  
 एवं विधाने विहिते श्वेतकुष्ठी विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥  
 कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः ॥  
 स्थापयेद्ददमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्यसंयुतम् ॥ १३ ॥  
 रक्तचंदनलिप्तांगं रक्तपुष्पांबरान्वितम् ॥  
 रक्तकुम्भन्तु तं कृत्वा स्थापयेद्दक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥

आपयेदम्पतीः पश्चान्मंत्रैर्वरुणदेवतैः ॥  
 आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालंकरणानि च ॥ ३५ ॥  
 गोत्रहा पुरुषः कुष्ठी निर्वशश्चोपजायते ॥  
 स च पापविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतं चरेत् ॥ ३६ ॥  
 व्रतान्ते मेदिनीं दत्त्वा शृणुयादथ भारतम् ॥  
 स्त्रोहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थाम्रोपयेदश ॥ ३७ ॥  
 दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥  
 राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः ॥ ३८ ॥  
 गोभूहिरण्यामिष्टान्नजलवस्त्रप्रदानतः ॥  
 घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ ३९ ॥  
 इत्यादिना क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥  
 रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः ॥ ४० ॥  
 प्राजापत्यानि चत्वारि सप्तधान्यानि चोत्सृजेत् ॥  
 दंडापतानकपुतः शूद्रहन्ता भवेन्नरः ॥ ४१ ॥  
 प्राजापत्यं सकृच्चैवं दद्याद्धेनुं सदाक्षिणाम् ॥  
 कारूणां च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते ॥ ४२ ॥  
 तेन तत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥  
 सर्वकार्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः ॥ ४३ ॥  
 प्रासादं कारयित्वा तु गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥  
 गणनाथस्य मन्त्रं तु मन्त्री लक्षमितं जपेत् ॥ ४४ ॥

कुलित्यशकैः पूपैश्च गणशान्तिपुरस्सरम् ॥  
 उष्ट्रे विनिहते चैव जायते विकृतस्वरः ॥ ४५ ॥  
 स तत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात्कर्पूरकं फलम् ॥  
 अश्वे विनिहते चैव वक्रतुण्डः प्रजायते ॥ ४६ ॥  
 शतं पलानि दद्याच्च चन्दनान्यघनुत्तये ॥  
 महिषीघातने चैव कृष्णगुल्मः प्रजायते ॥ ४७ ॥  
 खरे विनिहते चैव खररोमा प्रजायते ॥  
 निष्कत्रयस्य प्रकृतिं संप्रदद्याद्विरण्मयीम् ॥ ४८ ॥  
 तरक्षौ निहते चैव जायते केकरेक्षणः ॥  
 दद्याद्रत्नमयीं धेतुं स तत्पातकशान्तये ॥ ४९ ॥  
 शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः ॥  
 स दद्यात्तु विशुद्ध्यर्थं घृतकुंभं सदक्षिणम् ॥ ५० ॥  
 हरिणे निहते खंजः शृगाले तु विपादकः ॥  
 अश्वस्तेन प्रदातव्यः सौवर्णपलनिर्मितः ॥ ५१ ॥  
 अजाभिघातने चैव अधिकांगः प्रजायते ॥  
 अजा तेन प्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥ ५२ ॥  
 उरश्चे निहते चैव पांडुरोगः प्रजायते ॥  
 कस्तूरिकापलं दद्याद्ब्राह्मणाय विशुद्ध्ये ॥ ५३ ॥  
 मार्जारं निहते चैव पीतपाणिः प्रजायते ॥  
 पारावतं ससौवर्णं प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥ ५४ ॥



स्नापयेद्दम्पतीः पश्चान्मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ॥

आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालंकरणानि च ॥ ३५ ॥

गोत्रहा पुरुषः कुष्ठो निर्वशश्चोपजायते ॥

स च पापविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतं चरेत् ॥ ३६ ॥

व्रतान्ते मेदिनीं दत्त्वा शृणुयादथ भारतम् ॥

स्त्रीहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थाघोपयेद्दश ॥ ३७ ॥

दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः ॥ ३८ ॥

गोभूहिरण्यमिष्टान्नजलवस्त्रप्रदानतः ॥

घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ ३९ ॥

इत्यादिना क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥

रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः ॥ ४० ॥

प्राजापत्यानि चत्वारि सप्तधान्यानि चोत्सृजेत् ॥

दंडापतानकण्टः शूद्रहन्ता भवेन्नरः ॥ ४१ ॥

प्राजापत्यं सकृच्चैव दद्याद्धेनुं सदक्षिणाम् ॥

कारुणां च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते ॥ ४२ ॥

तेन तत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥

सर्वकार्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः ॥ ४३ ॥

प्रासादं कारपित्वा तु गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥

गणनाथस्य मन्त्रं तु मन्त्री लक्षमितं जपेत् ॥ ४४ ॥

कुलित्यशकैः पूषेश्च गणशान्तिपुरस्सरम् ॥  
 उष्ट्रे विनिहते चैव जायते विकृतस्वरः ॥ ४५ ॥  
 स तत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात्कर्पूरकं फलम् ॥  
 अश्वे विनिहते चैव वक्रतुण्डः प्रजायते ॥ ४६ ॥  
 शतं पलानि दद्याच्च चन्दनान्यघृतुत्तये ॥  
 महिषीघातने चैव कृष्णगुल्मः प्रजायते ॥ ४७ ॥  
 खरे विनिहते चैव खररोमा प्रजायते ॥  
 निष्कत्रयस्य प्रकृतिं संप्रदद्याद्विरण्मयीम् ॥ ४८ ॥  
 तरक्षौ निहते चैव जायते केकरेक्षणः ॥  
 दद्याद्रत्नमयीं धेनुं स तत्पातकशान्तये ॥ ४९ ॥  
 शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः ॥  
 स दद्यात्तु विशुद्ध्यर्थं घृतकुंभं सदाक्षिणम् ॥ ५० ॥  
 हरिणे निहते खंजः शृगाले तु विपादकः ॥  
 अश्वस्तेन प्रदातव्यः सौवर्णपलनिर्मितः ॥ ५१ ॥  
 अजाभिघातने चैव अधिकांगः प्रजायते ॥  
 अजा तेन प्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥ ५२ ॥  
 उरश्चे निहते चैव पांडुरोगः प्रजायते ॥  
 फस्तूरिकापलं दद्याद्वाह्मणाय विशुद्ध्ये ॥ ५३ ॥  
 माजरी निहते चैव पीतपाणिः प्रजायते ॥  
 पारावतं ससौवर्णं प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥ ५४ ॥

भुक्त्वा चास्पृश्य संस्पृष्टं जायते कृमिलोदरः ॥  
 त्रिरात्रं समुपोष्याथ स तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥  
 परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते ॥  
 लक्षहोमं स कुर्वति प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ ७ ॥  
 मन्दोदरामिर्भवति सति द्रव्ये कदन्नदः ॥  
 प्राजापत्यत्रयं कुर्याद्भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ ८ ॥  
 विषदः स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दशपयस्विनीः ॥  
 मार्गहा पादरोगी स्यात्सोऽश्वदानं समाचरेत् ॥ ९ ॥  
 पिशुनो नरकस्यांते जायते श्वासकासवान् ॥  
 घृतं तेन प्रदातव्यं सहस्रपलसम्मितम् ॥ १० ॥  
 धूर्तोऽपस्माररोगी स्यात्स तत्पापविशुद्धये ॥  
 ब्रह्मकूर्चमयीं धेनुं दद्याद्वाश्च सदक्षिणाः ॥ ११ ॥  
 शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमोचने ॥  
 सोऽन्नदानं प्रकुर्वति तथा रुद्रं जपेन्नरः ॥ १२ ॥  
 दावामिदायकश्चैव रक्तातीसारवान्भवेत् ॥  
 तेनोदपानं कर्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः ॥ १३ ॥  
 सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः ॥  
 गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥ १४ ॥  
 मासं सुरार्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु ॥  
 प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥ १५ ॥

औदुम्बरी ताम्रचौरो नरकान्ते प्रजायते ॥  
 प्राजापत्यं स कृत्वात्र ताम्रं पलशतं दिशेत् ॥ २ ॥  
 कांस्यहारी च भवति पुंडरीकसमन्वितः ॥  
 कांस्यं पलशतं दद्यादलंकृत्य द्विजातये ॥ ३ ॥,  
 रीतिहृत्पिंगलाक्षः स्यादुपोप्य हरिवासरम् ॥  
 रीतिं पलशतं दद्यादलंकृत्य द्विजं शुभम् ॥ ४ ॥  
 मुक्ताहारी च पुरुषो जायते पिंगमूर्ध्वजः ॥  
 मुक्ताफलशतं दद्यादुपोप्य स विधानतः ॥ ५ ॥  
 त्रपुहारी च पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥  
 उपोप्य दिवसं सोऽपि दद्यात्पलशतं त्रपु ॥ ६ ॥  
 सीसहारी च पुरुषो जायते शीर्षरोगवान् ॥  
 उपोप्य दिवसं दद्याद्घृतधेनुं विधानतः ॥ ७ ॥  
 दुग्धहारी च पुरुषो जायते बहुमूत्रकः ॥  
 स दद्याद्दुग्धधेनुं च ब्राह्मणाय यथामविधि ॥ ८ ॥  
 दधिचौर्येण पुरुषो जायते मदवान्यतः ॥  
 दधिधेनुः प्रदातव्या तेन विप्राय शुद्धये ॥ ९ ॥  
 मधुचोरस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥  
 स दद्यान्मधुधेनुं च समुपोप्य द्विजातये ॥ १० ॥  
 इक्षोर्विकारहारी च भवेदुदरगुल्मवान् ॥  
 गुडधेनुः प्रदातव्या तेन तद्दोषशांतये ॥ ११ ॥

विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ॥  
 न्यायेतिहासं दद्यात्स ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ॥ २२ ॥  
 वस्त्रहारी भवेत्कुष्ठो संप्रदद्यात्प्रजापतिम् ॥  
 हेमनिष्कमितं चैव वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥ २३ ॥  
 ऊर्णाहारी लोमशः स्यात्स दद्यात्कंबलान्वितम् ॥  
 स्वर्णनिष्कमितं हेम वस्त्रं दद्याद्विजातये ॥ २४ ॥  
 पट्सूत्रस्य हरणान्त्रिलोमा जायते नरः ॥  
 तेन धेनुः प्रदातव्या विशुद्धचर्यं द्विजन्मने ॥ २५ ॥  
 औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते ॥  
 सूर्यायाध्व्यः प्रदातव्यो मासं देयं च कांचनम् ॥ २६ ॥  
 रक्तवस्त्रप्रवालादिहारी स्याद्रक्तवातवान् ॥  
 सवस्त्रां महिषीं दद्यान्मणिरागसमान्विताम् ॥ २७ ॥  
 विप्ररत्नापहारी चाप्यनपत्यः प्रजायते ॥  
 तेन कार्य्यं विशुद्धचर्यं महारुद्रजपादिकम् ॥ २८ ॥  
 मृतवत्सोदितः सर्वो विधिरत्र विधीयते ॥  
 दशांशहोमः कर्तव्यो पलाशेन यथाविधि ॥ २९ ॥  
 देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः ॥  
 ज्वरो महाज्वरश्चैवं रौद्रो वैष्णव एव च ॥ ३० ॥  
 ज्वरे रौद्रं जपेत्कर्णे महारुद्रं महाज्वरे ॥  
 अतिरौद्रं जपेद्दौदे वैष्णवे तद्वयं जपेत् ॥ ३१ ॥

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहणीयुतः ॥

तेनात्रोदकवस्त्राणि हेम देयं च शक्तितः ॥ ३२ ॥

इति शाक्तातपीये कर्मविपाके स्तेयप्रायश्चित्त नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

मातृगामी भवेद्यस्तु लिङ्गं तस्य विनश्यति ॥

चांडालीगमने चैव हीनकोशः प्रजायते ॥ १ ॥

तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं कुम्भमुत्तरतो न्यसेत् ॥

कृष्णवस्त्रसमाकृतं कृष्णमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥

तस्योपरि न्यसेद्देवं कांस्यपात्रे धनेश्वरम् ॥

सुवर्णनिष्कपटकेन निर्मितं नरवाहनम् ॥ ३ ॥

यजेत्पुरुषसूक्तेन धनदं विश्वरूपिणम् ॥

अथर्ववेदविद्विप्रो ह्याथर्वणं समाचरेत् ॥ ४ ॥

सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥

दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ ५ ॥

निधीनामधिपो देवः शंकरस्य प्रियस्सखा ॥

सौम्याशाधिपतिः श्रीमान्मम पापं व्यपोहतु ॥ ६ ॥

इमं मंत्रं समुच्चार्य्य आचार्याय यथाविधि ॥

दद्याद्देवं हीनकोशे लिङ्गनाशे विशुद्ध्ये ॥ ७ ॥

गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्रः प्रजायते ॥  
 तेनापि निष्कृतिः कार्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥८॥  
 स्थापयेत्कुंभमेकं तु पश्चिमायां शुभे दिने ॥  
 नीलवस्त्रसमाच्छन्नं नीलमाल्यविभूषितम् ॥ ९ ॥  
 तस्योपरि न्यसेद्देवं ताम्रपात्रे प्रचेतसम् ॥  
 सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं यादसांपतिम् ॥ १० ॥  
 यजेत्पुरुषसूक्तेन वरुणं विश्वरूपिणम् ॥  
 सामविद्वाह्यणस्तत्र सामवेदं समाचरेत् ॥ ११ ॥  
 सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥  
 दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ह्रुवन् ॥ १२ ॥  
 यादसामधिपो देवो विश्वेषामपि पावनः ॥  
 संसाराब्धौ कर्णधारो वरुणः पावनोऽस्तु मे ॥ १३ ॥  
 इमं मन्त्रं समुदच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥  
 दद्याद्देवमलंकृत्य मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ १४ ॥  
 स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठं प्रजायते ॥  
 भगिनीगमने चैव पीतकुष्ठं प्रजायते ॥ १५ ॥  
 तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं पूर्वतः कलशं न्यसेत् ॥  
 पीतवस्त्रसमाच्छन्नं पीतमाल्यविभूषितम् ॥ १६ ॥  
 तस्योपरि न्यसेत्स्वर्णपात्रे देवं सुरेश्वरम् ॥

सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं वज्रधारिणम् ॥ १७ ॥

यजेत्पुरुषसूक्तेन वासवं विश्वरूपिणम् ॥

यजुर्वेदं तत्र साम ऋग्वेदं च समाचरेत् ॥ १८ ॥

सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा सुवर्णदशकेन तु ॥

दद्याद्विभाय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १९ ॥

देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः ॥

शतयज्ञः सहस्राक्षः पापं मम निहृन्ततु ॥ २० ॥

इमं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥

दद्याद्देवं सहस्राक्षं स पापस्यापनुत्तये ॥ २१ ॥

भ्रातृभार्याभिगमनाद्गलकुष्ठं प्रजायते ॥

स्थवधूगमने चैव कृष्णकुष्ठं प्रजायत ॥ २२ ॥

तेन कार्यं विशुद्ध्यर्थं प्रागुक्तस्यार्द्धमेव हि ॥

दशांशहोमः सर्वत्र घृताक्तैः क्रियते तिलैः ॥ २३ ॥

यदग्न्याभिगमनाज्जायते ध्रुवमंडलम् ॥

कृत्वा लोहमयीं धेनुं पिलपाष्टिप्रमाणतः ॥ २४ ॥

कार्पासभांडसंपुक्तां कांस्यदोहां सवत्सिकाम् ॥

दद्याद्विभाय विधिवदिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥

॥ सुरभी वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु ॥ २५ ॥

तपस्विनीसंगमने जायते चाश्मरी गदः ॥

स तु पापविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २६ ॥



दद्याद्विप्राय विदुषे मधुधेनुं यथोदिताम् ॥  
 तिलद्रोणशतं चैव हिरण्येन समन्वितम् ॥ २७ ॥  
 पितृष्वस्रभिगमनाक्षिणांशव्रणी भवेत् ॥  
 तेनापि निष्कृतिः कार्या अजादानेन शक्तितः ॥ २८ ॥  
 मातुलान्यां तु गमने पृष्ठकुब्जः प्रजायते ॥  
 कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २९ ॥  
 मातृष्वस्रभिगमने धामांगे व्रणवान्भवेत् ॥  
 तेनापि निष्कृतिः कार्या सम्यग्दासप्रदानतः ॥ ३० ॥  
 मृतभार्याभिगमने मृतभार्यः प्रजायते ॥  
 तत्पातकविशुद्ध्यर्थं द्विजमेकं विवाहयेत् ॥ ३१ ॥  
 सगोत्रस्त्रीप्रसंगेन जायते च भगन्दरः ॥  
 तेनापि निष्कृतिः कार्या महिषीदानयत्रतः ॥ ३२ ॥  
 तपस्विनीप्रसंगेन प्रमेही जायते नरः ॥  
 मासं रुद्रजपः कार्यों दद्याच्छक्त्या च कांचनम् ॥ ३३ ॥  
 दीक्षितस्त्रीप्रसंगेन जायते दुष्टरक्तदृक् ॥  
 स पातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३४ ॥  
 स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी ॥  
 तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३५ ॥  
 पशुयोनीं च गमने मूत्राघातः प्रजायते ॥  
 तिलपात्रद्वयं चैव दद्यादात्मविशुद्ध्ये ॥ ३६ ॥

अश्वयोनौ च गमनाद्बुद्धस्तंभः प्रजायते ॥  
 सहस्रकमलज्ञानं मासं कुर्याच्छिवस्य च ॥ ३७ ॥  
 एते दोषा नराणां स्युर्नरकांति न संशयः ॥  
 स्त्रीणामपि भवंत्येते तत्तत्पुरुषसंगमात् ॥ ३८ ॥  
 इति श्रीशावातपीये कर्मविपाकेऽगम्यागमनप्राथम्यं  
 नाम पचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

अश्वशूकरभृङ्ग्यद्रिद्रुमादिशकटेन च ॥  
 भृग्वामिदारुशस्त्राश्मविषोदंधनजैर्मृताः ॥ १ ॥  
 व्याघ्राहिगजभूपालचोखैरिवृकाहताः ॥  
 काष्ठशल्पमृता ये च शौचसंस्कारवर्जिताः ॥ २ ॥  
 विषूचिकान्नकवलदवातीसारतो मृताः ॥  
 डाकिन्यादिग्रहेर्गस्ता विद्युत्पातहताश्च ये ॥ ३ ॥  
 अस्पृश्या अपवित्राश्च पतिताः पुत्रवर्जिताः ॥  
 पंचत्रिंशत्प्रकारैश्च नाप्नुवंति गतिं मृताः ॥ ४ ॥  
 पित्राद्याः पिंडभाजः स्युस्त्रयो लोपभुजस्तथा ॥  
 ततो नांदीमुखाः प्रोक्तास्त्रयोऽप्यशुमुखास्त्रयः ॥ ५ ॥  
 द्वादशैते पितृगणास्तर्पिताः सन्ततिप्रदाः ॥  
 गतिहीनाः सुतादीनां सन्ततिं नाशयन्ति ते ॥ ६ ॥

दश व्याघ्रादिनिहता गर्भं विघ्नन्त्यमी क्रमात् ॥  
 द्वादशास्त्रादिनिहता आकर्षन्ति च बालकम् ॥ ७ ॥  
 विषादिनिहता घ्नन्ति दशसु द्वादशस्वपि ॥  
 वर्षेकबालकं कुर्यादनपत्योऽनपत्यताम् ॥ ८ ॥  
 व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः कुमारीगमनेन च ॥  
 विपदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुष्टकृत् ॥ ९ ॥  
 राज्ञा राजकुमारघ्नश्चैरेण पशुर्हिसकः ॥  
 वैरिणा मित्रभेदी च वकवृत्तिवृक्केण तु ॥ १० ॥  
 गुरुघाती च शय्यायां मत्सरी शौचवर्जितः ॥  
 द्रोही संस्काररहितः शुना निक्षेपहारकः ॥ ११ ॥  
 नरो विहन्यतेऽरण्ये शूकरेण च पाशिकः ॥  
 कृमिभिः कृत्तवासाश्च कृमिणा च निकृन्तनः ॥ १२ ॥  
 शृंगिणा शंकरद्रोही शकटेन च सूचकः ॥  
 भृगुणा मेदिनीचौरौ वक्त्रिणा यज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥  
 दवेन दक्षिणाचौरः शस्त्रेण श्रुतिनिन्दकः ॥  
 अश्मना द्विजनिन्दाकृद्विषेण कुमतिप्रदः ॥ १४ ॥  
 लङ्घनेन हिंस्रः स्यात्सेतुभेदी जलेन तु ॥  
 द्रुमेण राजदन्तिहृदतिसारेण लोहहत् ॥ १५ ॥  
 डाकिन्यार्घ्यश्च म्रियते स दर्पकार्यकारकः ॥  
 अनध्यायेऽप्यधीयानो म्रियते विद्युता तथा ॥ १६ ॥

( ४३८ ) . अष्टादशस्मृतयः ।

अस्पृश्यस्पर्शसंगी च घान्तमाश्रित्य शास्त्रहृत ॥  
पतितो मदविक्रेताऽनपत्यो द्विजवस्त्रहृत ॥ १७ ॥  
अथ तेषां क्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥  
कारयेन्निष्कमात्रं तु पुरुषं प्रेतरूपिणम् ॥ १८ ॥  
चतुर्भुजं दंडहस्तं महिषासनसंस्थितम् ॥  
षिष्टैः कृष्णतिलैः कुर्यात्पिंडं प्रस्थप्रमाणतः ॥ १९ ॥  
मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुंडलसंयुतम् ॥  
अकालमूलं कलशं पंचपल्लवसंयुतम् ॥ २० ॥  
कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वोपधिसमन्वितम् ॥  
तस्योपरि न्यसेद्देवं पात्रं धान्यफलैर्युतम् ॥ २१ ॥  
सप्तधान्यं तु सफलं तत्र तत् सफलं न्यसेत् ॥  
कुंभोपरि च विन्यस्य पूजयेत्प्रेतरूपिणम् ॥ २२ ॥  
कुर्यात्पुरुषसुक्तेन प्रत्यहं दुग्धतर्पणम् ॥  
षडंगं च जपेद्दुष्टं कलशे तत्र वेदवित् ॥ २३ ॥  
यमसुक्तेन कुर्वीत यमपूजादिकं तथा ॥  
गायत्र्याश्चैव कर्तव्यो जपः स्वात्मविशुद्धये ॥ २४ ॥  
गृहशान्तिकपूर्वं च दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥  
अज्ञातनामगोत्राय प्रेताय सतिलोदकम् ॥ २५ ॥  
प्रदद्यात्पितृतीर्थेन पिंडं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
इमं तिलमयं पिंडं मधुसर्पिःसमन्वितम् ॥ २६ ॥

ददामि तस्मै प्रेताय यः पीडां कुरुते मम ॥  
 सजलान्कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान् ॥ २७ ॥  
 द्वादश प्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकं च विष्णवे ॥  
 तप्तोऽभिषिंचेदाचार्यो दम्पती कलशोदकैः ॥ २८ ॥  
 शुचिर्वरायुधधरो मंत्रैर्वरुणदेवतैः ॥  
 यजमानस्ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणान् ॥ २९ ॥  
 ततो नारायणबलिः कर्तव्यः शास्त्रनिश्चयात् ॥  
 एष साधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ॥ ३० ॥  
 विशेषस्तु पुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनिहतेष्वपि ॥  
 व्याघ्रेण निहते प्रेते परकन्यां विवाहयेत् ॥ ३१ ॥  
 सर्पदंशे नागबलिर्देयः सर्वेषु कांचनम् ॥  
 चतुर्निष्कमितं हेम गजं दद्याद्गर्जहते ॥ ३२ ॥  
 राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्यमयम् ॥  
 चोरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् ॥ ३३ ॥  
 वृकेण निहते दद्याद्यथाशक्तिं च कांचनम् ॥  
 शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता ॥ ३४ ॥  
 निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥  
 शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कस्वर्णजं हरिम् ॥ ३५ ॥  
 संस्कारहीने च मृते कुमारं च विवाहयेत् ॥  
 शुना हते च निक्षेपं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ ३६ ॥

शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् ॥  
 कृमिभिश्च मृते दद्याद्रोधूमात्रं द्विजातये ॥ ३७ ॥  
 शृंगिणां च हते दद्याद् वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥  
 शकटेन मृते दद्यादश्वं सोपस्कुरान्वितम् ॥ ३८ ॥  
 भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥  
 अग्निना निहते दद्यादुपानहं स्वशक्तिः ॥ ३९ ॥  
 दवेन निहते चैव कर्तव्या सदने सभा ॥  
 शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् ॥ ४० ॥  
 अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पर्यास्विनीम् ॥  
 विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं क्षेत्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥  
 उद्वधनमृते चापि प्रदद्याद्गां पर्यास्विनीम् ॥  
 मृते जलेन वरुणं हैमं दद्यात्त्रिनिष्ककम् ॥ ४२ ॥  
 वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं स्वर्णसंयुतम् ॥  
 अतिसारमृते लक्षं सावित्र्याः संयतो जपेत् ॥ ४३ ॥  
 डाकिन्यादिमृते चैव जपेद्बुद्धं यथोचितम् ॥  
 विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ॥ ४४ ॥  
 अस्पर्शं च मृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥  
 सच्छास्त्रपुस्तकं दद्याद्भान्तमाश्रित्य संस्थिते ॥ ४५ ॥  
 पातित्येन मृते कुर्यात्प्राजापत्यानि षोडश ॥  
 मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवर्ति चरेत् ॥ ४६ ॥

निष्कत्रयमितं स्वर्णं दद्यादश्वं हयाहते ॥

कपिना निहते दद्यात् कपिं कनकनिर्मितम् ॥ ४७ ॥

विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

तिलधेनुः प्रदातव्या कंठेऽन्नकवले मृते ॥ ४८ ॥

केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समाचरेत् ॥

एवं कृते विधानेन विदध्यादौर्द्ध्वदैहिकम् ॥ ४९ ॥

ततः प्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥

दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आयुरारोग्यसंपदः ॥ ५० ॥

इति शातातपप्रोक्तो विपाकः कर्मणामयम् ॥

शिष्याय शरभंगाय विनयात्परिपृच्छते ॥ ५१ ॥

ते शातातर्पाये कर्मविपाके अगतिप्रायश्चित्तं नाम पष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इति शातातपस्मृतिः समाप्ता ॥ १७ ॥



शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् ॥  
 कृमिभिश्च मृते दद्याद्गोधूमात्रं द्विजातये ॥ ३७ ॥  
 शृंगिणां च हते दद्याद् वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥  
 शकटेन मृते दद्यादश्वं सोपस्कुरान्वितम् ॥ ३८ ॥  
 भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥  
 अपिना निहते दद्यादुपानहं स्वशक्तितः ॥ ३९ ॥  
 दवेन निहते चैव कर्तव्या सद्ने सभा ॥  
 शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् ॥ ४० ॥  
 अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥  
 विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं क्षेत्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥  
 उद्वंघनमृते चापि प्रदद्याद्गौं पयस्विनीम् ॥  
 मृते जलेन वरुणं हैमं दद्यात्त्रिनिष्ककम् ॥ ४२ ॥  
 वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं स्वर्णसंयुतम् ॥  
 अतिसारमृते लक्षं सावित्र्याः संयतो जपेत् ॥ ४३ ॥  
 डाकिन्यादिमृते चैव जपेद्द्वयथोचितम् ॥  
 विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ॥ ४४ ॥  
 अस्पर्शं च मृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥  
 सञ्छास्त्रपुस्तकं दद्याद्धान्तमाश्रित्य संस्थिते ॥ ४५ ॥  
 पातित्येन मृते कुर्यात्प्राजापत्यानि षोडश ॥  
 मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवार्तिं चरेत् ॥ ४६ ॥



निष्कत्रयमितं स्वर्णं दद्यादश्वं हयाहते ॥

कपिना निहते दद्यात् कपिं कनकनिर्मितम् ॥ ४७ ॥

विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

तिलधेनुः प्रदातव्या कंठेऽन्नकवले मृते ॥ ४८ ॥

केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समाचरेत् ॥

एवं कृते विधानेन विदध्यादौर्द्धदैहिकम् ॥ ४९ ॥

ततः प्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥

दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आयुरारोग्यसंपदः ॥ ५० ॥

इति शातातपप्रोक्तो विपाकः कर्मणामयम् ॥

शिष्याय शरभंगाय विनयात्परिपृच्छते ॥ ५१ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके भगतिप्रायश्चित्तं नाम पष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इति शातातपस्मृतिः समाप्ता ॥ १७ ॥



## अथ वशिष्ठस्मृतिः १८.

प्रथमोऽध्यायः १.



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ वाशिष्ठस्मृतिप्रारंभः ॥ अथातः  
पुरुषानिःश्रेयसार्थं धर्मजिज्ञासा ॥ ज्ञात्वा चानृतिष्ठन्धार्मिकः  
प्रशस्यतमो भवति लोके प्रेत्य च । विहितो धर्मः । तदलाभे  
शिष्टाचारः प्रमाणम् । दक्षिणेन हिमवत उत्तरेण विंध्यस्य  
ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वे प्रत्येतव्याः न ह्यन्ये प्रतिलो-  
मकल्पधर्माः । एतदार्यावर्तमित्याचक्षते । गंगायमुनयो-  
रन्तराप्येके । यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद्ब्रह्मवर्चस-  
मिति । अथापि भाल्लविनो निदाने गाथामुदाहरन्ति ॥

पश्चात्सिधुर्विहरिणीसूर्यस्योदयने पुनः ॥ यावत्कृष्णो-  
भिधावति तावद्ब्रह्मवर्चसम् ॥ त्रैविद्यवृद्धा यं ब्रूयुर्धर्मं धर्म-  
विदो जनाः ॥ पवने पावने चैव सर्वतो नात्र संशयः ॥ इति ॥

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् श्रुत्यभावादब्रवीन्प्रभुः ।

सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनखी श्यावतंदः परिवित्तिः  
परिवेत्ता अग्नेदिधिषृदिधिषूपतिर्वीरहा ब्रह्मघ्न इत्येत एनस्विनः ।  
पञ्चमहापातकान्याचक्षते । गुरुतल्पं सुरापानं भ्रूणहत्या

ब्राह्मणसुवर्णहरणं पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मे वा यौनेन वा ।  
अथाप्युदाहरंति ॥ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥  
याजनाध्यापनाद्यौनादन्नपानासनादपि ॥

अथाप्युदाहरंति । विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे  
स्त्रिह सर्वनाशः ॥ कुलापदेशेन हयोपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां  
स्त्रियमुद्रहंतीति ॥

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वतरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं यं  
ब्रूयात्तं राजा चानुतिष्ठेत् । राजा तु धर्मेणानुशासत् पष्ठं पष्ठं  
धनस्य हरत् । अन्यत्र ब्राह्मणात् । इष्टापूर्तस्य तु पष्ठमंशं  
भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति । ब्राह्मण आपद  
उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा भवतीतीह  
प्रेत्य चाभ्युदयिकमिति ह विज्ञायते ॥

इति श्रीवशिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः । त्रयो वर्णा  
द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः । तेषां मातुरग्रेधिजननं  
द्वितीयं माजीवन्वनं तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य  
उच्यते । वेदप्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ।

( ४४४ ) अष्टादशस्मृतयः ।

अथाप्युदाहरन्ति । द्वयमिह वै पुरुषस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्वं  
नाभेरवाचीनं मन्येत तद्यदुर्ध्वं नाभेस्तेनास्यानौरसी प्रजा  
जायते । यदुपनयति जनन्यां जनयति यत्साधुं करोति ।  
अथ यदवाचीनं नाभेस्तेनास्यौरसी प्रजा जायते तस्माच्छ्रो-  
त्रियमनूचानमपूज्योऽसीति न वदन्तीति हारीताः ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ न ह्यस्य विद्यते कर्म किंचिदामौजीब-  
धनात् ॥ घृत्या शूद्रः समो ज्ञेयो यावद्वेदेन जायते ॥  
अन्यत्रोदककर्म स्वधापितृसंपुक्तेभ्यः ।

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्ठेऽहमस्मि ।  
असूयकायानृजवेऽपताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा  
स्याम् । य आषुणात्यवितथेन कर्मणा बहुदुःखं कुर्वन्नमृतं  
संप्रयच्छन् । तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न दुह्ये-  
त्कृतमच्चनाह । अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा  
मनसा कर्मणा वा । यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न  
भुनक्ति श्रुतं तत् । यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं  
ब्रह्मचर्योपपन्नम् । यस्तेन दुह्येत्कृतमच्च नाह तस्मै मा ब्रूया  
निधिपाय ब्रह्मन्निति ॥ दहत्यभिर्पथा कक्षं ब्रह्म त्वद्दम-  
नादृतम् । न ब्रह्म तस्मै प्रब्रूयाच्छक्यमानमकृतं त इति ॥  
षट् कर्माणि ब्राह्मणस्य अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं  
प्रतिग्रहश्चेति । त्रीणि राजन्यस्याऽध्ययनं यजनं दानं शस्त्रेण

च प्रजापालनं स्वधर्मस्तेन जीवेत् । एतान्येव त्रीणि  
वैश्यस्य कृषिवाणिज्यपाशुपाल्यकुसीदानि च । एतेषां परि-  
चर्या शूद्रस्य अनियता वृत्तिः अनियतकेशवशोः सर्वेषां  
मुक्तशिखावर्जम्, अजीवंतः स्वधर्मेणान्यतरापापीयर्सीं  
वृत्तिमातिष्ठेरन्न तु कदाचिज्ज्याय सीम् । वैश्यजीविकामास्थाय  
पण्येन जीयतोऽश्मलवणमपण्यं पाषाणकौषक्षौमाजिनानि  
च तांतवस्य रक्तं सर्वं च कृतान्नं पुष्पमूलफलानि च  
गंधरसा उदकं च ओषधीनां रसः सोमश्च शर्त्तुं विषं मांसं  
व क्षीरं सविकारमपस्त्रपु जतु सीसं च ।

अथाप्युदाहरांति ॥ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन  
च ॥ त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

ग्राम्यपशूनामेकशफाः केशिनश्च सर्वे चारण्याः पशवो  
वयांसि दांष्ट्रिणश्च । धा न्यानां तिलान्नाहुः ।

अथाप्युदाहरांति । भोजनाभ्यंजनादानाद्यदन्यत्कुरुते  
तिलेः ॥ कृमिभूतः स विष्टायां पितृभिः सह मज्जाति ॥ कामं  
वा स्वयं कृष्योत्पाद्य तिलान्विक्रीणीरन् । (तस्मादाभ्यामनस्यो-  
ताभ्यां प्राक्प्रातराशात्कृषिः स्यात् । निदाधेऽयः प्रयच्छेन्ना-  
तिपीडनलांगलं प्रवीरवसुशेवः सोमपित्सरु ॥ तदुद्वपति-  
गामविम्प्रफर्व्यश्चपीवरीम्प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥ लांगलं प्रवी-

रवद्वोरं मनुष्यवदनलब्धतासुशे कल्याणीह्यस्य नासिकोद्वय-  
तिदूरेपविद्वति सोमपिष्टरुसोमह्यस्यो प्राप्नोति ॥ तत्सहस्रद्वद्व-  
पति गामरिमा अजानश्चनखरखरोष्ट्राणां च शफवांश्च दर्शनीयां  
पीवरीं कल्याणीं प्रथमयुवतीं कथं हि लांगलमुद्रपेदन्यत्र  
धान्यविक्रयात् ॥ )

रसारसैः समतो हानतो वा निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ॥  
तिलतंडुलपक्वान्नं विद्यान्मनुष्याश्च विहिताः परिवतर्कने ।

ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुषान्नं नाद्याताम् ॥ अथाप्युदाहरन्ति ।  
समर्घं धान्यमृद्धत् महर्घं यः प्रयच्छति ॥ स वै वार्धु-  
षिको नाम ब्रह्मवादिषुं गर्हितः ॥ वार्धुषिं ब्रह्महंतारं तुलया  
समतोलयत् ॥ अतिष्ठद्भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिन्यक् पपात ह ॥  
कामं वा परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याद्विगुणं हिरण्यं त्रिगुणं  
धान्यं धान्येनैव रसा व्याख्याताः ।

पुष्पमूलफलानि च तुलाधृतमष्टगुणम् । अथाप्युदाहरन्ति ।  
राजाऽनुमतभावेन द्रव्यशुद्धिं विनाशयेत् ॥ पुनः राजाभिषेकेण  
द्रव्यशुद्धिं च वर्जयेत् ॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पंचकं च शते  
स्मृतम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ वशि-  
ष्ठवचने प्रोक्तां वृद्धिं वार्धुषिके शृणु ॥ पंचमाषास्तु विंशत्या-  
मेवं धर्मो न हीयते ॥

इति वाशिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

अश्रोत्रियाननुवाक्या अनमयः शूद्रधर्माणो भवन्ति नानृ-  
ग्ब्राह्मणो भवति ।

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरति ।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव  
शूद्रत्वमाश गच्छति सान्वयः ॥ १ ॥ न वणिङ् न कुसी-  
दजीवी ये च शूद्रप्रेषणं कुर्वन्ति न स्तेनो न चिकित्सकः ॥  
अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥ तं ग्रामं दण्डये-  
द्वाजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥

चत्वारोपि त्रयो वापि यद्वृष्युर्वेदपारगाः ॥ स धर्म इति  
विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रो-  
पजीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां पर्पस्वं नैव विद्यते ॥

यद्वदंत्यन्यथा भूत्वा मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥

तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वत्कृष्वनुगच्छति ॥

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः ॥ अश्रोत्रियाय  
दत्तानि तृप्तिं न यांति देवताः ॥ यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चैव  
बहुश्रुतः ॥ बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥  
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवाजिते ॥ ज्वलंतमग्निमुत्सृ-  
ज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ यश्च काष्ठमयो हस्ती यश्च चर्ममयो  
मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥

विद्वद्रोज्यानि चान्नानि मूर्खां राष्ट्रेषु भुञ्जते ॥

तदन्नं नाशमायाति महच्चापि भयं भवेत् ॥

अप्रज्ञायमानवित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्धरेत् अधिगन्त्रे  
षष्ठमंशं प्रदाय ब्राह्मणश्चेदधिगच्छेत् षट्कर्मसु वर्तमानो न  
राजा हरेत् ।

आततायिनं हत्वा नात्र त्राणेच्छोः किञ्चित्किल्बिषमाहुः ।  
षड्विधास्त्वाततायिनः । अथाप्सुदाहरन्ति ॥ अभिद्वौ गरदश्चैव  
शस्त्रपाणिर्धनापहः ॥ क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥  
आततायिनमायांतमपि वेदांतपारगम् ॥ जिघांसंतं  
जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ स्वाध्यायिनं कुले जातं  
यो हन्यादाततायिनम् ॥ न तेन धूणहा स स्यान्मन्युस्तं-  
भृशुमृच्छति ॥

त्रिणाचिकेतः पंचामिस्त्रिंशुपर्णवान् चतुर्मेधा वाजसनेयी  
षडंगविद्वद्भक्षदेयानुसंतानश्छंदोगो ज्येष्ठसामगो मंत्रब्राह्मणवित्  
यस्य धर्मानधीते यस्य च पुरुषमातृपितृवंशः श्रोत्रियो  
विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चेति पंक्तिपावनाः । चातुर्विद्यो  
विकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥ आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः  
परिषत्स्याद्दशावरा ॥ उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्स  
आचार्यः । यस्त्वेकदेशं स उपाध्यायश्च वेदांगानि ।



आत्मघ्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीया-  
ताम् ॥ क्षत्रियस्य तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ।

प्राग्बोद्ध्वासीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी चामणिवन्धनात् ।  
अंगुष्ठमूलस्योत्तरतो रेखाब्राह्मे तीर्थे तेन त्रिराचामेदशब्दवत्  
द्भिः प्रमृज्यात् खान्यद्भिः संस्पृशेत् मूर्द्धन्यपो निनयेत् सव्ये  
च पाणौ व्रजंस्तिष्ठन् शयानः प्रणतो वा नाचामेत् । हृदयं-  
गमाभिरद्भिस्त्वुद्वुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कङ्गाभिः क्षत्रियः  
शुचिः वैश्योऽद्भिः प्रासिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरिव च ।  
पुत्रद्वारापि यागास्तर्पणानि स्युः ।

न वर्णगन्धरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः । न मुख्या  
विभ्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति । अनङ्गलिष्ठाः । सुप्ता भुक्ता  
पीत्वा स्नात्वा चाचातः पुनराचामेत् । वासश्च परिधाय  
ओष्ठौ संस्पृश्य यत्रालोमकौ न श्मश्रुगतो लेपो दन्तवदन्तस-  
क्तेषु यच्चातमुखे भवेत् ॥ आचातस्यावशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव  
तच्छुचिः । परानथाचामयतः पदौ या विभ्रुषो गताः ॥ भूभ्यां  
तास्तु समाः प्रोक्तास्ताभिर्नोच्छिष्टभाग्भवेत् ॥ प्रचरन्नभ्यव-  
हार्येषु उच्छिष्टं यदि संस्पृशेत् ॥ भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्य-  
माचातः प्रचरेत्पुनः ॥ यद्यन्मीमांस्यं स्यात्तत्तद्भिः संस्पृशेत् ।

श्वहताश्च मृगा वन्याः पातितं च खगैः फलम् ॥ बालै-  
रनुपविद्धान्तः स्त्रीभिराचरितं च यत् ॥ परिसंख्याय तान्सर्वा

ञ्जुचीनाह प्रजापतिः ॥ प्रसारितं च यत्पण्यं ये दोषाः  
स्त्रीमुखेषु च ॥ मशकैर्मक्षिकाभिश्च नीली येनोपहन्यते ॥  
क्षितिस्थाश्चैत्र या आपो गवां प्रीतिकराश्च याः ॥ परिसंख्याय  
तान्सर्वाञ्जुचीनाह प्रजापतिरिति ।

लेपं गंधापकर्षणम् । शौचममेध्यालितस्य । अद्भिर्मृदा-च  
तैजसमृण्मयदारवतांतवानां भस्मपरिमार्जनं प्रदाहलक्षणनि-  
र्णेजनानि तैजसवदुपलमणीनां मणिवच्छंखशुक्तीनां दारुव-  
दस्थनां रज्जुविदलचर्मणां चेलवच्छौचम् । गोवालैः फलच-  
मसानां गौरसर्पपंकलकेन क्षौमजानाम् ।

भूम्यास्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थाने दोष-  
विशेषात्प्राजापत्यमुपैति ।

अथाप्युदाहरति । खननादहनाद्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि ।  
चतुर्भिः शुद्ध्यते भूमिः पंचमात्रोपलेपनात् ॥ रजसा शुद्ध्यते  
नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति । भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्र-  
मम्लेन शुद्ध्यति ॥ मध्वमूत्रैः पुरीषैर्वा श्लेष्मपूषाश्रुशोणितैः ॥  
संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् ॥ अद्भिर्गात्राणि  
शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा  
एद्धिज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ अद्भिरेव कांचनं पूयेत तथाराजतम् ।

अंगुलिकनिष्ठिकामूले देवं तीर्थम् । अंगुल्यग्रे मानुषम् ।  
पाणिमध्य आग्नेयम् । प्रदेशिन्यंगुष्ठयोरंतरा पित्र्यम् । रोचंत

इति सायंप्रातरशनान्यभिपूजयेत् । स्वदितमिति पित्र्येषु ।  
संपन्नमित्याभ्युदयिकेषु ॥

इति वाशिष्ठे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रकृतिविशिष्टं चातुर्वर्ण्यं संस्कारविशेषाच्च । ब्राह्मणोऽस्य  
मुखमासीद्वाहू राजन्यः कृतः ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां  
शूद्रो अजायत । इति निगमो भवति । गायत्र्या छंदसा  
ब्राह्मणमसृजत् । त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचि-  
च्छंदसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ त्रिष्वेव निवासः  
स्यात्सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसां प्रजननं च ।

पितृदेवतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् । मधुपर्के च यज्ञे  
च पितृदैवतकर्मणि ॥ अत्रैव च पशुं हिंस्यान्नान्यथेत्यब्रवी-  
न्मनुः ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥  
नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्माद्यागे वधोऽवधः ॥ अथापि  
ब्राह्मणाय वा राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोक्षं वा  
महाजं वा पचेदेवमस्यातिथ्यं कुर्वतीति ॥

उदकक्रियामशौचं च द्विवर्षात्प्रभृतिमृत उभयंकुर्यात् ।  
दंतजननादित्येके । शरीरमग्निना संयोज्य । अनवेक्षमाणा  
आपोऽभ्यवयंति ततस्तत्रस्था एव सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां-

मुदकक्रियां कुर्वन्ति । अयुग्मा दक्षिणामुखाः । पितृणां वा  
एषा दिक् या दक्षिणा । गृहान्वजित्वा स्वस्तरे अहमश्नन्तं  
आसीरन् । अशक्तौ क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन् ।

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । मरणात्प्रभृति-  
दिवसगणना । सपिण्डता सप्तपुरुषं विज्ञायते । अपत्तानां  
स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते । प्रत्तानामितरे कुर्वीरन्  
तांश्च तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोः  
र्वाजानि निमित्तत्वात् ।

अथाप्युदाहरन्ति । नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न  
गच्छति । रजस्तत्राशुविज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥ ब्राह्मणो  
दशरात्रेण पक्षमात्रेण भूमिपः । वैश्यो विंशतिरात्रेण शूद्रो  
मासेन शुद्ध्यति ॥ अशौचे यस्तु शूद्रस्य सूतके वापि भुक्त-  
वान् ॥ स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनिषु जायते ॥ अनि-  
र्दशाहे पक्वान्नं नयोगायस्तु भुक्तवान् ॥ कृमिभूत्वा स देहात्  
तद्विद्यामुपजीवति ।

द्वादशमासान्द्वादशार्द्धमासान्वासनश्नन्संहितामधीयानः  
पूतो भवतीति विज्ञायते ऊनदिवसे प्रेते गर्भपतने वा सपि-  
ण्डानां त्रिरात्रमाशौचम् । सद्यः शौचमिति गौतमः । देशा-  
न्तरस्थे प्रेते ऊर्ध्वं दशाहार्धैकरात्रमाशौचम् । आहिताग्निश्चेत्प्र-  
वसन्ध्रियते पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः ।

भूपयतिदमशानिरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्य सशिरा  
अभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

अस्वतत्रा स्त्री पुरुषप्रधाना अनमिरनुदकया च । अनृत-  
मिति विज्ञायते ।

अथाप्पुदाहरन्ति । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति  
यौवने ॥ पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥  
तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ त्रिरात्रं  
रजस्वलाऽशुचिर्भवति । सा नाञ्ज्यान्नाभ्यञ्ज्यान्नाप्सु स्नायात् ।  
अधः शयीत दिवा न स्वप्यात् नाग्निं स्पृशेत् न रज्जुं प्रमृ-  
जेन्न दंतान्धावयेन्न मांसमश्नीयात् न महात्रिरीक्षयेत् न हसेन्न  
किञ्चिदाचरेन्नाजलिना जलं पिबेत् न खर्परेण वा न लोहि-  
तायसेन वा विज्ञायते ह्रीद्रस्त्रिशीर्षाणाम् त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मना  
गृहीतो मन्पुत इति । तं सर्वाणि भूतान्यभ्याकोशन भ्रूणहन्  
भ्रूणहन् भ्रूणहन्निति स स्त्रिय उपाधावत् अस्यैमे ब्रह्महत्यायै  
तृतीयभागं गृहीतेति गत्वेवमृवाच ता अनुवन् किन्नोभूदिति

सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति ता अद्भुवन्तुतो प्रजां विंदामह इति  
 कामं मा विजानीमोऽलं भवाम इति यथेच्छया आप्रसवका-  
 लाः पुरेषेण सह मैथुनभावेन संभवाम इति च एषोस्माकं  
 वरस्तथैदृशोक्तास्ता प्रतिजगृहुः तृतीयं भ्रूणहत्यायाः सैषा  
 भ्रूणहत्या मासिमास्याविर्भवति । तस्माद्रजस्वलान्नं नाश्नी-  
 यात् । अतश्च भ्रूणहत्याया एवैतद्रूपं प्रतिमुच्यस्ते कंचुक-  
 मिव ।

तदाहुर्वैद्यवादिनः । अंजनाभ्यंजनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं-  
 ताद्वि स्त्रियोऽन्नमिति । तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यन्ते आचारा-  
 याश्च योषित इति सेयमुपपाति । उदवयायास्त्वासते तेषां  
 ये च केचिदनमयः गृहस्थाः श्रोत्रियाः क्षात्राः सर्वे ते  
 शूद्रधर्मिणः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥ हर्नाचार-  
 परीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १ ॥ नैनं प्रयाति न ब्रह्म  
 नाभिद्वेषं न दाक्षिणा ॥ हर्नाचारश्रितं भ्रष्टं तारयन्ति कथं-  
 चन ॥ २ ॥ आचारहीनं न पुनन्ति घेदा यद्यप्यधीताः सह  
 पट्टभिरंगैः ॥ छंदास्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव

तापतप्ताः ॥ ३ ॥ आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः पङ्गा  
अखिलाः सपक्षाः ॥ कां प्रीतिमुत्थापयितुं समर्था अंधस्य  
दारा इव दर्शनीयाः ॥ ४ ॥ नैनं छंदांसि वृजिनात्तारयन्ति  
मायाविनं मायया वर्तमानम् ॥ तत्राक्षरे सम्यगधीयमाने  
पुनाति तद्वह्मं यथावदिष्टम् ॥ ५ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके  
भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव  
च ॥ ६ ॥ आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ॥  
आचाराच्छ्रूयमाणोति आचारो हंत्यलक्षणम् ॥ ७ ॥ सर्व-  
लक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्नरः ॥ श्रद्धधानो न सुयश्च शतं  
वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः ॥  
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव धनान्युपी गुप्ततमे तु कार्ये ॥ ९ ॥

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥ रात्रौ कुर्याद-  
क्षिणस्थ एवं ह्यायुर्न हीयते ॥ १० ॥ प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च  
प्रति गां प्रति च द्विजम् ॥ प्रति सोमोदकं संध्यां प्रज्ञा  
नश्यति मेहतः ॥ ११ ॥ न नद्यां मेहनं कार्यं न भस्मनि न  
गोमये ॥ न वा कृष्टे न मार्गे च नोप्ते क्षेत्रे न शाद्वले ॥ १२ ॥  
छायायामंधकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुरसमुखः  
कुर्यात्प्राणवाधभयेषु च ॥ १३ ॥ उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्या-  
त्त्वानमनुद्धृताभिरपि ॥ आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससि-

( ४५६ ) अष्टादशस्मृतयः ।

कृतां तथा ॥ १४ ॥ अंतर्जले देवगृहे बल्मीके मूषिकस्थले ॥  
कृतशौचावशिष्टा च न ग्राह्याः पंचः मृत्तिकाः ॥ १५ ॥  
एका लिंगे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके ॥ पंच पाने  
दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ १६ ॥ एतच्छौचं गृह-  
स्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां तु  
चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ॥ द्वात्रिंशच्च  
गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥ अनङ्गान्ब्रह्मचारी  
च आहिताग्निश्च ते त्रयः ॥ भुञ्जाना एव सिद्ध्यन्ति तैर्षा  
सिद्धिरनश्नताम् ॥ १९ ॥ तपोदानोपहारेषु व्रतेषु नियमेषु  
च ॥ इज्याध्ययनधर्मेषु यो नासक्तः स निष्क्रियः ॥ २० ॥

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ॥ विद्या  
विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २१ ॥ सर्वत्र दाताः  
श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ॥ प्रतिग्रहे संकु-  
चिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २२ ॥

असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः ॥ चत्वारः  
कर्मचाण्डाला जन्मतश्चापि पंचमः ॥ २३ ॥ दीर्घवैरमसूया  
च असत्यं ब्रह्मदूषणम् ॥ पेशुर्न्य निर्दयत्वं च जानीयाच्छूद्र-  
लक्षणम् ॥ २४ ॥



किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ॥

पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रात्रं यस्य नोदरे ॥ २५ ॥

शूद्रात्ररसपुष्टांग अधीयानोपि नित्यशः ॥ जुह्वित्वापि  
यजित्वापि गतिमूर्ध्वा न विदति ॥ २६ ॥ शूद्रात्रेनोदरस्थेन  
यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥ स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा  
जायते कुले ॥ २७ ॥ शूद्रात्रेन तु भुञ्जेत् मैथुनं योधि-  
गच्छति ॥ यस्यात्रं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हको भवेत् ॥

स्वाध्यायाध्यं योनिमित्रं प्रशांतं चैतन्यस्थं पापभीरुं बहु-  
ज्ञम् ॥ स्त्रीयुक्तात्रं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतेः क्षांतं तादृशं  
पात्रमाहुः ॥ २९ ॥

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ विनश्ये-  
त्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं रसाश्च ते ॥ ३० ॥ एवं गां च हिरण्यं  
च वस्त्रमश्वं महीं तिलान् ॥ अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति  
दारुवत् ॥ ३१ ॥

नागं नखं च वादित्रं कुर्यान्नचापोजलिना पिबेत् ॥ न  
पादेन न पाणिना वा राजानमभिहन्यात् । न जलेन जलं  
नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् न फलेन फलं न कल्कपुटको  
भवेत् । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् ।

अथाप्युदाहरन्ति । न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो  
भवेत् । न चांगचपलो विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥ पारं-

पर्यागतो येषां वेदः सपरिवृंहणः ॥ तेशिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः  
 श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ यत्र संतं नचासंतं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ॥  
 न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मण इति ॥  
 इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः ।  
 तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्योपनिक्षे-  
 प्तुमावसेत् ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् आशरीरविमोक्षणात् ।  
 आचार्यं प्रमृते आग्निं परिचरेत् । विज्ञापते हि तवाग्निराचार्यं  
 इति । संयतवाक्चतुर्थपष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत् ।  
 गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छंतमनुगच्छेत् ।  
 आसीनं चानुतिष्ठेत् । शयानं चासीन उपविशेत् । आहूता-  
 ध्यायी सर्वभैक्ष्यं निवेद्य तदनुज्ञया भुञ्जीत खट्वाशयनदंतप्र-  
 क्षालनाभ्यंजनवर्जस्तिष्ठेत् । अहनि रात्रावासीतत्रिःकृत्वोः  
 भ्युपेयादपोभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

### अष्टमोऽध्यायः ८.

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणानुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्था-  
 मस्पृष्टमैधुना यवीयसी सदृशीं भार्यां विदेत् । पंचमीं मातृ-

बन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः । वैवाह्यमग्निमिध्यात् । साय-  
मागतमतिथिं नावरुंध्यात् । नास्यानश्नन् गृहे वसेत् । यस्य  
नाश्नाति वासार्थो ब्राह्मणो गृहमागतः ॥ सुकृतं तस्य  
यत्किञ्चित्सर्वमादाय गच्छति ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथि-  
ब्राह्मणः स्मृतः ॥ अनित्यं हि तित्थिर्यस्मात्तस्मादतिथिरुच्य-  
ते । नैकग्रामीणमतिथि विप्रं सांगतिकं तथा ॥ काले प्राप्ते  
अकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥

श्रद्धाशीलोऽस्पृहालुरलमग्न्याधेयाय नानाहिताग्निः  
स्यात् । अलं च सोमपानाय नासोमयाजी स्यात् । युक्तः  
स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासनशय-  
नवाग्निः सूनृताभिर्मानयेत् । यथाशक्ति चान्नेन सर्वभूतानि ।

गृहस्थ एव यजेते गृहस्थस्तप्यते तपः । चतुर्णामाश्रमाणां  
तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यांति  
संस्थितिम् ॥ एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥  
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः ॥ एवं गृहस्थमा-  
श्रित्य सर्वे जीवंति भिक्षवः ॥ नित्योदकी नित्यपज्ञोपवीती  
नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जा ॥ ऋतो गच्छन्विदिवच्च जुह्वन्  
ब्राह्मणश्च वते ब्रह्मलोकात् ब्रह्मलोकादिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्रामं च न विशेत् । न  
फालकृष्टमधितिष्ठेत् । अकृष्टं मूलफलं संचिन्वात् । ऊर्ध्वरेताः  
क्षमाशयो मूलफलभैक्षेणाश्रमागतमतिथिमर्चयेत् । दद्यादेव  
न प्रतिगृह्णीयात् । त्रिपवणमुदकमुपस्पृशेत् । श्रावणकेनामि  
माधायाहितामिः स्याद्दक्षमूलिकः ऊर्ध्वं पट्टभ्यो मासेभ्योऽन  
भिरनिकेतो दद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानंत्यमा-  
नंत्यम् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## दशमोऽध्यायः १०.

परिव्राजकः सर्वभूताभयदाक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत् ॥  
अथाप्युदाहरन्ति । अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो  
द्विजः ॥ तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते ॥ अभयं  
सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु विवर्तते ॥ हन्ति जातानजातांश्च  
प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्य-  
सेत् ॥ वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्देदं न संन्यसेत् ॥ एकाक्षरं  
परं ब्रह्म प्राणायामः पर तपः ॥ उपवासात्परं भैक्ष्यं दयादा-  
नादिशिष्यते ॥

मुंडोऽममत्वपरिग्रहः. सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्वै-  
श्यम् । विधूमे सन्नमुसले एकशाटीपरिवृतोऽग्निनेन वा  
गोप्रलूनैस्तृणैर्वैष्टितशरीरः स्थंडिलशाय्यनित्यां वसतिं वसेत् ।  
तथा ग्रामांते देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसा ज्ञानमधी-  
यमानः अरण्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥

अथाप्युदाहरंति । अरण्यनित्यस्य जितेंद्रियस्य सर्वेन्द्रिय-  
प्रीतिनिवर्तकस्य ॥ अध्यात्मचिंतागतमानसस्य ध्रुवा ह्यनावृ-  
त्तिरूपेक्षकस्य ॥ अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारः अनुमत्त उन्मत्त-  
वेषः ॥

अथाप्युदाहरंति । न शब्दक्षास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि  
लोकग्रहणे रतस्य ॥ न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चापि  
रम्यावसथप्रियस्य ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांग-  
विद्यया ॥ अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥  
अलाभे न विषादी स्याल्लाभेचैव न हर्षयेत् ॥ प्रागयात्रि-  
कमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥ न कुट्यां नोदके संगे  
न चैले न त्रिपुष्करे ॥ नागारे नासने शेते यः स वै मोक्ष-  
वित्तमः ॥

ब्राह्मणकुले वा यल्लभेत्तद्रुंजीत सायं मधुमांससर्पिःपरि-  
वर्जं यतीन्साधून्वा गृहस्थान्सायंप्रातश्च तृप्येत् । ग्रामे वा  
वसेत् आजिह्वः अशरणः असंकसुकः । न चेंद्रियसंयोगं

कुर्वीत केनचित् । उपेक्षकः सर्वभूतानां हिसानुग्रहपरिहारेण  
पेशुन्यमत्सराभिमानाहंकाराश्चक्षानार्जवात्मसुचपरगर्हादंभ-  
लोभमोहक्रोधविवर्जनं सर्वाश्रमिणां धर्म इष्टो यज्ञोपवी-  
त्युदककमंडलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलात्रपानवर्जो न हीयते  
ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकात् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

### एकादशोऽध्यायः ११.

पदकर्मणा गृहदेवताभ्यो वलिं हरेत् । श्रोत्रियायान्नं दत्त्वा  
ब्रह्मचारिणे वाऽनंतरं पितृभ्यो दद्यात्ततोऽतिथिं भोजयेत् ।  
स्वेष्टायासमानुष्वर्च्येण रवगृह्याणां कुमारबालवृद्धतरुणप्रभृती-  
स्ततोऽपरान्गृह्यान् । श्वचांडालपतितवायसेभ्यो भूमौ निर्वपे-  
च्छूदेभ्य उच्छिष्टं वा दद्याच्छेषं यतो भुंजीत । सर्वोपयोगेन  
पुनः पाको यदि निवृत्ते वैश्वदेवेतिथिरागच्छेद्विशेषेणास्मा  
अन्नं कारयेद्विजातयेऽहि वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो  
गृहम् । तस्मादपानमन्यत्र वर्षाभ्यस्तां हि शान्तिजना विद्वि-  
रिति तं भोजयित्वापासीतासीमान्तादनुव्रजेदनुज्ञाताद्वा ।

परपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात् । पूर्वद्युर्ब्राह्मणान्  
सन्निपात्य यतीन् गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविकर्म-  
श्रोत्रियाञ्छिष्यान्तेवासिनः । शिष्यान्पि गुणवतो

भोजयेद्विलमशुक्लविगृधिश्यावदंतकुष्ठिकुनखिवर्जम् ॥  
 अथाप्युदाहरांति । अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शरीरैः पंक्तिदूषणैः ॥  
 अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ श्राद्धे नोद्वसनी-  
 यानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात् ॥ खे पतन्ति हि या धारास्ताः  
 पिवंत्यकृतोदकाः ॥ उच्छिष्टेन प्रपुष्टास्ते यावन्नास्तमितो  
 रविः ॥ क्षीरधारास्ततो यान्त्यक्षयाः संचरभागिनः ॥ प्राक्सं-  
 स्कारप्रमीतानां प्रवेशनमिति श्रुतिः ॥ भागधेयं मनुः प्राह  
 उच्छिष्टोच्छेपणे उभे । उच्छेपणं भूमिगर्तं विकिरेल्लेपसो-  
 दकम् ॥ अनुप्रेतेषु विसृजेदप्रजानामनायुषाम् । उभयोः  
 शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्ननिवेदनम् ॥ तदन्तरं प्रतीक्षते  
 ह्यसुरा दुष्टचेतसः ॥ तस्मादशून्यहस्तेन कुर्व्यादन्यमुपागतम् ॥  
 भोजनं वा समालभ्य तिष्ठतोच्छेपणे उभे ॥

द्वौ देवे पितृकृत्ये त्रीनैकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत् सुसमृ-  
 द्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं  
 ब्राह्मणसंपदः ॥ पंचेतान्विस्तरो हंति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥  
 अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ शुभशीलोपसंपन्नं  
 सर्वालक्षणवर्जितम् ॥

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ॥ अन्नं पात्रे  
 समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ॥ देवतायतने कृत्वा ततः  
 श्राद्धं प्रवर्त्तते ॥ प्रास्येदमौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदंश्रंति घाम्यताः ॥ तावद्धि पितरोऽश्रंति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरोऽभ्यवतर्पिताः । पितृभिस्तर्पितेः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ निपुक्तस्तु यदा श्राद्धे दैवे तं तु समुत्सृजेत् ॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥

ग्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः ॥ ग्रीणि चान्नं प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मंदी भवति भास्करः ॥ संकालः कुतुपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥ भवन्ति पितरस्तस्य तन्मांसरेतसो भुजः ॥ यतस्ततो जायते च दत्त्वा भुक्त्वा च योऽभ्यसेत् ॥ न स विद्यामवाप्नोति क्षीणायुश्चैव जायते ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ उपासते सुत जातं शकुन्ता इव पिप्पलम् ॥ मधुमांसैश्च शकैश्च पयसा पायसेन वा ॥ अजुना दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥ संतानवर्द्धनं पुत्रं वृष्यन्तं पितृकर्मणि ॥ देवब्राह्मणसंपन्नमभिवन्दन्ति पूर्वजाः ॥ नन्दन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टैरिव कर्षकाः ॥ यद्गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥



श्रावण्याग्रहायण्योश्चाष्टकायां च पितृभ्यो दद्यात् द्रव्यदे-  
शब्राह्मणसन्निधाने वा कालनियमोऽवश्यम् ।

यो ब्राह्मणोऽग्निमादधीत । दर्शपूर्णमासाग्रयणेष्टिचातुर्मा-  
स्यपशुसोमैश्च यजते । नैयमिकं ह्येतद्वर्णं संस्तृतं च विज्ञायते  
हि त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् ब्राह्मणो जायते । यज्ञेन देवेभ्यः  
प्रजया पितृभ्यो ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः । इत्येष वा अनृणो  
यज्वा यः पुत्री ब्रह्मचर्यवानिति ।

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भ-  
द्वादशेषु वैश्यम् । पालाशो दंडो बैल्वो वा ब्राह्मणस्य नैयग्रो-  
धः क्षत्रियस्य वा और्दुबरो वा वैश्यस्य कृष्णाजिनमुत्तरीयं  
ब्राह्मणस्य रौरवं क्षत्रियस्य गव्यं वस्ताजिनं वैश्यस्य शुक्ल-  
महतं वासो ब्राह्मणस्य मांजिष्ठं क्षत्रियस्य हारिद्रं कौशेयं  
वैश्यस्य सर्वेषां वा तान्तवमरक्तं भवेत् । भवत्पूर्वा ब्राह्मणो  
भिक्षां याचेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदंत्यां वैश्यश्च आपो-  
दशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः काल आद्राविंशाक्षत्रियस्याचतुर्विंश-  
द्वैश्यस्य अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवंति नैनानुपनयेन्ना-  
ध्यापयेन्न याजयेन्नैभिर्विवाहयेयुः । पतितसावित्रीक उद्वा-  
लकघ्नतं चरेत् । द्वौ मासौ ग्रावकेन वर्तयेन्मासं मासिके-  
णष्टरात्रं घृतेन प्रह्वरात्रमयाचितं त्रिरात्रमब्धक्षोऽहोरात्रमे-  
वोपवासम् । अश्वमेधावभृत्यं गच्छेद्वात्यस्तोमेन वा यजेत ॥

## द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातः स्नातकव्रतानि स न कंचिद्याचेतान्यत्र राजाति-  
वासिभ्यः क्षुधापरीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा क्षेत्रं  
गामजाविकं सन्ततं हिरण्यं धान्यमन्नं वा न तु स्नातकः  
क्षुधावसीदेदित्युपदेशः न नद्यां स सहसा संविशेन्न रजस्व-  
लापामयोग्यायां नकुलं कुलं स्याद्वत्संतीं विततां नातिकामे-  
न्नोद्यंतमादित्यं पश्येन्नादित्यं तपन्तं नास्तं मूत्रपुरीषे कुर्यान्न  
निष्ठीवेत् परिवेष्टिताशिरा भूमिमंयज्ञियेस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपु-  
रीषे कुर्यादुदङ्मुखश्चाहर्नि नक्तं दक्षिणामुखः संध्यामासी-  
तोत्तरामुदाहरंति ।

स्नातकानां तु नित्यं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् ॥ यज्ञोपवीते  
द्वे पाटिः सोदकश्च कमंडलुः ॥ अण्डु पाणौ च काष्ठे च  
स्थितं पावकं शुचिम् ॥ तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्यात्कमं-  
डलम् ॥ पर्यम्भिकरणं ह्येतन्मनुराह प्रजापतिः ॥ कृत्वा  
चावश्यकार्याणि आचामेच्छौचवित्तत इति ।

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत । तूर्णानि सांगुष्ठं कृशग्रासं प्रसेत  
नच मुखशब्दं कुर्यादुत्कालाभिगामी स्यात् । पर्व्ववर्जं स्वदा-  
रेषु वा तीर्थमुपेयात् ॥

अथाण्डुदाहरंति ॥ यस्तु पाणिगृहीतायां आस्ये कुर्वीत  
मैथुनम् ॥ भवंति पितरस्तस्य तन्मांसरेतसोभजः ॥ या

स्यादनतिचारेण रतिः साधर्म्यसंश्रिता ॥ अपि त्वपावकोऽपि  
ज्ञायते ॥ अद्य श्वो वा विजनिष्यमाणाः पातिभिः सहशयंत  
इति स्त्रीणामिंद्रदत्तो वरः ।

न वृक्षमारोहेन कूपमवरोहेन्नाग्निं मुखेनोपधमेन्नाग्निं  
ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयान्नाग्निव्राह्मणयोरनुज्ञाप्य वा भार्यया  
सह नाश्नीयादवीर्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते ॥  
नेन्द्रयनुर्नाम्ना निर्दिशेन्मणिधनुरिति ब्रूयात् ॥ पालाशमासनं  
पादुके दंतधावनामिति वर्जयेत् । नोत्संगे भक्षयेद्वो न  
भुंजीत । वेणवं दंडं धारयेद्वक्त्रमकुंडले च । न वहिर्मात्रं  
धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः सभासमवायांश्च वर्जयेत् ॥

अथाप्युदाहरन्ति । अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैव  
दर्शनम् ॥ अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ॥ इति ।  
नानाहृतो यज्ञं गच्छेत् यदि ब्रजेदधि वृक्षसुर्यमध्वानं न  
प्रतिपद्यते । नाथं च सांशयिर्को वाहुभ्यां न नदीं तरेदुत्था-  
यापररात्रमधीत्य न पुनः प्रतिसंनिशेत् । प्राजापत्यं मुहूर्तं  
ब्राह्मणः स्वनियमाननुत्तिष्ठेदनुत्तिष्ठेदिति ॥

इति वशिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातः स्वाध्यायश्चोपाकृर्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां  
शान्तिमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्यश्छन्दोभ्यश्चे-  
ति । ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्य द्रधि प्राश्य तत उपांशु कुर्वीत ।  
अर्धपंचममाप्तानर्द्धषष्ठानत ऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वर्धाधीत । कामं  
तु वेदांगानि ।

तस्यानध्यायाः संध्यास्तमिते स्युस्तत्र शवे दिवाकीर्त्ये  
नगरेषु कामं गोमयपय्युपिते परिलिखिते वा श्मशानांते  
शयानस्य श्राद्धिकस्य ।

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ फलान्यापस्तिलान्भक्ष्यम-  
थान्यच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ प्रतिगृह्याप्यनध्यायः पाण्यास्या  
ब्राह्मणाः स्मृताः इति ।

धावतः षुतिगंधिमसृतेरितवृक्षमारूढस्य नावि सेनायां  
च भुक्त्वा चार्धघ्राणे घाणशब्दे चतुर्दश्याममावास्यायामष्ट-  
म्यामष्टकासु प्रसारितपादोपस्थस्योपाश्रितस्य गुरुसमीपे  
मिथुनव्यपेतायां घाससा मिथुनव्यपेतेनानिसुक्तेन ग्रामाति  
छर्दितस्य मूत्रितस्योच्चरितस्य यजुषां च सामशब्दे वा जीर्णे  
निर्घातभूभौ च न चंद्रसूर्योपरागेषु दिङ्नादपर्वतनादकं-  
पप्रपातेषूपलरुधिरपांशुवर्षेष्वकालिकमुल्काविद्युत्सज्योतिष-  
मपर्त्वाकालिकं वा ।

आचार्य्यं च प्रेते त्रिरात्रमाचार्य्यपुत्रशिष्यभार्यास्वहो-  
रात्रम् ऋत्विग्योनिबंधेषु च गुरो पादोपसंग्रहणं कार्य्यं  
ऋत्विक्स्वशुरापितृव्यमातुलानवरचंसः\* प्रत्युत्थायाभिवदेद्ये  
चेव पादग्राह्यास्तेषां भार्या गुरोश्च मातापितरौ यो विद्याद-  
भिवन्दितुमहमयं भोरिति ब्रूयाद्यश्च न विद्यात् प्रत्यभिवादे  
नाभिवदेत् ।

पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ॥  
अथाप्युदाहरन्ति । उपाध्यायाद्दशाचार्य्य आचार्याणां शतं  
पिता ॥ पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ भार्याः  
पुत्राश्च शिष्याश्च संस्पृष्टाः पापकर्मभिः ॥ परिभाष्य परि-  
त्याज्याः पतितो योन्यथा भवेत् ॥ ऋत्विगाचार्यावयाजका-  
नध्यापकौ हेयावन्यत्र हानात् पतितो नान्यत्र पतितो भवती-  
त्याहुरन्यत्र स्त्रियाः ॥ सा हि परगमिता तद्विन्नामक्षुण्णामु-  
पेयात् ॥

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिरिष्यते ॥ गुरुवद्वृत्तपुत्रस्य  
वर्तितव्यमिति श्रुतिः ॥ शास्त्रं वस्त्रं तथान्नानि प्रतिग्राह्याणि  
ब्राह्मणस्य विद्याविजयजः संबन्धः कर्म च मान्यम् पूर्वः  
पूर्वो गरीयान् । स्थविरबालातुरभारिकचक्रवतां पंथाः  
समागमे परस्मै देयो राज्ञातकयोः समागमे राज्ञा स्नात-

काय देयः । सर्वैरेव वा उच्चतमाय तृणभूम्यग्न्युदकवाक्सू-  
नृतानसूयाः सप्त गृहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन कदाचनेति ॥  
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

### चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथातो भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥ चिकित्सक-  
मृगयुपुंश्चलीदंडिकस्तेनाभिश्चस्तपंडपतितानामभोज्यं कदर्ये-  
क्षितवद्धातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौंडिकसूचकवार्धुपिकच-  
र्मावकृत्तानां शूद्रस्य चायज्ञस्योपयज्ञे यश्चोपपतिं मन्यते यश्च  
गृहीततद्धेतुर्यश्च बधार्हं नोपहन्यात् । कीं वंश्चमोक्षी इति  
चाभिकुश्येत् गणान्नं गणिकान्नम् ॥

अथाप्युदाहरन्ति । नाश्नन्ति श्वपतेर्देवा नाश्नन्ति वृषली-  
पतेः ॥ भार्ग्याजितस्य नाश्नन्ति यस्य चोपपतिर्गृहे इति ।  
एधोदकसवत्सकुशलाभ्युद्यतपानावस्यथसफारिप्रियंगुस्तरजम-  
धुमांसानि नैतेषां प्रतिगृह्णीयात् ।

अथाप्युदाहरन्ति ॥ गुर्वर्थदारमुज्जिहीषन्नर्चिष्यन्देवता-  
तिथीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु वृष्येत्स्वयं तत इति ।

न मृगयोरिषुचारिणः परिवर्ज्यमन्नम् । विज्ञायते ह्यगस्त्यो  
वर्षसाहस्रिके सत्रे मृगयां चचार तस्यासंस्तु रसमयाः पुरो-  
डाशा मृगपक्षिणां प्रशस्तानामपि ह्यन्नम् ॥

प्राजापत्याञ्छोकानुदाहरन्ति ॥ उद्यतामाहतां भिक्षां  
पुरस्तादन्नचोदितां ॥ भोज्यं प्रजापतिर्मेने अपि दुष्कृतका-  
रिणः ॥ श्रद्धधानैर्न भोक्तव्यं चौरस्यापि विशेषतः ॥ न त्वेव  
बहुधा तस्य यावानपहता भवेत् ॥ न तस्य पितरोऽश्नन्ति  
दशवर्षाणि पंच चानच हव्ये. वहत्यभिर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥  
चिकित्सकस्य मृगयोः शिल्पहस्तस्य पाशिनः ॥ पंढस्य  
कुलटायाश्च उद्यतापि न गृह्यते इति ॥

उच्छिष्टं गुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्टमुच्छिष्टोपहतं च यदशनं  
केशकीटोपहतं च कामं तु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः प्रोक्ष्य  
भस्मनावकीर्ष्य वाचा च प्रशस्तमुपभुंजीतापि ह्यन्नम् ॥

प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति । श्रीणि देवाः पवित्राणि  
ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्निर्णितं यच्च वाचा  
प्रशस्यते ॥ देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च ॥ काकैः  
श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विसर्जयेत् ॥ तस्मात्तदन्नमुद्धृत्य शेषं  
संस्कारमर्हति ॥ द्रवाणां प्लावनैर्नैव धनानां क्षरणेन तु ॥  
पाकेन मुखसंस्पृष्टं शुचिरेव हि तद्वदेत् ॥ अन्नं पश्युपितं  
भावदुष्टं हल्लेखनं पुनः ॥ सिद्धमाममूर्जापपकं च । ५५ ॥  
दद्याद्भुतेन चाभिचारितमुपभुंजीतापि ह्यन्नम् ॥

प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणं व्यं-  
जनानि च ॥ दातारं नोपातिष्ठन्ति भोक्ता भुंक्ते च किल्बिषमिति ।

लशुनपलांदुक्रमुकगृजनश्लेष्मांतर्दृक्षनिर्यासलोहितावश्वना-  
श्वश्वकाकावलीढं शूद्रोच्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्र इतरेऽ-  
प्यन्यत्र मधुमांसफलाविकर्षेष्वग्राभ्यपश्वविषयः संधिनीक्षी-  
रमवत्सागोमहिष्यजातरोमानिर्दशाहानामनामंज्यं नाव्युदक-  
मपूपधानाकरंभसक्तुचरकतैलपायसशाकानिलशुक्तानि वर्ज-  
येदन्यांश्च क्षीरयवापिष्टवीरान् ।

श्वविच्छल्लकशशकच्छपगोधाः पंचनखा नाभस्या अनुष्ट्राः  
पशूनामन्यतोदन्तश्च यस्यानां वा वेहगवयशिशुमारनक्रकु-  
लीरा विकृतरूपाः सर्पशीर्षाश्च गौरगवयशलभाश्चानुदिष्टा-  
स्तथा ॥ धेन्वनद्धाहौ मेध्यौ वाजसनेयने । खड्गे तु विवदं-  
त्यग्राभ्यशूकरे च शकुनानां च विशुविषिष्किरजालपादाः  
कलविकृष्टवहंसचक्रवाकभासमहुटिट्टिभाटबांधनंक्तंचरादावा-  
घाटाश्चटकवैलातकहारितखंजरीटग्राभ्यकुक्कुटशुकसारिकाको-  
किलक्रव्यादा ग्रामचारिणश्च ग्रामचारिणश्चेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

### पंचदशोऽध्यायः १५.

शोणितशुक्रसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः तस्य  
प्रदानविक्रयत्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः । नत्वेकं पुत्रं  
दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि संतानाय पूर्वंपाम् । न स्त्री दद्यात्  
प्रतिगृह्णीयादान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ।



पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन् बंधूनाहूय राजानि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतीर्हुत्वा दूरेबांधवमसन्निकृष्टमेव संदेहे चोत्पन्ने दूरेबांधवं शूद्रमिव स्थापयेत् ॥ विज्ञायते ह्येकेन बहु जायत इति ।

तस्मिंश्चेत् प्रतिगृहीते औरसः पुत्र उत्पद्यते चतुर्थभाग-  
भागी स्यात् ।

यदि नाभ्युदयिके युक्तः स्याद्वेदविप्लविनः संव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्णं पात्रमस्मै निनये-  
न्निनेतारं चास्य प्रकीर्य केशान् ज्ञातयोऽन्वारभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापाद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन सह धर्ममीयुस्तद्धर्मा-  
णस्तद्धर्मापन्नाः पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ।

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अग्न्यभ्युद्धरतां गच्छेत्कीडंति च हसन्ति च ॥ यश्चोत्पातयतां गच्छेच्छौचमित्याचार्यमातृपि-  
तृहंतारस्तत्प्रसादाद्भयाद्वा । एषा प्रत्यापत्तिः । पूर्णाब्दात् प्रवृत्ताद्वा फांचनं पात्रं माहेयं वा पूरयित्वापोहिष्ठाभिरेवं पडभिर्ऋग्भिः सर्वत्र वागिरिक्तस्य प्रत्युद्गीरपुत्रजन्मना व्याख्यातः ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## पोडशोऽध्यायः १६.

अथ व्यवहाराः ॥ राजमन्त्री सदःकार्याणि कुर्यात् ।  
 द्वयोर्विषदमानयोरत्र पक्षांतरं गच्छेद्यथासनमपराधो ह्यंते  
 नापराधः समः सर्वेषु भूतेषु यथासनमपराधो ह्याद्यवर्णयो-  
 र्विधानतः संपन्नतामाचरेद्राजा बालानामप्राप्तव्यवहाराणां  
 प्राप्तकाले तु तद्वत् । लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं  
 स्मृतम् ॥ धनस्वीकरणं पूर्वं धनी धनमवाप्नुयात् ॥ इति ।  
 मार्गक्षेत्रयोर्विसर्गे तथा परिवर्तनेन ऋणाग्रहेष्वर्थतिरेषु त्रि-  
 पादमात्रं गृहक्षेत्रविरोधे सामंतप्रत्ययः सामंतविरोधेऽपि ले-  
 ख्यप्रत्ययः प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धश्रेणिप्रत्ययः ।

अथाप्युदाहरन्ति ॥ य एकं क्रीतमाधेयमन्वाधेयं प्रति-  
 ग्रहम् ॥ यज्ञादुपगमो वोनैस्तथा धूमशिखा ह्यमी ॥ इति ।  
 तत्र भुक्ते दशवर्षमेवोदाहरन्ति ।

आधिः सीमाधिकं चैव निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं  
 श्रोत्रियद्रव्यं न राजाऽऽदातुमर्हति ॥ इति । तच्च संभोगेन  
 ग्रहीतव्यम् । गृहिणां द्रव्याणि राजगामीनि भवन्ति ।

तथा राजा मन्त्रिभिः सह नागरैश्च कार्याणि कुर्यादसौ  
 वा राजा श्रेयान् वसुपरिवारः स्यादगृध्रं परिवारं वा राजा  
 गृध्रपरिवारः स्यान्नगृध्रोऽगृध्रपरिवारः स्यात् । परि-

वांराहोपाः प्रादुर्भवन्ति स्तेयद्वारविनाशनं तस्मात् पूर्वमेव परिवारं पृच्छेत् ॥

अथ साक्षिणः ॥ श्रोत्रियो रूपवान् शीलवान् पुण्यवान् सत्यवान् साक्षिणः सर्वे एव वा । स्त्रीणां साक्षिणः स्त्रियः कुर्यात् । द्विजानां सदृशा द्विजाः शूद्राणां संतः शूद्राश्च अंत्यानामंत्याः ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ प्रातिभाष्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दंडशुल्कावशिष्टं च न पुत्रोदातुमर्हतीति ॥

ब्रूहि साक्षिन्यथातत्त्वं लब्धंते पितरस्तव ॥ तव वाक्यमुदीर्यतमुत्पतन्ति प्रतन्ति च ॥ नग्नो मुंडः कपाली च भिक्षार्थं क्षुत्पिपासितः ॥ अंधः शत्रुकुले गच्छेद्यस्तु साक्ष्यनृतं वदेत् ॥ पंच कन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥ शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ व्यवहारे मृते दारे प्रायश्चित्ते कुले स्त्रियः ॥ तेषां पूर्वपरिच्छेदाच्छेद्यन्ते वागवादिभिः ॥

उद्धाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ॥ विप्रस्य चार्थे अनृतं वदेयुः पंचानृतान्पादुरपातकाणि ॥

स्वजनस्यार्थे यदि वार्थहेतोः पक्षाश्रयेणेव वदन्ति कार्यम् ॥ पैशब्दवादं स्वकुलानुपूर्वान्स्वर्गस्थितानपि पातयन्त्यपि ॥

इति श्रीवशिष्ठे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## सप्तदशोऽध्यायः १७.

ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्वं च गच्छति । पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेऽजीवंतो मुखम् ॥ अनन्ताः पुत्रिणां लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते । प्रजाः संत्वपुत्रिण इत्यपि शापः ॥ प्रजाभिरप्रेस्त्वमृतत्वमभ्युयामित्यपि निगमो भवति ॥ पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ॥ अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपमिति ॥

क्षेत्रिणः पुत्रो जनयितुः पुत्र इति विवदन्ते तत्रोभयथाप्यदाहरन्ति ॥ यथन्यगोषु वृषभो वत्सान् जनयते सुतान् ॥ गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्पंदनमोक्षणमिति । अप्रमत्ता रक्षंतु वै न मा च क्षेत्रे परे वीजानि वासौ जनयितुः पुत्रो भवति संपरायो मोघं रेतोऽकुरुत तंतुमेतमिति ।

बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रयान्तरः ॥ सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रवंत इति श्रुतिः ॥

वह्नीनां द्वादश ह्येव पुत्राः पुराणदृष्टाः स्वयमुत्पादितः स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः तदलाभे निष्कृतायां क्षेत्रजो द्वितीयः तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते अभ्रातृका पुंसः पितृलभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम् ॥

श्लोकः ॥ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥

... यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥

पौनर्भवश्चतुर्थः पुनर्भूः कौमारं भर्तारमुत्सृज्यान्यैः सह चरित्वा तस्यैव कुटुंबमाश्रयति सा पुनर्भूर्भवति। या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति ।

कानीनः पंचमो या पितुर्गृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादयेन्मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ अप्रप्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्दन्ति तुल्यतः ॥ पुत्रो मातामहस्तेन दद्यात्पिंडं हरेद्धनम् इति ॥

गूढे च गूढोत्पन्नः पट्टः इत्येते । दायादा बांधवास्त्रातारो महतो भयात् ॥ इत्याहुः ।

अभादायादास्तत्र सहोढ एव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति । दत्तको द्वितीयो यं माता-पितरौ दद्याताम् । क्रीतस्कृतीयस्तच्छुनःशेषेन व्याख्यातं हरिश्चंद्रो ह वै राजा सोजीगर्तस्य सोपवत्सैः पुत्रं विक्राय्य स्वयं क्रीतवान् । स्वयमुपागतश्चतुर्थः तच्छुनःशेषेन व्याख्यातं शुनःशेषो ह वै यूप्ते नियुक्तो देवतास्तृष्ठाव तस्येह देवताः पाशं विभुमुचुस्तमृत्विज ऊचुर्ममैवायं पुत्रोऽस्त्विति । तानाह न संपदेते संपादयामासुरेप एव यं कामयेत तस्य पुत्रोऽस्त्विति तस्येह विश्वामित्रो होतासीत्तस्य पुत्रत्वमियाय ॥ अपविद्धः

पंचमोऽयं माता पितृभ्यामपात्तं प्रतिगृह्णीयात् । शूद्रापुत्र एव  
पष्ठो भवतीत्याहुः रित्येतेऽदायादा वांधवाः ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ यस्य पूर्वेषां वर्णानां न कश्चिदापादः  
स्यादेते तस्यापहरन्ति ।

अथ भ्रातृणां दायविभागो व्यंशं ज्येष्ठो हरेद्गवाश्वस्य  
चतुसहस्रमजावयो गृहं च कनिष्ठस्य काष्ठं गां यवसं गृहो-  
पकरणानि च । मध्यमस्य भ्रातुः पारिण्येयं स्त्रियो विभजे-  
रन् । यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीसन्निधौ विद्यासु पुत्राः स्युर्यंशं  
ब्राह्मण्याः पुत्रो हरेत् । व्यंशं राजन्यायाः पुत्रः सममतिरे  
विभजेरन्नन्येन चैषां स्वयमुत्पादितः स्यात् व्यंशमेव हरेदन्ये-  
षां त्वाश्रमान्तरगताः क्लीबोन्मत्तपतिताश्च भरणं क्लीबो-  
न्मत्तानाम् ।

भेतपत्नी पण्मासं व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुञ्जाना दायितो-  
र्ध्वं पट्टभ्यो मासेभ्यः ज्ञात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्म  
गुरुयोनिसंवंधात् । सन्निपात्य पिता भ्राता वा नियोगं कार-  
येत्तपसे वान्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुञ्ज्यात् । ज्यापसी-  
मपि षोडशवर्षा न चेदामयाविनी स्यात् । प्राजापत्ये मुहूर्ते  
पाणिग्रहणवदुपचारोऽन्यत्र संस्थाप्य वाक्पारुण्याद्दंडपारुण्याच्च  
आसाच्छादनस्नानलेपनेषु प्राग्यामिनी स्यादनिपुतायामुत्पन्न  
उत्पादयितुः पुत्रो भवतीत्याहुः स्याच्चैत्रियोगिनी दृष्टा  
लोभावास्ति नियोगः । प्राप्यधितं पाप्मुपनियुञ्ज्यादित्येके ।

कुमार्यृतुमती त्रिवर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः पतिं विदेत्तुल्यम् ॥ अथाप्युदाहरंति ॥ पितुः प्रदानात्तु यदा हि पूर्व कन्या वयो यैः समतीत्य दीयते ॥ सां हन्ति दातारमपीक्षमाणा कालातिरिक्ता गुरुदक्षिणे च ॥ प्रयच्छेत्तमिका कन्यामृतुकालभयात्पिता ॥ ऋतुमंत्यां हि तिष्ठंत्यां दोषः पितरमृच्छति ॥ यावच्च कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सफामांभियाच्यमाना ॥ भ्रूणानि तावन्ति हतानि ताभ्यां माता-पितृभ्यामिति धर्मवादः ॥

अद्विर्वाचा च दत्तानां म्रियेताथो वरो यदि ॥ न च मंत्रोपनीता स्याच्छुमारी पितुरेव सा ॥ यावच्चेदाहता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ॥ अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मंत्रसंस्कृता ॥ सा चेदक्षतयोनिः स्वात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ इति ॥

प्रोपितपत्नी पंचवर्षा प्रवसेद्यद्यकामा यथा भेतस्य एवं च वर्तितव्यं स्यात् । एवं पंच ब्राह्मणीप्रजाता चत्वारि राजन्या प्रजाता त्रीणि वैश्या प्रजाताद्वे शूद्रा प्रजाता । अत ऊर्ध्वं समानोदकपिंडजन्मभिर्गोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान् । न खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ।

यस्य पूर्वपां षण्णां न पश्चिद्वायादः स्यात् सपिंडाः पुत्रस्थानीया वा तस्य धनं विभजेरंस्तं पामलाभे आचार्यान्ते-

वासिनीं हरेयातां तयोरलाभे राजा हरेत् । न तु ब्राह्मणस्य  
 राजा हरेद्ब्रह्मस्वं तु विषं घोरम् । न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं  
 विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् इति ॥  
 त्रैविद्यसाधुभ्यः संप्रपच्छेदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

### अष्टादशोऽध्यायः १८.

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चांडालो भवतीत्याहुः । राजन्यायां  
 वैश्यायामन्यावसायी । वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको  
 भवतीत्याहुः । राजन्यायां पुक्कसः । राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः  
 स्रतो भवतीत्याहुः ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ छिन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलो-  
 म्यगुणाश्रिताः ॥ गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान्विजानि-  
 युरिति । एकांतरव्यंतरव्यंतरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैर्गव-  
 च्छुन्ना अंबष्टा निषादा भवंति । शूद्रायां पारशवः पारयन्नेव  
 जीवन्नेव शवो भवतीत्याहुः शव इति मृतास्या एतच्छावं  
 यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे तु नाध्येतव्यम् ॥

अथापि यमगीताञ्छ्लोकानुदाहरन्ति ॥ श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं  
 ये शूद्राः पापचारिणः ॥ तस्माच्छूद्रसमीपे च नाध्येतव्यं  
 कदाचन ॥ न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥



न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ यश्चास्यो-  
पदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत् ॥ सोऽसंवृतं तमो घोरं सह  
तेन प्रपद्यते ॥ इति ।

व्रणद्वारं कृमिर्यस्य संभवेत् कदाचन ॥ प्राजापत्येन  
शुद्धचेत हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणेति ।

नामिचित्परामुपेयात् कृष्णवर्णायाः सरमाया इव न धर्माय  
न धर्मायेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

### एकोनविंशोऽध्यायः १९.

धर्मे राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात् सिद्धिः ।  
भयकारणं ह्यपालनं वे एतत् ॥ सूत्रमाहुर्विद्वांसस्तस्माद्वा-  
हस्थयनेयमिकेषु पुरोहिते दद्याद्विजातये ब्राह्मणः पुरोहितो  
राष्ट्रं दधातीति । तस्य भयमपालनादसामर्थ्याच्च ॥

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् सर्वान् धैताननुप्रविश्य राजा  
चतुरो वर्णान् स्वधर्मे स्थापयेत्तेष्वधर्मपरेषु दंडं तु देशका-  
लधर्माधर्मवयोविद्यास्थानाविशेषैर्दिशेत् आगमादष्टाभावात्  
पुष्पफलोपगान्यदेयानि हिंस्यात्कर्षणकरणार्थं चोपहृत्या ।  
गार्हस्थ्यं गां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् । अधिष्ठानान्नो

नीहारसार्थानामस्मान्न मूल्यमात्रं नैहारिकं स्यान्महामहस्यः  
 स्यात् । संमानयेदवाहनीयद्विगुणकारिणी स्यात् । प्रत्येकं  
 प्रयास्यः पुमान् शतं वाराद्धयं वा तदेतदप्यर्थाः स्त्रियः स्युः  
 कराष्टौ मानाधारमध्यमः पादः कार्षापणस्य । निरुक्तोन्तरो  
 मानाकरः श्रोत्रियो राजपुमानथ प्रव्रजितबालवृद्धतरुणप्रदाता  
 प्रागामिकाः कुमार्यो मृतापत्याश्च बाहुभ्यामुत्तरं शतगुणं  
 दद्यान्नदीक्ष्वनशैलोपमांगा निष्कराः स्युस्तदुपजीविनो  
 वा दद्युः । प्रतिमासमुद्राहकरैस्त्वागमयेद्राजनि च प्रेते  
 दद्यात् । प्रासंगिकं तेन मातृवृत्तिर्व्याख्याता । राजमहिष्याः  
 पितृव्यमातुलांशजापितृव्यान् राजा विभृयात्तद्रामित्वादंशस्य  
 स्युस्तद्वधूंश्चान्याश्च राजपत्न्यो प्राप्ताच्छादनं लभेरन् अनि-  
 च्छंतो वा प्रव्रजेरन् क्लीबोन्मत्तांशं वापि ॥

मानवं श्लोकमुदाहरन्ति ॥ न रिक्तकार्षापणमस्ति शुल्कं न  
 शिल्पवृत्तौ न शिशौ न धर्मे ॥ न भैक्षवृत्तौ न दुतावशेषे न  
 श्रोत्रिये प्रव्रजिते न यज्ञे ॥ इति ।

स्तेनाभिश्चस्तदुष्टशस्त्रधारिसहोदव्रणसंपन्नव्यपविष्टेष्वेकेषां  
 दंडोत्सर्गं राजैकरात्रमुपवसेत् त्रिरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रमदं-  
 डचदंडने पुरोहितस्त्रिरात्रं वा ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अत्रादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्या-  
 पचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बि-

यम् ॥ राजभिर्धृतदंडास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः  
स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनो यथा ॥ एनो राजानमृच्छत्य-  
प्युत्सृजंतं सकिल्बिषम् ॥ तं चेन्न घातयेद्राजा राजधर्मेण  
दुष्यति ॥ इति ।

राज्ञामन्येषु कार्येषु सद्यः शौचं विधीयते ॥ तथा तान्य-  
पि नित्यानि काल एवात्र कारणम् ॥ इति ॥ यमगीतं च  
श्लोकमुदाहरन्ति ॥ नात्र दोषोऽस्ति राज्ञां वै व्रतिनां न च  
मंत्रिणाम् ॥ ऐंद्रस्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा इति ॥  
इति श्रीवाशिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

### विंशोऽध्यायः २०.

अनभिसंधिकृते प्रायश्चित्तमंपराधे सविकृतेऽप्येके । गुरु-  
रात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ॥ इह प्रच्छन्न-  
पापानां शास्ता वैवस्वतो यम इति । तत्र च सूर्याभ्युदयतः  
सन्नहस्तिष्ठेत्सावित्रीं च जपेदेवं सूर्याभिनिर्मुक्तो रात्रावासीत् ॥

कुनखी श्यावदंतस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनर्नि-  
र्विशेत् । अथ दिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निर्वि-  
शेत् तां चैवोपयच्छेदिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा  
निर्विशेत् चरणमहरहस्तदक्ष्यामः । ब्रह्मघ्नः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं  
चरित्वा पुनरुपनीतो वेदमाचार्य्यात् । गुरुतल्पगः सवृषणं

शिशनमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् यत्रैव प्रति-  
हन्पात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयात्रिष्कालको वा घृताक्तस्तप्तां सूर्यं  
परिष्वजेन्मरणान्मुक्तो भवतीति विज्ञायते । आचार्य्यपुत्र-  
शिष्यभार्यासु चैवं योनिषु च गुर्वीं सखीं गुरुसखीं च पतितां  
च गत्वा कृच्छ्राब्दं चरेत् एतदेव चांडालपतितान्नभोजनेषु  
ततः पुनरुपनयनवपनादीनां तु निवृत्तिः ॥

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ वपनं मेखला दंडो  
भैक्षचर्यव्रतानि च । निवर्त्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्म-  
णि ॥ इति ॥

सर्वमद्यपाने क्लीबव्यवहारेषु विष्णूत्ररेतोऽभ्यवहारेषु  
चैवम् ।

मद्यभाण्डे स्थिता अपो यदि कश्चिद्विजोऽर्थवत् ॥ पद्मोदं-  
बरावित्वपलाशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति । अभ्यासे  
सुराया अम्लिवर्णां तां द्विजः पिवेत् ।

धूणहनं च वक्ष्यामः । ब्राह्मणं हत्वा भूणहा भवत्यवि-  
ज्ञातं च गर्भम् । अविज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवंति तस्मात्  
पुंस्कृत्य जुहुयात् । लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय  
इति प्रथमां त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति  
द्वितीयां लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति  
तृतीयां त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति चतुर्थी

मांसानि मृत्योर्जुहोमि मांसैर्मृत्युं वासय इति पंचमीं भेदेन  
मृत्योर्जुहोमि भेदसा मृत्युं वासय इति षष्ठीमस्थीनि मृत्यो-  
र्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय इति सप्तमीं मज्जानं मृत्यो-  
र्जुहोमि मज्जाभिर्मृत्युं वासय इति अष्टमीमूराजार्थं ब्राह्मणार्थं  
वा ग्रामेऽभिमुख मात्मानं घातयेत् । त्रिरंजितो वापराधः  
पूतो भवतीति विज्ञायते । द्विरुक्तं कृतः कनीयो भवतीति ।  
तदप्युदाहरन्ति ॥ पतितं पतितैत्युक्त्वा चोरं चोरेति वा  
पुनः ॥ वचसा तुल्यदोषः स्यान्न मिथ्यादोषतां व्रजेत् ॥  
इति ।

एवं राजन्यं हत्वाष्टौ वर्षाणि चरेत् । षडैश्वर्यं त्रीणि शूद्रं  
ब्राह्मणीं चात्रेयीं हत्वा सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ च ।  
आत्रेयीं वक्ष्यामो रजस्वलामृतुस्त्रातामात्रेयीमाहुः । अत्रेत्ये-  
षामपत्यं भवतीति चात्रेयी । राजन्यहिंसायां वैश्यहिंसायां  
शूद्रं हत्वा संवत्सरं ब्राह्मणसुवर्णहरणात् प्रकीर्ष्य केशान्  
राजानमभिधावेत् स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु भवानिति तस्मै  
राजौदुंबरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेन्मरणात् पूतो  
भवतीति विज्ञायते । निष्कालको वा घृताक्तो गोमयामिना  
पादप्रभृत्यात्मानमधिदाहयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञा-  
यते ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ पुरा कालात्ममीतानामानाकविधि-  
कर्मणाम् ॥ पुनरापन्नदेहानामयमं भवति तच्छृणु ॥ स्तेनः  
कुनसी भवति श्वित्री भवति ब्रह्महा ॥ सुरापः श्यावदंतस्तु  
दुश्कर्मा गुरुतल्पगः ॥ इति । पतितैः संप्रयोगे च ब्राह्मेण  
वा यौनेन वा तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परि-  
त्यागस्तैश्च न संवसेदुदीर्घा दिशं गत्वाऽनश्नन् संहिताध्य-  
यनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ शरीरपातनाच्चैव तपसाध्ययनेन च ॥  
मुच्यते पापकृत्पापादानाच्चापि प्रमुच्यते ॥ इति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

### एकविंशोऽध्यायः २१.

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्दीरगैर्वैष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्ये-  
द्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाम्भ्यज्य नग्नां  
स्वरमारोप्य महापयमनुव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥  
वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्द्वौहितदर्भैर्वैष्टयित्वा वैश्यमग्नौ  
प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाम्भ्यज्य नग्नां  
गौरयमारोप्य महापयमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञा-  
यते । राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वैष्टयित्वा राजन्य-  
मग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरोवापनं कारयित्वा सर्पिषाम्भ्यज्य

नम्रां रक्तखरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् ॥ एवं वैश्यो  
राजन्यार्या शूद्रश्च राजन्यावैश्ययोः ।

मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरं भुञ्जानाथः शयाना  
त्रिरात्रमप्सु निम्नगायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्वा जुहुया-  
त्पूता भवतीति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

समाप्तेयं वासिष्ठस्मृतिः ।

१ ब्राह्मणद्वारेति बोध्यम् ।

अष्टादशस्मृतयः समाप्ताः ॥ १८ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम्-यन्त्रालय-बम्बई.

